












प्राचीन
हस्तलिखित

वृहद् तन्त्र महार्णवम्














ॐ

अथ वृहद् तन्त्र महार्णवम्

(भाषा-टीका सहित)

प्रथम खण्ड









सामान्य-ज्ञान एवं साधन-विधि प्रकरण

क्रियेटिव पब्लिकेशन
4422, नई सड़क, दिल्ली-110 006
फोन : 23261030, 23985175, 23279417
visit us at www.creativepublication.com, E-mail : hans@ndf.vsnl.net.in

© देहाती पुस्तक भण्डार, दिल्ली-6

सम्पादक :
सहस्राधिक ग्रंथों के सुप्रसिद्ध लेखक
विद्या-वारिधि, आचार्य पं. राजेश दीक्षित

फोटो स्टेट वाले ग्रन्थ नकली हैं। असली ग्रन्थ ऑफसेट द्वारा छापे गये हैं।

न्योछावर
स्वदेश में: सजिल्द मूल्य: 1100/-

ॐ

विष्णुर्वरिष्ठो देवानां ह्रदानामुदधिस्तथा।
नदीनाञ्च यथा गङ्गा पर्वतानां हिमालय:॥
अश्वत्थ सर्व वृक्षाणां राज्ञामिन्द्रो यथावर:।
देवीनाञ्च यथा दुर्गा वर्णानां ब्राह्मणो यथा।
तथा समस्त शास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम्।
सर्व कामप्रदं पुण्यं तन्त्रं वै वेदसम्मतम्॥

× × ×

विना त्वागम मार्गेण कलौ नास्ति गति: प्रिये।
आगमोक्त विधानेन कलौ देवान्यजेत्सुधी:॥

सम्पादकीय

तं. मं.
३

'तन्त्र' एक ऐसी साधना है जो लौकिक-कामनाओं की पूर्ति तथा दुःखों से मुक्ति दिलाती है। तान्त्रिकों के मतानुसार यह भुक्ति-मुक्ति प्रदायिनी है तथा इस साधना के द्वारा उन सब कार्यों में भी सफलता प्राप्त की जा सकती है, जिसे अविश्वसनीय, अकल्पनीय अथवा असंभव कहा जाता है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि कोई साधक सभी नियमों का पालन करते हुए, इस साधना में सिद्धि प्राप्त कर ले तो वह कुछ भी कर दिखाने में समर्थ हो जाता है तथा अपनी आकांक्षा-पूर्ति के साथ ही अन्यों की कामना पूर्ण करने में भी सफलता प्राप्त कर लेता है। आवश्यकता साधना-काल में संयमित तथा धीर-गंभीर बने रहने की होती है।

तान्त्रिक-साधना को सहज समझ लेना उचित नहीं है। यह बड़ी दुरूह है तथा यथाविधि प्रयोग में न लाने पर हानिकर भी सिद्ध हो सकती है। यही कारण है कि तान्त्रिक-साधना आरंभ करने से पूर्व सुयोग्य गुरु का निर्देश आवश्यक बताया गया है। समुचित-विधान तथा ज्ञान के अभाव में यह विद्या प्रयोग कर्ता के लिए प्राणघातक भी बन जाती है, अतः पुस्तकों के अध्ययन द्वारा सैद्धान्तिक-परिचय प्राप्त कर लेने के उपरान्त क्रियात्मक-ज्ञान हेतु किसी सुयोग्य तन्त्रज्ञ को गुरु बनाकर, उससे दिशा-निर्देश प्राप्त करना चाहिए। इससे साधना में सफलता तो मिलेगी ही; विपत्ति एवं संकट तथा धन के अपव्यय से भी छुटकारा मिलेगा।

प्रायः देखा जाता है कि लोग तान्त्रिक-साहित्य के प्रति आकृष्ट होकर, उसे खरीदते, पढ़ते तथा प्रयोग करने बैठ जाते हैं तथा उसका फल भी तुरन्त प्राप्त करना चाहते हैं। परन्तु जब सफलता नहीं मिलती

अथवा लाभ के स्थान पर हानि उठनी पड़ती है तो न केवल उन पुस्तकों के लेखकों को, अपितु सम्पूर्ण तन्त्र-शास्त्र को ही कोसने बैठ जाते हैं। यह प्रवृत्ति उचित नहीं है। वर्तमान-समय में तन्त्र-साहित्य की ओर बढ़ती हुई जन-अभिरुचि को देखकर, ऐसे अनेक ढोंगी-लेखक पैदा हो गए हैं, जो शास्त्र का अ ब स तक नहीं जानते। पूर्व प्रकाशित ग्रंथों की औंड़ी तथा उल्टी-सीधी नकल का, अपने नाम से पुस्तकें लिखकर छपने को दे देते हैं। ऐसे अनाड़ी-लेखकों द्वारा लिखित पुस्तकों के प्रकाशक, विज्ञापनों के माध्यम से उनकी मिथ्या-प्रशंसा के तोते-बांधे पुल बांधकर पाठकों को फँसाते और उन्हें ऐसी बेदूदी पुस्तकें खरीदने को ललचाते हैं। इन पुस्तकों में अशुद्धियों की भी इतनी भरमार पाई जाती है कि उनमें दिये मंत्रों का यथावत् उच्चारण करने से लाभ के स्थान पर हानि मिलना सुनिश्चित रहता है। ऐसी निकृष्ट-पुस्तकों के लेखकों को उनके प्रकाशक 'विश्व प्रसिद्ध तान्त्रिक' प्रचारित करने में भी नहीं चूकते। ऐसी घटनाओं ने भारतीय तन्त्र-साहित्य को जितना बदनाम किया है, उसके विषय में जो भी लिखा जाय, कम है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, तान्त्रिक-साधना के लिए गुरु-निर्देश की महती आवश्यकता है। ढूँढने पर सद्गुरु का मिलना कोई कठिन-कार्य नहीं है, परन्तु गुरु की खोज करते समय ढोंगी एवं ठग तथाकथित-तन्त्राचार्यों से बचना नितान्त आवश्यक है। वे न केवल आपको निराश ही करेंगे अपितु आपकी जेब भी खाली करा लेंगे। वर्तमान समय में ऐसे विज्ञापनी-तान्त्रिक सर्वत्र सुलभ हैं। अस्तु। यदि सद्गुरु न मिलें, तो शास्त्रीय-ग्रंथों में जो प्रयोग लिखे हैं, उनकी साधना करते समय उन सभी विधि-निषेधों का यथावत् पालन करते हुए साधना आरंभ करनी चाहिए। यदि एक बार में

सफलता न मिले तो 'कहीं कोई त्रुटि रह गई' यह मान कर ग्रन्थीय-निर्देशानुसार पुनः प्रयोग करना चाहिए। इस प्रकार सावधानी पूर्वक एक-दो बार की असफलता के बावजूद नित्य प्रयोग करते रहने से एक दिन सफलता अवश्य मिल जाएगी। प्रारंभ में सरल प्रयोगों की साधना करनी चाहिए। उनमें सफल होने पर कठिन प्रयोगों में प्रवृत्त होना उचित रहेगा। यदि प्रारंभ में ही कोई क्लिष्ट-प्रयोग करना हो तो पूर्वोक्त निर्देशों का पालन करना चाहिए।

प्रस्तुत पुस्तक 'मन्त्र महार्णव', 'यन्त्र महार्णव' की श्रृंखला का तृतीय खण्ड है। इस खण्ड में अधिकांश ऐसे तान्त्रिक-प्रयोगों को संकलित किया गया है, जिनके साधन में किसी मन्त्र अथवा यन्त्र प्रयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती। केवल विभिन्न वस्तुओं के यथोचित उपयोग से ही मनोकामना की प्रवृत्ति होती है। परन्तु कुछ तान्त्रिक प्रयोग ऐसे भी होते हैं, जिनकी सफलता के लिए केवल एक बार ही निश्चित-संख्या में मन्त्र-जप करना आवश्यक होता है, तत्पश्चात् आवश्यकता के समय उस सिद्ध-मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित-वस्तु का प्रयोग करने मात्र से ही स्वयं की अथवा दूसरों की मनोकामना पूर्ण हो जाती है। झाड़-फूँक तथा टोना-टटका के अनेक प्रयोग ऐसी ही श्रेणी में आते हैं, कुछ तान्त्रिक-प्रयोग ऐसे भी होते हैं, जिनमें मन्त्र एवं यन्त्र प्रयोग की भी आवश्यकता होती है। अतः ऐसे मन्त्र-यन्त्र वाले महत्वपूर्ण प्रयोगों को भी इस पुस्तक के 'तृतीय खण्ड' में संकलित किया गया है।

किसी भी तान्त्रिक-साधना को प्रारंभ करने से पूर्व उसके संबंध में आवश्यक नियमादि की जानकारी प्राप्त कर लेना आवश्यक है, क्योंकि यथाविधि साधन न करने से असफलता ही हाथ लगती

है. ऐसे सभी आवश्यक रूप से ज्ञातव्य विषयों का 'प्रथम खण्ड' में उल्लेख किया गया है। 'द्वितीय खण्ड' में सरल तान्त्रिक प्रयोग संकलित हैं।

प्रस्तुत ग्रंथ के सम्पादन में हमें जिन प्राचीन ग्रंथों, सिद्ध-महात्माओं तथा अन्य सूत्रों से सहायता प्राप्त हुई है, उन सब के प्रति हम हृदय से कृतज्ञ हैं। प्रत्येक प्रयोग को बारम्बार एवं अन्य प्रामाणिक सूत्रों से यथावत् संकलित किया गया है, फिर भी किन्हीं विज्ञ-महानुभाव को कोई त्रुटि अथवा अशुद्धि दृष्टि गोचर हो तो उससे हमें कृपा पूर्वक अवगत करायें, ताकि अगले संस्करण में उसका निराकरण किया जा सके।

इस ग्रंथ में उल्लिखित किसी भी विषय के स्पष्टीकरण, तान्त्रिक-प्रयोग में आने वाली वस्तुओं, यन्त्र तथा दिशा-निर्देश आदि के लिए आवश्यकता अनुभव होने पर हमारे निम्नलिखित पते पर जबानी-पत्राचार किया जा सकता है। प्रयोग-साधन हेतु भी परामर्श कर सकते हैं। आशा है, यह संकलन तन्त्र-साधकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

विद्वज्जन किंकर—

रजनीश दीक्षित

(रजनीश दी. दीक्षित)

ज्योतिष-तन्त्र महाविद्यापीठ
महाविद्या कालोनी, मथुरा-३
(दिनाङ्क: १ जनवरी, १९९३ ई.)

विषय-सूची

क्रमाङ्क		पृष्ठाङ्क
१	'तन्त्र' का अर्थ तथा इतिहास	९
२	तन्त्र ग्रन्थ।	१४
३	साध्य जन्म-नक्षत्र-वृक्ष नामावली	१६
४	युग-भेदेन देव भेदा:, पुरश्चरणार्थ ह्रासत्व विधय	१८
५	शिष्य एवं गुरु परीक्षण	१९
६	दीक्षा-मुहूर्त्त निर्णय	२१
७	अनुष्ठानारम्भ मुहूर्त्त निर्णय	२५
८	भक्ष्याभक्ष्य निर्णय	२७
९	जप-स्थान निर्णय	२९
१०	स्थानभेदेन जप-माहात्म्य वर्णन	३१
११	चितादि लक्षण	३२
१२	दिङ्निर्णय	३३
१३	स्नान एवं तिलक निर्णय	३५
१४	आसन निर्णय	३६
१५	माला निर्णय	३८
१६	रुद्राक्ष माहात्म्य ४१, मुखभेदेन रुद्राक्षमाहात्म्य	४२
१७	रुद्राक्ष धारण विधि ४५, गोमुखी निर्णय, जपांगुलि	४६
१८	जप निर्णय ४७, होम निर्णय ५१, कुण्डकथन	५२
१९	शाकल्य एवं आहुति प्रमाण	५६
२०	अग्नि वर्णन ५९, पूर्णाहुत्यादि वर्णन	६०
२१	यन्त्र-लेखन-पात्र एवं धूपादि निर्णय	६१
२२	फल, पुष्प, धूप, दीपादि निर्णय	६४
२३	नैवेद्यादि निर्णय	६६
२४	वस्त्र एवं प्रदक्षिणा निर्णय	६८

क्रमांक		पृष्ठांक
२५.	कूर्मचक्रादि निर्णय	८८
२६.	दीप-स्थाने कूर्म विशेष:	७४
२७.	सिद्धादि-मन्त्र विचार	७६
२८.	अरि-मन्त्र विचार	७८
२९	ऋण-धन शोधन	८१
३०	मन्त्र भेदा:	८२
३१	मन्त्राणां छिन्नादि-दोष विचार	९०
३२	मन्त्राणां दश संस्कारा:	९७
३३	शारदातिलकोक्तं संस्कारा:	१०१
३४	शङ्करोक्त उपाय	१०३
३५	उत्कीलन विधि	१०५
३६	पुरश्चरण निर्णय	१०६
३७	स्नान, आसन, प्राणायाम, न्यास, माला, जप लक्षण	११२
३८	छिन्नादि-दोष निवारण विधि	११६
३९.	गायत्री-जप विधानम्	११८
४०.	पुरश्चरण विधि	१२१
४१.	मन्त्रसिद्धि चिह्ना:	१२८
४२.	पुरश्चरण नियम	१३०
४३.	अन्य विषय	१३१

विलोक्य नाना तन्त्राणि
प्रार्थितो तन्त्र-साधकः।
स्वबुद्ध्यनुसारेण
कृतो मन्त्र महोदधिः॥

बृहद् तन्त्र महार्णव (भा० टी०)

श्रीगणेशाय नमः ॥ तन्त्र शास्त्र के आदि प्रवर्त्तक भगवान् 'सदाशिव' हैं, इस का दूसरा नाम 'आगम' भी है। जो शास्त्र या विद्या भगवान् शिव के मुख से निःसृत हुई, श्रीविष्णु द्वारा अनुमोदित की गई तथा पार्वतीजी द्वारा सुनी गई, उसे 'आगम' अथवा 'तन्त्र' कहा जाता है। इस संबंध में प्रसिद्ध श्लोक इस प्रकार है— "आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतं च गिरिजा मुखे। मतं च वासुदेवस्य तत् आगम उच्यते।" एक अन्य श्लोक के अनुसार— "सर्वेऽर्था येन तन्यन्ते त्रायन्ते च भयाज्जनात्। इति तन्त्रस्य तन्त्रत्वं तन्त्रज्ञाः परिवीक्षते।" अर्थात्— "जो सभी अर्थों (मन्त्रार्थ, अनुष्ठानादि) का ज्ञानदाता हो तथा जिसके द्वारा लोगों को भय से सुरक्षा मिले, तन्त्र-मर्मज्ञ उसी शास्त्र को 'तन्त्र' कहते हैं।"

अर्थ— 'तन्त्र' शब्द का अर्थ है— 'तन्तु' अथवा 'सूत्र'। तात्पर्य यह कि जिस शास्त्र में विभिन्न प्रकार की साधनाएँ 'सूत्रबद्ध' अर्थात् 'एकीकृत' हों, उसे 'तन्त्र' कहा जाता है। व्याकरण के अनुसार— 'तन्त्र' शब्द 'तन्' धातु से बना है, जिसका अर्थ है— 'विस्तार'। 'त्र' धातु का अर्थ— 'त्राण' अर्थात् 'रक्षा' करना है, अतः तन्त्र का अर्थ हुआ— 'जो ज्ञान का विस्तार और रक्षा करे।' 'तन्यते विस्तार्यते ज्ञानम् अनेन इति तंत्रम्' परन्तु इस व्युत्पत्ति-मूलक अर्थ का साधना-मूलक तन्त्र से कोई संबंध नहीं है। यह एक विशिष्ट प्रकार की साधना-पद्धति है, जिससे भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। 'तंत्रांतर पटल' में कहा गया है—

'तनोति विपुलान् अर्थान् तत्व मंत्र समन्वितान्। त्राणं च कुरुते यस्मात् तंत्रमित्यभिधीयते॥" अर्थात् — जो आगमोक्त मंत्रादि समन्वित विशिष्ट साधना-पद्धति की व्याख्या करते हुए साधकों की रक्षा करता है, उसे 'तंत्र' कहते हैं।'

इतिहास — 'तन्त्र' को अथर्ववेद का 'उपवेद' माना जाता है, परन्तु सच पूछा जाय तो तन्त्र वेदों से भी प्राचीन है, क्योंकि जिस बीजरूपात्मक 'ॐ' कार का सर्वप्रथम आविर्भाव हुआ था, वह तन्त्र का ही तत्त्व है। अस्तु, तंत्र की सर्वाधिक प्राचीनता सिद्ध होती है। तन्त्र-विद्या का सम्बन्ध रसायन-शास्त्र, पदार्थ-विज्ञान, ज्योतिष, योग, आयुर्वेद आदि अनेक विद्याओं से है। शरीर में विद्यमान शक्ति-केन्द्रों को जाग्रत कर विशिष्ट कार्यों को सिद्ध करना — इसका मुख्य उद्देश्य रहा है, अतः मनुष्य-शरीर ही इसकी प्रयोगशाला है। शक्ति केन्द्रों को जाग्रत करने के लिए न्यास, चक्र तथा कुण्डलिनी-साधन किए जाते हैं। तन्त्र को एक ऐसी कला भी माना जाता है, जिसके द्वारा प्रकृति की अव्यक्त, अलभ्य तथा अलौकिक शक्तियों का दिग्दर्शन किया जा सकता है। इस साधना से भोग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, इस विद्या के आदि-प्रवर्त्तक भगवान् 'सदाशिव' हैं 'शिव' का अर्थ ही 'कल्याण' है, अतः जो सदैव कल्याण करे अथवा सर्वकाल में कल्याण स्वरूप रहे, उसे 'सदाशिव' समझना चाहिए। भगवान् शिव कल्याण तथा मंगल के अधिष्ठातृ-देव हैं, अतः इस कल्याणकारिणी विद्या के आदि-प्रवर्त्तक वे ही हो सकते थे। तान्त्रिक-भाषा में — जिन्होंने लोक-कल्याण के लिए मन्त्रोपदेश किये, ऐसे सभी महापुरुष 'सदाशिव' की श्रेणी में आते हैं। 'वायुपुराण' में सदाशिव

के २८ अवतारों का वर्णन मिलता है, जो प्रत्येक कल्प में एक-एक हुए हैं। इससे सिद्ध हुआ कि अबतक २८ 'सदाशिव' हो चुके हैं। बौद्ध-धर्म में इस 'सदाशिव-अवस्था' को 'सम्यक्-बुद्धत्व' कहा गया है तथा वहाँ २८ बुद्धों का उल्लेख भी पाया जाता है। जैन-धर्म के 'अर्हत' अथवा तीर्थंकर भी ऐसी ही अवस्था वाले हैं, जिनकी कुल संख्या २४ बताई गई है। श्री सदाशिव, बुद्ध तथा तीर्थंकर - इन सब के स्वरूप की कल्पना भी एक जैसी ही है — गौरवर्ण, ध्यान मग्न, पद्मासन बद्ध, त्यागी, तपोनिष्ठ एवं अर्द्ध-निमीलित नेत्र, महायोगी तथा ज्ञानरूप। अतः इनमें साम्यता का बोध भी होता है।

तन्त्र-ग्रंथों के प्रणयन का प्रारंभ बंगाल तथा काश्मीर से हुआ माना जाता है। तन्त्र-ग्रंथों के लेखन-सम्पादन से पूर्व तान्त्रिक-विधियाँ मौखिक-रूप में ही प्रचलित रही होंगी। दार्शनिक-दृष्टि तथा देवता-भेद से अनेक प्रकार के तन्त्र-ग्रंथों का निर्माण हुआ — शैव-तन्त्र, तथा शाक्त-तन्त्रों के साथ ही वैष्णव तन्त्र एवं गाणपत्य-तन्त्रों का भी सृजन हुआ। हिन्दू-तन्त्र ग्रंथों की रचना के साथ ही 'बौद्ध-तन्त्र' तथा 'जैन-तन्त्र' ग्रंथ भी निर्मित हुए। 'शैव-तन्त्र' में वाम-मार्ग तथा दक्षिण-मार्ग — ये दो मुख्य भेद हैं। इनके अतिरिक्त 'सिद्धान्त शैव' तथा 'मिश्र शैव' नामक दो प्रकार और भी बताये गये हैं। 'शैवागम' अर्थात 'शैव-तन्त्र' के पाशुपत, कापालिक, वीर शैव, जंगम शैव, रौद्र, भैरव, आदि अनेक भेद हैं, जिन्हें 'अवान्तर भेद' कहा जाता है। 'शाक्त-तन्त्र' का विस्तार अन्य तन्त्रों की अपेक्षा अधिक विस्तृत है। इसमें उपासना के विविध प्रकार तथा दीक्षा के विभिन्न रूप पाये जाते हैं। इसमें मातृका-वर्णों से निर्मित सम्पूर्ण वाङ्मय ही शिव-शाक्त्यात्मक माना गया है,

'वैष्णव तन्त्र' के ग्रंथों की संख्या 200 से भी अधिक पाई जाती है। इसमें 'पाञ्चरात्र' मुख्य है। इसके वर्ण्य-विषयों- यन्त्र, मंत्र, चक्र, धर्म, दर्शन, योग आदि मुख्य हैं। 'गाणपत्य-तन्त्र' में गणपति-उपासना विविध रूपों में की जाती है। इस शाखा के भी अनेक ग्रंथ हैं। 'बौद्ध तन्त्र' का प्रारंभ भगवान् बुद्ध के महानिर्वाण के 22 वर्ष बाद हुआ माना जाता है। भगवान् बुद्ध ने स्वयं गुह्यपति वज्रपाणि के रूप में अवतरित होकर इसी तन्त्रों का उपदेश दिया था- ऐसी मान्यता है। बौद्ध-धर्म के वज्रयान तथा हीनयान - ये दो भेद हैं। वज्रयान विशुद्ध बुद्धिवाद के सहज मार्ग को उद्घाटित करता है, अतः इसे हीनयान एवं सामान्य-महायान से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है। बौद्ध तन्त्र-साहित्य के ग्रंथ भी बड़ी संख्या में उपलब्ध होते हैं। 'जैन-तन्त्र' के प्रवर्तक आदि-तीर्थंकर ऋषभदेव माने जाते हैं। जैन-धर्म के दिगम्बर तथा श्वेताम्बर ये दो मुख्य भेद हैं। इन दोनों में भी तन्त्र-ग्रंथ तथा तान्त्रिक-प्रयोग बहुतायत से पाये जाते हैं।

उक्त प्रमुख तन्त्र-विभागों के अतिरिक्त मुस्लिम-तन्त्र, क्रमा-तन्त्र एवं लोकमाध्यमी तन्त्रों के संकलन-ग्रंथ भी यत्र-तत्र पाये जाते हैं। वर्तमान-समय में प्राचीन तन्त्र ग्रंथों की पाण्डुलिपियाँ अधिकांशतः भूतपूर्व देसी-रियासतों के पुस्तकालयों एवं संग्रहालयों में सुरक्षित पाई जाती हैं। उनमें से अधिकांश भोजपत्र तथा ताड़पत्र आदि पर लिखी गई हैं। काग़ज़ पर लिखी कुछ पाण्डुलिपियाँ भी महत्वपूर्ण हैं, परन्तु ऐसा प्राचीन तन्त्र-साहित्य अधिकांशतः नष्ट हो गया है। जो थोड़े से ग्रंथ प्रकाश में आये हैं, उन्हीं में उलट-फेर करके मध्यकालीन ग्रंथों की रचना वर्तमान में की जा रही है

मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र — ये तीनों एक ही सत्य के तीन प्रकार हैं। जो क्रिया साधक की सामान्य-शक्ति को उद्दीप्त कर उसमें गुरुतर-शक्ति का संचार करती है, उसके गूढ़-रहस्य को 'मन्त्र' कहा जाता है। 'मन्त्र' का चित्रात्मक रूप 'यन्त्र' है तथा क्रियात्मक रूप को 'तन्त्र' समझना चाहिए। जिसमें इन तीनों — मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र का वर्णन किया गया हो उसे 'तन्त्र शास्त्र' कहते हैं अर्थात् 'तन्त्र-शास्त्र' के अन्तर्गत मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र - ये तीनों ही सम्मिलित रहते हैं।

'मन्त्र' और 'यन्त्रों' का विशद् वर्णन हम अपने 'वृहद् मन्त्र महार्णव' तथा 'वृहद् यन्त्र महार्णव' नामक ग्रंथों में कर चुके हैं। प्रस्तुत ग्रंथ में तांत्रिक प्रयोगों का विस्तृत उल्लेख किया गया है। स्मरणीय है कि अनेक तान्त्रिक-प्रयोग ऐसे होते हैं, जिनमें किसी प्रकार के मन्त्र-जप अथवा यन्त्र-पूजा आदि की आवश्यकता नहीं होती। वनस्पतियों आदि से सम्बन्धित तांत्रिक प्रयोग इसी श्रेणी में आते हैं, परन्तु अधिकांश तान्त्रिक-प्रयोग ऐसे होते हैं, जिनमें मन्त्र-जप तथा यन्त्र-पूजन करना भी आवश्यक होता है। कुछ तन्त्र ऐसे भी होते हैं, जिनके लिए किसी एक मन्त्र को जप द्वारा सिद्ध कर लेने के बाद विभिन्न वस्तुओं के प्रयोग से विविध प्रकार के फल प्राप्त किये जा सकते हैं। अनेक प्रयोग मन्त्र के साथ यन्त्र तथा तन्त्र साधन द्वारा ही सफलता प्राप्त करते हैं। इस ग्रंथ में ऐसे सभी तान्त्रिक प्रयोगों को संकलित किया गया है। इनमें अधिकांश प्रयोग ऐसे हैं, जो पूर्व-संग्रहों में संकलित नहीं हैं। प्राचीन शास्त्रीय प्रयोगों के अतिरिक्त अर्वाचीन वाम, ग्राम्य तथा लोक-प्रचलित तन्त्र भी इसमें संग्रहीत हैं।

सामान्य-ज्ञान एवं साधन-विधि विषयक आवश्यक ज्ञातव्य

तन्त्र ग्रंथा: - सिद्धीश्वरं महातन्त्रं कालीतन्त्रं कुलार्णवम्। ज्ञानार्णवं नीलतन्त्रं फेत्कारीतन्त्रमुत्तमम् ॥१॥ देव्यागमं चोत्तराख्यं श्रीक्रमं सिद्धियामलम्। मत्स्यसूक्तं सिद्धिसारं सिद्धि सारस्वतं तथा ॥२॥ वाराही तंत्र देवेशि योगिनी तन्त्रमुत्तमम्। गणेशामर्षिणी तन्त्रं नित्यतन्त्रं शिवागमम् ॥३॥ चामुण्डाख्यं महेशानि मुण्डमालाख्य तन्त्रकम्। हंस माहेश्वरं तन्त्रं निरुत्तर मनुत्तमम् ॥४॥ कुलप्रकाशकं देवि कल्प गात्यर्वकं शिवे। क्रियासारं निबन्धाख्यं स्वतन्त्रं तन्त्रमुत्तमम् ॥५॥ सम्मोहनं तन्त्रराजं ललिताख्यं तथा शिवे। वाराख्यं मालिनी तन्त्रं कुब्जामतमुत्तमम् ॥६॥ बृहच्च श्रीक्रमं तन्त्रं गवाक्षं कुसुमादिनि। विश्वेश्वर तन्त्रं च मालिनी विजयं तथा ॥७॥ समयाचार तन्त्रं च भैरवी तन्त्र मुत्तमम्। योगिनी हृदयं तन्त्रं भैरवं परमेश्वरि ॥८॥ सनत्कुमारकं तन्त्रं योनितन्त्रं प्रकीर्तितम्। तन्त्रान्तरं च देवेशि नवरत्नेश्वरं तथा ॥९॥ कुलचूड़ामणिं तन्त्रं भावचूड़ामणीयकम्। तन्त्रदेव प्रकाशं च कामाख्या नामकं तथा ॥१०॥ कामधेनुं कुमारीं च भूतडामर सप्तकम्। नलिनी विजयं तन्त्रं यामलं ब्रह्मयामलम् ॥११॥ विश्वसारं महातन्त्रं महाकुलकुलान्तानम्। कुलोड्डीशं कुब्जकाख्यं मन्त्रचिन्तामणीयकम् ॥१२॥

टीका - शिवजी बोले - हे परमेश्वरि! सर्वप्रथम मैं तन्त्र-ग्रंथों के नाम कहता हूँ। सुनो - (१) सिद्धीश्वर तन्त्र, (२) महातन्त्र, (३) काली तन्त्र, (४) कुलार्णव तन्त्र, (५) ज्ञानार्णव तन्त्र (६) नील तन्त्र, (७) फेत्कारी तन्त्र, (८) देव्यागम तन्त्र, (९) उत्तर तन्त्र, (१०) श्रीक्रम तन्त्र, (११) सिद्धियामल तन्त्र (१२) मत्स्य

सुप्त तन्त्र, (२३) सिद्धसार तन्त्र, (२४) सिद्ध सारस्वत तन्त्र, (२५) वाराही तन्त्र, (२६) योगिनी तन्त्र, (२७) गणेशमंत्रिणी तन्त्र, (२८) नित्य तन्त्र, (२९) शिवागम तन्त्र, (३०) चामुण्डा तन्त्र, (३१) मुण्डमाला तन्त्र, (३२) हंसमाहेश्वर तन्त्र, (३३) निरुत्तर तन्त्र, (३४) कुल प्रकाशक तन्त्र, (३५) कल्प तन्त्र, (३६) गान्धर्व तन्त्र, (३७) क्रियासार तन्त्र, (३८) निबन्ध तन्त्र, (३९) स्वतन्त्र तन्त्र, (४०) सम्मोहन तन्त्र, (४१) तन्त्रराज तन्त्र, (४२) ललिता तन्त्र, (४३) वाच्या तन्त्र, (४४) मालिनी तन्त्र, (४५) कुब्जयामल तन्त्र, (४६) बृहत्तंत्र (४७) श्रीक्रम तन्त्र, (४८) गवाक्ष तन्त्र, (४९) कुसुमादिनी तन्त्र, (५०) विद्युद्देश्वर तन्त्र, (५१) मालिनीविजय तन्त्र, (५२) समयाचार तन्त्र, (५३) भैरवी तन्त्र, (५४) योगिनी हृदय तन्त्र, (५५) भैरव तन्त्र, (५६) सनत्कुमार तन्त्र (५७) योनि तन्त्र, (५८) नवरत्नेश्वर तन्त्र, (५९) कुलचूड़ामणि तन्त्र, (६०) भावचूड़ामणि तन्त्र, (६१) तन्त्रदेवप्रकाश तन्त्र, (६२) कामाख्या तन्त्र, (६३) कामधेनु तन्त्र, (६४) कुमारी तन्त्र, (६५) शृंगडामर तन्त्र, (६६) नलिनी विजय तन्त्र, (६७) यामल तन्त्र, (६८) ब्रह्म यामल तन्त्र, (६९) विश्वसार तन्त्र, (७०) महातन्त्र, (७१) महाकुलकुलोत्तान तन्त्र, (७२) कुलोड्डीश तन्त्र, (७३) कुब्जा तन्त्र तथा (७४) यन्त्र चिन्तामणि तन्त्र।

एतानि तन्त्ररत्नानि सफलानि युगे-युगे। कालीविलासकादीनि तन्त्राणि परमेश्वरि, कलिकालौ प्रसिद्धानि अश्वाक्रान्तासु भूमिषु॥

टीका- हे परमेश्वरि! ये सभी तन्त्र-रत्न ग्रंथ सभी युगों में फलदेने वाले हैं। हे देवि! कालीविलास आदि तन्त्र कलियुग में अश्वाक्रान्ता भूमियों में प्रसिद्ध हैं।

अथ साध्य जन्म-नक्षत्र-वृक्ष नामावली— कारस्करोऽरिष्ट धात्री स्याद्धु दुम्बर तरुः पुनः / जम्बू: खदिर कृष्णाख्यौ वंशाश्वित्थपलंकषौ ॥१॥ नाग रोहिणि नामानौ पलाशा प्लक्ष संज्ञकौ / अम्बबिल्वार्जुनाख्यः विकङ्कत महीरुहा ॥2॥ बकुलः सरलः सर्ज्जो वंजुलः पनसार्कको / शमी कदम्ब निम्बाम्र मधूका वृक्ष मागदिवनः ॥३॥

टीका— सत्ताईस नक्षत्रों से सम्बन्धित वृक्षों की नामावली 'शारदा तिलक' ग्रंथ के अनुसार क्रमशः निम्न क्रम से समझलें—

नक्षत्र नाम		वृक्ष नाम
१ अश्विनी	–	कारस्कर
२ भरणी	–	धात्री (आँवला)
३ कृत्तिका	–	उदुम्बर (गूलर)
४ रोहिणी	–	जम्बू (जामुन)
५ मृगशिरा	–	खदिर (खैर)
६ आर्द्रा	–	कृष्ण
७ पुनर्वसु	–	वंश (बाँस)
८ पुष्य	–	पीपल
९ आश्लेषा	–	नाग
१० मघा	–	रोहिणी
११ पूर्वाफाल्गुनी	–	पलाश (ढाक)
१२ उत्तराफाल्गुनी	–	प्लक्ष (पाकड़ी)
१३ हस्त	–	अम्बष्ठ
१४ चित्रा	–	बिल्व (बेल)
१५ स्वाति	–	अर्जुन
१६ विशाखा	–	विकङ्कत
१७ अनुराधा	–	बकुल (मौलश्री)
१८ ज्येष्ठा	–	सरल
१९ मूल	–	सर्ज
२० पूर्वाषाढ़ा	–	वञ्जुल
२१ उत्तराषाढ़ा	–	पनस (कटहल)
२२ श्रवण	–	अर्क (सफेद मदार)
२३ धनिष्ठा	–	शमी
२४ शतभिषा	–	कदम्ब
२५ पूर्वाभाद्रपद	–	निम्ब (नीम)
२६ उत्तराभाद्रपद	–	आम्र (आम)
२७ रेवती	–	मधूका

अथ युगभेदेन देव भेदाः - ब्रह्मा कृतयुगे देवस्त्रेतायां भगवान् रविः । द्वापरे भगवान् विष्णुः कलौ देवो महेश्वरः ॥१॥

टीका - 'युग-भेद' से देवताओं के भेद इस प्रकार बताये गये हैं - (१) सत्ययुग में - ब्रह्मा, (२) त्रेतायुग में - भगवान् सूर्य, (३) द्वापर युग में भगवान् विष्णु तथा (४) कलियुग में - शिव। (जिस युग में जिस देवता की प्रधानता बताई गई है, उस युग में उसी देवता की पूजा से सफलता प्राप्त होती है। कलियुग के मुख्य देवता 'शिव' हैं, अतः वर्तमान युग में इन्हीं की पूजा करना उचित है)॥

पुरश्चरणार्थं ज्ञातव्य-विषय - तिथिं वारञ्च नक्षत्रं योगमासा नृपक्रमम् । दीपेशां कुल चक्राणि ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥२॥ ऋषिछन्दो देवताः न्यास ध्यानार्चनादिकम् । बीज शक्तिः कालवेधो ज्ञात्वा मन्त्राणि साधयेत् ॥२॥ पञ्च शुद्धासनं प्राणायामं न्यासाष्टि मालिकाः । दोष संस्कार मुद्रा दीन् ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥३॥ अक्षवासनादि दिग्वर्ण नाडी तत्त्वानुसङ्गतिम् । देवता कालसन्ध्यां च ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥४॥ उत्पत्ति रसनावर्ण मूर्त्ति संस्कार वर्णिकाम् । कुण्डद्रव्य प्रमाणादीन् ज्ञात्वा होमं समाचरेत् ॥६॥ अग्निज्वां धूम्रवर्णं ध्यानगम्यं शिवाकृतिः । दूतचेष्टादिकं ज्ञात्वा कल्पयेत्तु शुभाशुभम् ॥७॥ मन्त्रतत्त्वानुसन्धानं देहवेशादि लक्षणम् । मन्त्रोच्चारण भेदञ्च ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥८॥ मण्डलं कलशं दिव्यं शुद्धगन्धाष्टकादिकम् । दीक्षा नाम प्रदानानि ज्ञात्वा दीक्षां समाचरेत् ॥९॥ नित्यं नैमित्तिकं काम्यं नित्यमे नाम वासनाम् । पूजा धारणा मन्त्रादि ज्ञात्वा कर्माणि साधयेत् ॥१०॥ पूजा गृह प्रवेशादि कुल पूजन लक्षणम् । कुलद्रव्यादि शुद्धिञ्च ज्ञात्वा पूजां समाचरेत् ॥११॥

टीका- अब 'कुलार्णवि तन्त्र' के अनुसार पुरश्चरण के लिए इन तथ्य विषयों का उल्लेख किया जाता है, जो इस प्रकार है— 'साधक को चाहिए कि वह तिथि, वार, नक्षत्र, योग, मास, ऋतु, पक्ष, दीक्षा तथा सूर्य-चक्र आदि को जानकर कर्म आरंभ करे ॥१॥ ऋषि, देवता, छंद, अङ्गन्यास, ध्यान, अर्चना आदि की विधि, बीज, शक्ति, काल तथा वेध आदि को जान कर मन्त्र-साधन करे ॥२॥ पाँच प्रकार के शुद्ध आसन; प्राणायाम, रुद्राक्ष-माला, दोष-संस्कार, एवं मुद्राओं को जान कर कर्म करे ॥३॥ साध्य, साधक, लेखनी, कर्म, पंच-द्रव्य, स्थान एवं मन्त्र के प्रमाण को जान कर कर्मों का साधन करे ॥४॥ आसन, दिशा, वर्ण, नाड़ी आदि तत्त्वों की संगति, देवता तथा काल-संज्ञा को जानने के बाद ही कर्म करना चाहिए ॥५॥ उत्पत्ति, रसना, वर्ण, मूर्त्ति, संस्कार, सिद्धादि, कुण्ड तथा द्रव्यों के प्रमाण आदि की जानकारी प्राप्त करके ही होम करना चाहिए ॥६॥ अग्नि की प्रभा, धुँए का वर्ण, ध्वनि, गंध, शिखा, आकृति एवं दूत की चेष्टा को देख कर शुभ-अशुभ लक्षणों की कल्पना करनी चाहिए ॥७॥ मन्त्र-तन्त्र के अनुसंधान के आधार पर देह-वेशादि लक्षणों का अनुमान करे तथा मन्त्रोच्चारण के भेद को जानने के बाद ही कर्म-साधन में प्रवृत्त हो ॥८॥ मण्डल, कलश, दिशा-शुद्धि, अष्ट-गंध, दीक्षा तथा नामकरण को समझने के पश्चात् ही कर्म में प्रवृत्त हो ॥९॥ नित्य, नैमित्तिक, काम्य, निषिद्ध, नाम, वासना, पूजा, धारण करने की विधि तथा मन्त्र की जानकारी प्राप्त करके कर्म-साधन करे ॥१०॥ पूजा-गृह, प्रवेश, कुल-पूजा के लक्षण तथा कल-द्रव्यादि की शुद्धि का ज्ञान प्राप्त करके ही पूजा आरंभ करे ॥११॥

मं.

अथ शिष्य एवं गुरु परीक्षण- ज्ञानेन क्रियया वापि गुरुः शिष्यं परीक्षयेत् ।
संवत्सरं तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा प्रयत्नतः ॥१॥ शिष्योऽपि लक्षणैरेतैः कुर्याद् गुरु परीक्षणं । आनन्दार्थं जपे
स्तोत्रैर्ध्याने होमार्चनादिषु ॥२॥ ज्ञानोपदेशसामर्थ्ये मन्त्रशुद्धिमधीश्वरम् । बोधकत्वं च विज्ञाय
शिष्यो भूयान्न चान्यथा ॥३॥

टीका - अब शिष्य तथा गुरु के परीक्षण की विधि बताते हैं - 'गुरु को उचित है कि वह ज्ञान अथवा क्रिया द्वारा शिष्य की परीक्षा करे। यह परीक्षण एक वर्ष, छः मास अथवा तीन मास की अवधि का हो सकता है ॥१॥ शिष्य को भी उचित है कि वह लक्षणों- जप, स्तोत्र, ध्यान, होम, अर्चना, ज्ञानोपदेश, सामर्थ्य, मन्त्र-शुद्धि, महानता एवं बोध कराने की क्षमता आदि आधारों पर गुरु का परीक्षण करे। यदि गुरु में यह गुण न हों तो उनका शिष्यत्व स्वीकार न करे ॥२-३॥

श्रीगुरुः परमेशानि शुद्धवेषो मनोहरः । सर्वलक्षण सम्पन्नः सर्वावयव शोभितः ॥४॥
अगर्व्वी गर्वितश्च पात्रापात्रविशेषवित् । शिवं विष्णुं समः साधुर्न्दक दर्शन दूषकः ॥५॥ नित्य
नैमित्तिके काम्ये रतः कर्मण्य निन्दिते । यदृच्छालाभ सन्तुष्टो गुरु दोष विभेदकः ॥६॥ इत्यादि लक्षणो
पेतः श्रीगुरुः कथितः प्रिये ॥ अत्रिनेत्र शिवः साक्षाद्-चतुर्बाहुरच्युतः । अचतुर्वदनो ब्रह्मा श्रीगुरुः
कथितः प्रिये ॥७॥ निन्दितस्तु विधुर्मन्त्रस्तथा मानामलस्य च । सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरिपक्षाश्रि-
तस्य च ॥८॥ शूद्राणां च तथा स्त्रीणां गुरुत्वं न कदाचन । योग्यमार्गं गुरुं त्यक्त्वा शिष्यः कूटं क्रिया-

विदम् । गुहं समाश्रयेद्दत्तं यः प्रयाति स दुर्गतिम् ॥ ६ ॥ नदेयमर्थलुब्धाय शिष्टुनायास्थिराय च ।
भक्तिश्रद्धाविहीनाय शुश्रूषाविमुखाय च ॥ १० ॥

टीका - 'कुलार्णव तन्त्र' में शिवजी ने पार्वती से कहा है - 'हे परमेश्वरी! गुरु शुद्ध वेष वाला, मनोहर (सुन्दर), सर्वलक्षण सम्पन्न तथा समस्त अवयवों (अङ्गों) से युक्त होना चाहिए ॥ ४ ॥ वह अनुग्रह अर्थात् नेतृत्व-शक्ति सम्पन्न, गंभीर, पात्र तथा अपात्र की पहिचान रखने वाला, शिव तथा विष्णु के समान साधु तथा शुभ-दर्शन (जो देखने में असुन्दर न लगे) होना चाहिए ॥ ५ ॥ वह नित्य-नैमित्तिक कर्मों को करने वाला, निन्दित-कर्मों को न करने वाला तथा स्वयं ही प्राप्त होने वाले लाभ से सन्तुष्ट रहने वाला व गुण-दोष में भेद करने वाला होना चाहिए। हे प्रिये! जो इन सब लक्षणों से युक्त हो वही 'गुरु' कहलाने योग्य है। तीन नेत्र न होते हुए भी जो 'शिव' के समान तथा चार भुजाएँ न होते हुए भी 'विष्णु' के समान व चार मुखों वाला न होते हुए भी जो 'ब्रह्मा' के समान महान हो, वही 'गुरु' कहलाने के योग्य है ॥ ६-७ ॥ पिता अथवा नाना से मन्त्र लेना अर्थात् उसे 'गुरु' बनाना 'निन्दित' माना गया है। सहोदर, छोटे भाई तथा शत्रु-पक्ष के आश्रित व्यक्ति को गुरु न बनाये ॥ ८ ॥ शूद्रों तथा स्त्रियों को कभी भी 'गुरु' न बनाये। जो व्यक्ति योग्य-गुरु को छोड़कर शिष्य जानने वाले शूद्र को अपना गुरु बनाता है, वह दुर्गति को प्राप्त होता है ॥ ९ ॥ गुरु को भी चाहिए कि जो व्यक्ति धन का लोभी, चुगलखोर, अस्थिर-चित्त, भक्ति-श्रद्धा-विहीन तथा सेवा से विमुख हो उसे दीक्षा न दे अर्थात् अपना शिष्य न बनाये ॥ १० ॥

म.

अथ दीक्षा मुहूर्त्त निर्णय- वैशाखे श्रावणे वापि आश्विने कार्तिकेय वा। फाल्गुने मार्गशीर्षे वा कुर्यान्मन्त्रस्य दीक्षणम् ॥१॥ शारत्काले च मन्त्रस्य दीक्षा श्रेष्ठफलप्रदा। फाल्गुने मार्गशीर्षे च ज्येष्ठे दीक्षा तु मध्यमा ॥२॥ आषाढे श्रावणे मासे कनिष्ठा सद्भिरादृता। निन्दितश्चाधिमासस्तु पौषो भाद्रपदस्तथा (इति सिद्धान्त शेखरे) ॥३॥ मुक्ति कामैः कृष्णपक्षे भूति कामैः सितेसदा पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा ॥४॥ त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ताः सर्वकामदाः। रवौ गुरौ विधौ दीक्षा कर्तव्या बुध शुक्रयोः ॥५॥ अश्विनी रोहिणी स्वाती विशाखा हस्तमेषु च। ज्येष्ठोत्तरा त्रये चैव कुर्यान्मन्त्राभिवेचनम् ॥६॥ श्रवणा दुर्धनिष्ठा च पुष्यः शान्तभिषा तथा। दीक्षा नक्षत्र जातानी त्याहुस्तन्त्रार्थ कोविदाः ॥७॥ मेष कर्कट कन्यासु तुलायां वृश्चिके तथा। मकरे कुम्भके चैव दीक्षा सर्व शुभावहा ॥८॥ षष्ठी भाद्रपदे मास्याश्विने कृष्णा त्रयोदशी कार्तिके नवमी शुक्ला श्रावणे कृष्णपञ्चमी ॥९॥ एतानि देव पर्वाणि तीर्थकोटि फलानि च। निन्दितेष्वपि मासेषु दीक्षाका गृहणे शुभा ॥१०॥ न मास तिथिवारादि शोधनं सूर्य पर्वणि। सिद्धिर्भवति मन्त्रस्य विनाभ्यासेन योगतः ॥११॥ सतीर्थे कविधुग्रासे महापर्वणि चैव हि। मन्त्र दीक्षां प्रकुर्वाणो मासर्क्षादीन्न बोधयेत् ॥१२॥ (इति रुद्र यामले) ॥

टीका - मन्त्र-दीक्षा वैशाख, श्रावण, आश्विन, कार्तिक, फाल्गुन अथवा मार्गशीर्ष मास में देनी चाहिए ॥१॥ शरद-काल में मन्त्र की दीक्षा श्रेष्ठ फलदायक होती है। फाल्गुन, मार्गशीर्ष तथा ज्येष्ठ मास में दी जाने वाली दीक्षा मध्यम फलदायक होती है ॥२॥ आषाढ़, श्रावण मास

में दी जाने वाली दीक्षा कनिष्ठ फल देने वाली होती है। अधिमास (मली), पौष तथा भाद्रपद के महीने दीक्षा के लिए निन्दित (वर्जित) कहे गए हैं — यह सिद्धान्त शेखर का मत है॥ ३॥ 'मुक्ति' की कामना रखने वाले को कृष्ण पक्ष में तथा भुक्ति (लौकिक-सुख-समृद्धि) की कामना वाले को शुक्लपक्ष में दीक्षा लेनी चाहिए। पूर्णिमा, पञ्चमी, द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी और दशमी — ये तिथियाँ सभी कामनाओं की पूर्ति करने वाली हैं। रविवार, गुरुवार, सोमवार, बुधवार तथा शुक्रवार दीक्षा के लिए शुभ माने गये हैं॥ ३-५॥ अश्विनी, रोहिणी, स्वाति, विशाखा, हस्ता, ज्येष्ठा, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद तथा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रों में मन्त्र-दीक्षा देनी चाहिए॥ ६॥ श्रवण, आर्द्रा, धनिष्ठा तथा शतभिषा नक्षत्रों को भी तन्त्र-शास्त्रज्ञों ने दीक्षा-नक्षत्र कहा है॥ ७॥ मेष, कर्क, कन्या, तुला, वृश्चिक, मकर तथा कुंभ राशियों में दीक्षा देना सब प्रकार से शुभ है॥ ८॥ भाद्रपद मास के कृष्ण पक्ष की षष्ठी, आश्विन मास के कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी, कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष की नवमी तथा श्रावण मास के कृष्ण पक्ष की पंचमी — इन तिथियों को 'देव पर्व' कहा गया है। इनमें दीक्षा देने से करोड़ों तीर्थों का फल प्राप्त होता है॥ ९-१०॥ सूर्य-ग्रहण के पर्व के समय यदि 'निन्दित-मास' हो तो वह भी शुभ होता है। ऐसे पर्व में मास, तिथि, वार आदि का विचार करना आवश्यक नहीं होता। इस दिन दीक्षा लिए गए मन्त्र की सिद्धि बिना किसी अभ्यास के ही शीघ्रता पूर्वक हो जाती है॥ ११॥ 'रुद्रयामल' में कहा गया है कि सूर्य अथवा चन्द्र ग्रहण के समय किसी तीर्थ-स्थल में मन्त्र की दीक्षा देना प्रशस्त माना गया है, क्योंकि ऐसे अवसर 'महापर्व'

माने गये हैं। इनमें मन्त्र-दीक्षा देने वाले को मास तथा नक्षत्र आदि का शोधन (विचार) नहीं करना चाहिए ॥१२॥

विषुवेष्ययनद्वन्द्वं संक्रांत्या मदनोत्सवे। दीक्षा कार्यान्यकालेपि पवित्रे गुरु मः
वर्जणि ॥१३॥ (इति संहितायाम्)॥ सुतार्चेऽर्कविधुग्रासे पुष्पारण्ये वनेषु च। पुण्यक्षेत्रे, कुरुक्षेत्रे, देवीपीठे चतुष्टये। प्रयागे श्रीगिरौ काश्यां कालाकालं न शोधयेत् ॥१४॥ (इति शैवागमे)॥ चन्द्र सूर्य ग्रहे चैव सिद्धक्षेत्रे शिवालये। मन्त्रमात्रप्रकथनमुपदेशः स उच्यते॥१५॥ (इति उपदेशसुधा तन्त्रे)॥ तिथिं विनापि दीक्षायां विशिष्टं वासरं शृणु। दुर्लभे सद्गुरूणां च सद्भुत्सङ्गे उपस्थिते ॥१६॥ तदनुज्ञा यदा लब्धा स दीक्षावसरो महान्। ग्रामे वा यदि वारण्ये क्षेत्रे वा यदि वा निशि। आगच्छति गुरुर्देवो यदा दीक्षा तदा भवेत् ॥१७॥ (इति सारसंहितायाम्)॥

टीका- 'संहिता' में कहा है— कर्क तथा मकर राशि में सूर्य हो तो, दोनों अयनों में, संक्रान्तियों के अवसर पर तथा मदनोत्सव पर दीक्षा देनी चाहिए। अन्य पवित्र महा-पर्वों पर भी दीक्षा देनी चाहिए ॥१३॥ 'शैवागम' में कहा गया है— 'सूर्य तथा चन्द्रमा का ग्रहण लगने पर पवित्र तीर्थों में, पुष्पारण्य में, वन में, पुण्य-क्षेत्र में, कुरुक्षेत्र में, चारों देवी पीठों में, प्रयाग में, श्रीपर्वत पर व काशी में काला काल का शोधन नहीं करना चाहिए (अर्थात् इन अवसरों तथा स्थानों में चाहे जब दीक्षा दी जा सकती है ॥१४॥ 'उपदेश सुधा तन्त्र' के अनुसार— चन्द्र-सूर्य के ग्रहण में, सिद्ध क्षेत्र में तथा शिवा-लय (शिव-मन्दिर) में केवल मन्त्र पढ़ देने मात्र से ही उपदेश (दीक्षा) हो जाता है ॥१५॥

'सार संहिता' में कहा गया है — ' तिथि के बिना भी जो समय दीक्षा के लिए शुभ हैं, उनके विषय में सुनो। दुर्लभ सद्गुरु से जब भी भेंट हो, तब उनकी जब भी आज्ञा प्राप्त हो, वही अवसर दीक्षा के लिए महान (शुभ) होता है। गुरुदेव जब भी गाँव में, वन में, खेत में, दिन अथवा रात्रि में जब कभी आ जाँय तभी दीक्षा हो जानी उचित है ॥ १६-१८॥

यदैवेच्छा तदा दीक्षा गुरोराज्ञानुरूपतः। न तिथिर्न व्रतो होमो न स्नानं न जपक्रिया (दीक्षायाः कारणं किंतु स्वेच्छा वाज्ञा गुरोरिह ॥१८॥ (इति तत्त्वसारे)॥ सन्ध्यागर्जित निर्घोष भूकम्पोल्कानिपातनम्। एतानन्यांश्च दिवसान् स्मृत्युक्तांश्च वर्जयेत् ॥१९॥ (इति वैशाम्पायन संहितायाम्)॥ आचार्यादनभिज्ञप्त मन्त्रश्चादत्तदक्षिणः। अभ्यस्तोपि सदा मन्त्रः क्वचिन्नाम कल्पते ॥२०॥ (इति नारदीये)॥

टीका — 'तत्त्वसार' में कहा गया है — ' जैसी दैवेच्छा हो, गुरु की आज्ञा के अनुरूप वैसी ही दीक्षा होनी चाहिए। दीक्षा के लिए किसी तिथि, व्रत, होम, स्नान अथवा जप-क्रिया की आवश्यकता नहीं है। दीक्षा के लिए केवल अपनी इच्छा अथवा गुरु की आज्ञा ही पर्याप्त है ॥१८॥ 'वैशाम्पायन संहिता' में कहा है — ' सन्ध्या के समय, बादलों की गर्जना के समय, भूकम्प के समय, उल्कापात के समय तथा स्मृति-ग्रंथों में वर्जित अन्य दिनों में भी दीक्षा लेना वर्जित है ॥१९॥ 'नारदीय तन्त्र' में कहा गया है — ' आचार्य से मन्त्र की दीक्षा लिए बिना तथा मन्त्र-दीक्षा की दक्षिणा दिये बिना यदि मन्त्र का अभ्यास किया जाय तो वह फलदायक नहीं होता ॥ २०॥

नं. ५२

अथ अनुष्ठानारंभ मुहूर्त निर्णयः ॥ - कार्तिकाश्विन वैशाख माघेषु मार्गशिर्षके फाल्गुने श्रावणे मन्त्र पुरश्चर्या प्रशस्यते ॥ १॥ (इति रुद्रयामले)॥ मन्त्रस्यारम्भणं मेषे धन-धान्य प्रदं भवेत् । वृषे मरणमाप्नोति मिथुने ऽपत्य नाशनम् ॥ २॥ कर्कटे सर्वसिद्धिः स्यात् सिंहे मेधा विनाशनम् । कन्या लक्ष्मीप्रदा नित्यं तुलायां सर्वसिद्धयः ॥ ३॥ वृश्चिके स्वर्णलाभः स्याद्धनुर्मिनं विनाशनम् । मकरः पुण्यदः प्रोक्तः कुम्भो धन समृद्धिदः ॥ मीनो दुःखप्रदो नित्य मेवं मास विधिक्रमः ॥ ४॥ (इति वैशाख्यायन संहितायाम्) ॥ चन्द्र तारानुकूले च शुक्लपक्षे शुभे दिने । आरंभे तु पुरश्चर्या हरौ सुप्ते न चाचरेत् ॥ ५॥ (इति मन्त्र सारे)॥ पूर्णिमा पंचमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा । त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा । या तिथिर्यस्य देवस्य तस्यां वा शुभदः स्मृतः ॥ ६॥ (इति स्मृति तत्वे) मन्त्रारंभो दयौ शुक्रे शुभे जीवे विशोधनः । शनौ मृत्युः क्षयो भौमे सोमे मध्यफलं स्मृतम् ॥ ७॥ (इति पुरश्चरण दीपिकायाम्)॥ पुनर्वसुद्वये हस्ते त्रयुत्तरे श्रवणत्रये । रेवती द्वितये हस्ते ऽनुराधा रोहिणी द्वये । शान्तिकं पौष्टिकं कर्म पुण्याहे कीर्तितं बुधैः ॥ ८॥ (इति मुहूर्त गणपतौ)॥ अश्विनी रोहिणी स्वाती विशाखाहस्तमेषु च । ज्येष्ठोत्तरात्रयेष्वेव कुर्यान्मन्त्राभिषेचनम् ॥ ९॥ (इति पुरश्चरण दीपिकायाम्)॥ आर्द्रायां कृत्तिकायां च मन्त्रारम्भः प्रशस्यते । यदीशस्य कृशानोर्वा मन्त्रारम्भं यथाक्रमम् ॥ १०॥ (इति शब्द कल्पद्रुमे)॥ स्थिर लग्नं विष्णुमन्त्रे शिवमन्त्रे चरं ध्रुवम् । द्विस्वभावगतं लग्नं शक्तिमन्त्रे प्रशस्यते ॥ ११॥

टीका - अब अनुष्ठान आरंभ करने के सम्बन्ध में विभिन्न ग्रंथों के मतों

का उल्लेख किया जाता है। 'रुद्रयामल' में लिखा है — 'कार्तिक, आश्विन, वैशाख, माघ, मार्गशीर्ष, फाल्गुन तथा श्रावण मास में मन्त्र का पुरश्चरण करना शुभ होता है ॥१॥ वैशाम्पायन संहिता' में कहा गया है — 'मन्त्र के आरंभ में 'मेष' लग्न धन-धान्य प्रद होती है। 'वृष' में मन्त्र-जप आरंभ करने से मृत्यु होती है तथा 'मिथुन' सन्तति-नाशक होती है ॥२॥ 'कर्क' लग्न सब सिद्धियों को देने वाली है। 'सिंह' लग्न बुद्धि का नाश करती है। 'कन्या' लग्न नित्य लक्ष्मी (धन) दायक होती है तथा 'तुला' लग्न सर्वसिद्धि दायक है ॥३॥ 'वृश्चिक' लग्न स्वर्ण-लाभ देने वाली तथा 'धनु' लग्न सम्मान-नाशक होती है। 'मकर' लग्न पुण्य-दायक कही गई है तथा 'कुंभ' लग्न धन-समृद्धि देती है। 'मीन' लग्न नित्य दुःख-दायक होती है। मन्त्र प्रारंभ करने के लिए महीनों की यही व्यवस्था है। ॥४॥ 'तन्त्र सार' में कहा है — चन्द्र-तारा की अनुकूलता, शुक्ल पक्ष व शुभ दिन में मन्त्र का पुरश्चरण (जप) आरंभ करे। भगवान विष्णु के शयन-काल (देव-शयन की अवधि) में मन्त्र का पुरश्चरण नहीं करना चाहिए ॥५॥ 'स्मृति तत्त्व' में कहा गया है — 'पूर्णिमा, पञ्चमी, द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी और दशमी — ये सभी तिथियाँ सर्व कामनाओं की पूर्ति करने वाली हैं। जिस देवता की जो तिथि होती है, वह तिथि उस देवता के मन्त्र-पुरश्चरण के लिए शुभदायक कही गई है ॥६॥ 'पुरश्चरण दीपिका' के मतानुसार — रवि, शुक्र, बुध तथा गुरुवार को मन्त्र का पुरश्चरण विशेष फल दायक होता है। शनिवार को मन्त्र-जप आरंभ करने से मृत्यु होती है, मंगलवार हानि-प्रद है तथा

फाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरा भाद्रपद, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, रेवती, अश्विनी, हस्त, अनुराधा तथा रोहिणी - इन नक्षत्रों में शान्ति-पौष्टिक कर्म करना शुभ फलदायक कहा गया है॥८॥ 'मुहूर्त्तचिन्तामणि' के अनुसार— 'अश्विनी, रोहिणी, स्वाति, विशाखा, हस्त, ज्येष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा तथा उत्तरा भाद्रपद - इन नक्षत्रों में मन्त्राभिषेक (पुरश्चरण) करना चाहिए॥९॥ 'शब्द कल्पद्रुम' के अनुसार— 'आर्द्रा एवं कृत्तिका नक्षत्र में क्रमशः शिव तथा अग्नि के मन्त्र का जप प्रायः काल उत्तम रहता है॥१०॥ 'स्थिर-लग्न (वृष, सिंह, वृश्चिक तथा कुंभ) में 'विष्णु-मन्त्र' तथा 'चर-लग्न (मेष, कर्क, तुला तथा मकर) में 'शिव-मन्त्र' का उपदेश शुभ होता है। 'द्विस्वभाव' लग्न (मिथुन, कन्या, धनु तथा मीन) 'शक्ति-मन्त्र' के उपदेश के लिए श्रेष्ठ है॥११॥

<u>अथ भक्ष्याभक्ष्य निर्णयः</u> - भक्ष्यं हविष्यं शाकानि विहितानि फलं पयः।
मूलं सक्तुर्घृतं तन्त्रे भक्ष्याण्येतानि मन्त्रिणाम्॥१॥ (इति द्वारदा तिलके)॥ - वरु मूल फल क्षीर दधि भिक्षान्न सक्तवः। शाकाघ्राष्टविधं चान्नं साधकस्योच्यते बुधैः॥२॥ (इति पुरश्चरण दीपिकायाम्)॥ पयोव्रतस्य सिद्धिः स्याल्लक्षेणैव न संशयः। शाक भक्ष हविष्याशी कलौ लक्षत्रयं जपेत्॥३॥ (इति नारदीये)॥ भिक्षान्नं शुद्धमानीय कृत्वा भाग चतुष्टयम्। एके भागे द्विजेभक्तो गोग्रासे च द्वितीयकः॥४॥ अतिथिभ्यस्तृतीयस्तु तदूर्ध्वं शिष्टभार्यया। आत्मभक्ष्य मथा भक्ष्य कृत्वा ग्रास विधिं कुरु॥५॥ तदूर्ध्वं संख्यया स्याद्धा वानप्रस्थ गृहस्थयोः। कुक्कुटाण्डप्रमाणं तु ग्रासमानं विधीयते॥६॥ अष्टौ ग्रासान्गृहस्थस्य वानप्रस्थ तदर्धकम्। ब्रह्मचारी यथेष्टं च गोमूत्र विधिपूर्वकम्॥७॥ ब्रह्मपात्रे तु भुंजीत मध्यपत्र

विवर्जिते । दक्षं प्रहलोत्तरं विष्णुर्मध्यपत्रं महेश्वरः । अन्यथा भोजनं दोषात् सिद्धिहानिः प्रजायते
॥८॥ (इति देवीभागवते) ॥

टीका - अब भक्ष्य-अभक्ष्य का निर्णय करने के विषय में विभिन्न ग्रंथों के मत का उल्लेख करते हैं। 'शारदातिलक' में कहा गया है — 'मन्त्र-दीक्षा लेने वाले के लिए हविष्य, शाक, दही, मिश्रान्न, सत्तू, शाक तथा आठ प्रकार के अन्न मन्त्र-साधक के लिए भक्ष्य हैं ॥१॥ 'पुरश्चरण दीपिका' के अनुसार - 'चरु, मूल, फल, दूध, केला दूध, कन्द और जौ का सत्तू भक्ष्य हैं ॥२॥ 'नारदसंहिता' के अनुसार — 'केवल दूध पीकर मन्त्र-साधना करने वाले को मात्र एक लाख जप करने से ही सिद्धि प्राप्त हो जाती है। इसमें सन्देह नहीं है। शाक तथा हविष्य का आहार करने वाले को कलियुग में तीन लाख की संख्या में मन्त्र-जप करना चाहिए ॥३॥ 'देवी भागवत' के अनुसार — 'शुद्ध भिक्षान्न लाकर उसके चार भाग करे। पहला भाग ब्राह्मण को, दूसरा भाग गाय को, तीसरा भाग अग्नि को तथा शेष में से पत्नी तथा बच्चों को दे। इसके उपरान्त वानप्रस्थ तथा गृहस्थ-आश्रम के अनुसार ग्रास निश्चित करे। कुक्कुट (मुर्गी) के अण्डे के बराबर एक ग्रास (कौर) का प्रमाण उचित है। ॥४-६॥ गृहस्थ के लिए आठ ग्रास तथा वानप्रस्थ के लिए उससे आधा अर्थात् केवल चार ग्रास का भोजन उचित है। ब्रह्मचारी को यथेष्ट (इच्छानुसार) ग्रास लेने चाहिए। इसके साथ ही मन्त्र-साधक को गोमूत्र का भी विधि पूर्वक पान करना चाहिए ॥७॥ ब्रह्मपात्र अर्थात् 'पत्तल' में भोजन

मानी गई है। इस नियम के विपरीत भोजन करने से दोष लगता है तथा सिद्धि की हानि होती है ॥८॥

अथ जप-स्थान निर्णयः - पुण्य क्षेत्रं नदीतीरं गुहापर्वत मस्तकम्। तीर्थ म.
प्रदेशाः सिन्धूनां सङ्गमः पावनं वनम् ॥१॥ उद्यानानि विविक्तानि बिल्वमूलं वटं गिरेः। देवता-
यतन कूल समुद्रस्य निजं गृहम्॥ साधनेषु प्रशस्यन्ते स्थानान्येतानि मन्त्रिणाम् ॥२॥ (इति कुब्जिका-
-रण-चण्डिकायाम्)॥ शिवस्य सन्निधाने च सूर्याग्न्योर्वा गुरोरपि। दीपस्य ज्वलितस्यापि जपकर्म
प्रशस्यते॥३॥ अटवीः पर्वते पुण्ये नदीतीराणि यानि च ॥ इति नारदीये)॥ अश्वत्थामल की मूलं
गोशाला जलमध्यतः ॥४॥ (इति तन्त्रान्तरे) ॥ म्लेच्छ दुष्ट मृगव्याल शङ्कालङ्कादि वर्जिते। कान्ते च पावने
निन्दा रहिते भक्ति संयुते ॥५॥ (इति रुद्रयामले)॥ शृणु देवि विशेषेण उत्तराम्नाय देवने। वेश्यागृहे
श्मशाने वा गत्वा मैथुन माचरेत्॥ ६॥ ततो जपादिकं देवि कृत्वा शुलभते फलम्। अथवा स्वगृहे
रात्रौ भक्तिमान् यः समाचरेत्॥ स प्राप्नोति फलं सर्वं चिन्ता भय विवर्जितः ॥७॥ (इति समयाचार
तन्त्रे)॥ यत्र वा कुत्रचिद्वागे लिङ्गं यत्पश्चिमामुखम्। स्वयंभूर्वाण लिङ्गं वा वृषमूलं जलाप्लुतम्॥८॥
(इति ज्ञानार्णवम्)॥ एक लिङ्गं श्मशाने वा शून्यागारे चतुष्पथे। तत्रस्थः साधयेद्योगी सिद्धां
त्रिभुवनेश्वरीम्॥ ९॥ (इति केत्कारिणी तन्त्रे)॥ कुटी विरक्तमित्येते देशाः स्युर्मन्त्रसिद्धिदाः। एकान्ते
मठिका मध्ये स्थातव्यं दृढयोगिना ॥१०॥ (इति महाकपिल पञ्चरात्रे)॥

टीका - अब जप स्थान का निर्णय करने के विषय में विभिन्न ग्रंथों के मतों

का उल्लेख करते हैं। 'पुरश्चरण चन्द्रिका' में लिखा है — 'मन्त्र-साधकों के लिए पुण्य-क्षेत्र, नदी-तट, गुहा, पर्वत-शिखर, तीर्थ-क्षेत्र, समुद्रों का संगम, पवित्र-वन, उद्यान में एकान्त स्थान, बिल्ववृक्ष की जड़ के समीप, पर्वत का किनारा, देव-मन्दिर, नदी-तट, समुद्र-तट तथा अपना — ये सब स्थान उत्तम कहे गए हैं ॥ १-२ ॥ 'नारदीय तन्त्र' के अनुसार — 'शिव, सूर्य, अग्नि, गुरु अथवा प्रज्ज्वलित दीपक के समीप वाले स्थान को मन्त्र-जप के लिए प्रशस्त माना गया है। अटवी (वन), पवित्र पर्वत तथा नदी का तट — ये स्थान जप के लिए श्रेष्ठ हैं ॥ ३ ॥ 'तन्त्रान्तर' के अनुसार — पीपल अथवा आँवले के वृक्ष की जड़, गोशाला तथा जलाशय — ये सब जप के लिए शुभस्थान हैं ॥ ४ ॥ 'रुद्रयामल' के अनुसार — 'म्लेच्छ, दुष्ट-पशु, शङ्का-रहित, रोग-रहित, निन्दा-रहित, भक्तिपूर्ण पवित्र वन मन्त्र-जप के लिए उत्तम स्थान है ॥ ५ ॥ 'समयाचार तन्त्र' के अनुसार शिवजी कहते हैं — 'हे देवि! सुनो, उत्तराम्नाय के लिए वेश्या-गृह अथवा श्मशान में जाकर मैथुन करे, लक्षपूर्वक जप आदि करने से शीघ्र फल प्राप्त होता है। अथवा अपने ही घर में भक्तिपूर्वक होकर जो साधक मन्त्र-जप करता है, वह समस्त चिन्ताओं तथा भय से रहित होकर फल प्राप्त करता है ॥ ६-७ ॥ 'ज्ञानार्णव' के अनुसार — 'किसी भी स्थान पर पश्चिम की ओर जो स्वयंभू-लिङ्ग, बाण-लिङ्ग अथवा वृक्ष-मूल्य हो, उस जगह साधना करने से फल प्राप्त होता है ॥ ८ ॥ 'कैलकाणिक तन्त्र' के अनुसार — एकलिङ्ग के समीप, श्मशान में, शून्य-भवन में अथवा चौराहे पर बैठ कर साधक को लिङ्गवेत्ता श्रेष्ठ-शिला की साधना करनी चाहिए ॥ ९ ॥ 'महाकपिल पंचरात्र' में कहा गया है — 'विख्यात-

म.

भोगी को कुटिया में तथा हठयोगी को एकान्त-मठिका (मढ़ी) में बैठ का साधन करना चाहिए॥१

अथ स्थान भेदेन जप-माहात्म्य वर्णनम् - गृहे शतगुणं विद्याद् गोष्ठे लक्षगुणं भवेत् । कोटिर्देवालये पुण्यमनन्तं शिवसन्निधौ ॥१॥ गृहे जपं समं विद्याद् गोष्ठे शतगुणं भवेत् नद्यां शतसहस्रं स्यादनन्तं शिवसन्निधौ ॥२॥ समुद्रतीरे च हृदे गिरौ देवालयेषु च । पुण्याश्रमेषु सर्वेषु जपः कोटिगुणो भवेत् ॥३॥ वटेरण्ये श्मशाने च शून्यागारे चतुष्पथे । अर्द्धरात्रेऽपि मध्याह्ने पुरश्चरणमाप्नुयात् ॥४॥ ग्रामात्क्रोशमितं स्थानं नद्यादौ स्वेच्छया मितम् । नगरादापणं क्रोशं क्रोशायुग्ममथापि वा । आहारादि विहारार्थं तावतीं भूमिमाक्रमेत् ॥ (इति शिवतन्त्रे) ॥५॥ पञ्चक्रोशान्तरे यत्र न लिङ्गान्तरमीक्ष्यते तदेकलिङ्गमाख्यातं तन्त्रसिद्धिसुखप्रदम् ॥६॥ दह्यन्ते जन्तवो यत्र शवकीलकसंकुले । गृध्रगोमायुकाकाद्यैर्मांसलुब्धैर्यदावृतम् । तच्छ्मशानमिति ख्यातं पिशाचगणसेवितम् ॥७॥ (इति कंकालिनीतन्त्रे) ॥

टीका - अब स्थान-भेद से जप के माहात्म्य का वर्णन किया जाता है । 'शिव तन्त्र' के अनुसार- 'घर के भीतर मन्त्र-जप से सौ गुना फल होता है, जबकि तीर्थ में जप करने से अनन्त-फल प्राप्त होता है ॥१॥ यह भी कहा गया है कि घर में जप करने से सौगुना, नदी में खड़े होकर जप करने से सौहस्र (लाख) गुना तथा शिवजी के सान्निध्य में जप करने से अनन्त-फल प्राप्त होता है ॥२॥ समुद्र के किनारे, तालाब में, पर्वत पर, देवालय में व पवित्र-आश्रमों में जप करने से करोड़ गुना फल प्राप्त होता है ॥३॥ बरगद-वृक्ष की छाया में, वन में, श्मशान में, सूने

जल में अथवा चौराहे पर आधी रात अथवा मध्याह्न के समय मन्त्र-पुरश्चरण आरंभ करना चाहिए। ॥४॥ साधक को चाहिए कि वह आहार-विहारादि के लिए ग्राम से एक कोस तक, नदी आदि के तट से दूषित-दूरीत करके नगर से एक अथवा दो कोस की दूरी तक भूमि का चयन करे॥ ५॥ 'केत्कारिणी तन्त्र' में कहा गया है कि पांच कोस की परिधि में एक शिवलिङ्ग के अतिरिक्त यदि कोई अन्य शिव-लिङ्ग दिखाई न दे, उस स्थान को 'एक लिङ्ग' कहते हैं। ऐसा एक-लिङ्ग स्थान उत्तम सिद्धि देने वाला होता है॥६॥ जहाँ स्थान-स्थान पर मुर्दे जलाये जाते हों तथा जो स्थान मांस-लोभी गिद्ध, सियार, कौए आदि वन्य-पक्षियों से घिरा रहता हो और जहाँ भूत-पिशाचादि निवास करते हों, उसे 'श्मशान' कहते हैं॥ ७॥

अथ चितादि लक्षणम् - असंस्कृता चिता ग्राह्या न तु संस्कार संयुता। चण्डालादिषु सम्प्राप्ता केवलं क्षिप्र सिद्धिदा॥१॥ महाबलो महाबुद्धिर्महासाहसिकः शुचिः। महास्वच्छो दयावांश्च सर्व भूतहिते रतः॥२॥ (इति केत्कारिणीतन्त्रे)॥ कङ्कादि नीड संयुक्तां कृमिच्छत्रादि संयुताम्। नागैर्दूरनिसृक्तां साध्य सोदुम्बरकारणं। सौध्यं संवृद्धसौध्यं शून्यागारं तदुच्यते (इति त्रिशक्ति रत्ने) ॥३॥ चतुर्णां च यथा यत्र संपातो युगपद्भवेत्। तच्चतुष्पथमित्युक्तं रजन्यामिष्टदायकम्॥४॥ इति केत्कारिणीतन्त्रे)॥ अत्यन्धकारमत्यन्तगर्तविवरं नातुच्चनीचायतं सम्यग्गोमय सान्तुलिप्तमम्लं निःशेष जन्तूज्झितम्। वाह्य मण्डपवेदिकाव्रणरुचिरं प्राकार संवेष्टितं प्रोक्तं योगमहत्य लक्षणमिदं सिद्धैर्हठाभ्यासिभिः॥५॥ (इति कलार्णवे)॥

म.

तं. ३३

टीका - अब चिता, शून्यागार, चौराहा तथा मठ के लक्षणों के विषय में कहते हैं — 'संस्कार-रहित चिताहीग्रहण करने योग्य है, संस्कार-युक्त नहीं'। चाण्डाल आदि वर्णों की चिता असंस्कृत (संस्कार-रहित) होती है, अतः ऐसे ही शीघ्र सिद्धि दायक समझना चाहिए ॥ १॥ 'त्रिशक्ति रत्न' में कहा गया है — जो व्यक्ति बड़ा बलवान, बड़ा बुद्धिमान, बड़ा साहसी, बड़ा चतुर, बड़ा स्वच्छ, दयालु तथा सब प्राणियों के कल्याण में लगा रहने वाला हो, वही साधना का अधिकारी होता है। ॥२॥ जहाँ कौवों के घोंसले हों, बर्र तथा मधुमक्खी आदि कृमियों के छत्ते हों; जो नगर से दूर हो, जहाँ जाते ही भय का अनुभव हो तथा जिस सूने घर के चारों ओर घास तथा झाड़-झंखाड़ उगे हुए हों, उस स्थान को 'शून्यागार' कहा जाता है ॥ ३॥ 'फेत्कारिणी तन्त्र' में कहा गया है — 'जहाँ चार रास्ते एक जगह मिलते हों, उस स्थान को 'चौराहा' (चतुष्पथ) कहा जाता है। ऐसे स्थान पर रात्रि के समय साधना करने से अभीष्ट-सिद्धि का लाभ होता है ॥ ४॥ कुलार्णव तन्त्र' में लिखा है — 'जो घेरे दार वाला, छिद्र-रहित तथा अधिक ऊँचा-नीचा न हो; जो गोबर से भलीभाँति लिपा-पुता हो, जहाँ कीड़े-मकोड़े न हों; जिसके बाहर मण्डप, वेदिका तथा कुँआ हो; जो देखने में सुन्दर तथा चारों ओर दीवार से घिरा हो, ऐसे स्थान को सिद्ध हठयोग-शाली मठ' कहते हैं ॥ ५॥

अथ दिङ्निर्णयम् ॥ उपविशेत्प्राङ्मुखो वा मुदङ्मुखः। रात्रा वुदङ्मुखैः कार्यं देवकार्यं सदैवहि ॥ १॥ (महाभारते उद्योगपर्वणि: सुपर्ण उवाच) अनुशिष्टोस्मि देवेन गालवाप्रति योगिना। ब्रूहि कामं तु कां याति इष्टं प्रथमतो दिशम् ॥ २॥ पूर्वां वा दक्षिणां वाहम-

-थवा पश्चिमां दिशाम् । उत्तरां वा द्विजश्रेष्ठ कुतोगच्छामि गालव ॥ ३ ॥ गालव उवाच- यस्या मुदयते पूर्वं सर्वलोकप्रभावनः । सविता यत्र सन्ध्यांश्च साध्यानां वर्तते मुखः । ब्रतकारं द्विज- श्रेष्ठ दिवसस्य तथाध्वनः ॥ ४ ॥ शिवरहस्ये - उत्तराभिमुखैः कार्यं श्रीमहादेवपूजनम् । प्राङ्मुखेनाथ वा कार्यं श्रीमहादेव पूजनम् ॥ ५ ॥ पश्चिमाभिमुखैर्वापि कर्तव्यं शिवपूजनम् । दक्षिणाभिमुखैर्मन्त्रैर्न कर्तव्यं शिवार्चनम् ॥ ६ ॥ तारा कालीमुपासनायां दिग्विलम्बः ॥ प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि वक्ष्यमाण क्रमेण तु । श्रीकामः शान्तिकामो वा पश्चिमाभिमुखः स्यात् ॥ ७ ॥ (इति फेत्कारिणी तन्त्रे) ॥ अथ कालिकापुराणे - दिग्विभागेषु कौबेरी दिक् शिवा प्रीतिदायिनी । तस्मात्तन्मुख आसीनः पूजयेच्च- ण्डिकां सदा ॥ ८ ॥

टीका - अब दिशा-निर्णय के संबंध में बताते हैं - ' साधक को उचित है कि वह आसन पर पूर्वाभिमुख अथवा उत्तराभिमुख बैठ कर साधना करे । रात्रि के समय सभी देवकार्य सदैव उत्तराभिमुख बैठ कर ही करने चाहिए ॥ १ ॥ 'महाभारत' के 'उद्योगपर्व' में 'सुपर्ण' ने 'गालव' ऋषि से इस संबंध में जो प्रश्न किया था, वह इस प्रकार है - ' हे श्रेष्ठ योगी गालवर्षी ! मुझे उपदेश दिया जाय कि मैं पूर्व, पश्चिम, उत्तर अथवा दक्षिण - किस दिशा की ओर जाऊँ ॥ २-३ ॥ गालव बोले - 'सब लोकों को प्रभावित करने वाले सूर्य जिस दिशा में पहले उदित होते हैं, और जो दिशा देवताओं के ध्यान के लिए उत्तम है, हे द्विज श्रेष्ठ ! वही पूर्व दिशा व्रत की द्वार है तथा वही श्रेष्ठ दिन तथा मार्ग उत्तम मानी गई है ॥ ४ ॥ 'शिव-रहस्य' में कहा है - ' शिवजी का पूजन, उत्तर दिशा, पूर्व दिशा अथवा पश्चिम दिशा

की ओर मुँह करके करना चाहिए। दक्षिण दिशा की ओर मुँह करके बलिदान नहीं करना चाहिए॥ ५-६॥
'फेत्कारिणी तन्त्र' के अनुसार – 'तारा तथा काली की उपासना में साधक को पूर्वाभिमुख, उत्तराभिमुख अथवा पश्चिमाभिमुख होकर, शान्ति तथा धन की इच्छा रखने वाले को साधना करनी चाहिए॥ ७॥
'कालिका पुराण' में कहा है – 'दिग्विभाग का विचार करते समय पार्वतीजी के लिए उत्तरादिशा को प्रीतिदायिनी समझ कर, उत्तराभिमुख होकर चण्डी-पूजन करना चाहिए॥ ८॥

अथ स्नान एवं तिलक निर्णयः॥ स्नानं त्रिवर्णयोक्तमशक्तौ द्विः सकृत्तथा। अस्नानस्य फलं नास्ति न च पितृनतर्पितः॥ १॥ केशवाद्यभिधानेषु स्थानेषु द्वादशस्वपि। ललाटोदर हृत्कण्ठदक्षपार्श्वकं ततः॥ २॥ वामपार्श्वकं कर्णं च पृष्ठदेशे ककुद्यपि। ललाटे तु गदां कुर्याद्दक्षदेशे नन्दकं पुनः॥ ३॥ शार्ङ्गं चक्रं भुजस्कन्धे शार्ङ्गं बाणं च मूर्द्धनि। इत्थं तु वैष्णवः कुर्यात्त्रिपुण्ड्रकम्॥ ४॥ अग्निहोत्रोत्थितं भस्मादायाग्निरिति मन्त्रतः। अभिमन्त्र्य त्र्यम्बकेन कुर्यात्पञ्च त्रिपुण्ड्रकम्॥ ९॥

टीका – अब 'स्नान' तथा 'तिलक' के विषय में बताते हैं – 'स्नान तीन बार करना चाहिए, परन्तु अशक्तावस्था में दो अथवा एक बार भी किया जा सकता है। बिना स्नान किए अथवा पितरों का तर्पण किए बिना साधना का फल नहीं मिलता॥ १॥ 'केशव' आदि नामों से प्रसिद्ध शरीर के बारह स्थानों – १. ललाट, २ पेट, ३ हृदय, ४ कण्ठ, ५ दायाँ कन्धा, ६ बाँया पार्श्व, ७ बाँया कन्धा, ८ पृष्ठ देश, ९ दायाँ पार्श्व, १० दोनों कान, ११ पीठ तथा १२ ठोड़ी, इनमें से ललाट पर 'गदा' का चिह्न बनाना चाहिए एवं हृदय पर

'नन्दक' का चिह्न बनाना चाहिए। दोनों हाथों पर शंख-चक्र एवं मूर्द्धा पर धनुष-बाण का चिह्न चिह्न बनाना चाहिए। ये चिह्न वैष्णवों के लिए हैं। शैवों को त्रिपुण्ड धारण करना चाहिए। होम की भस्म को 'आमाग्नि०' इस मन्त्र से अभिमन्त्रित करें, फिर 'नमः कंकालाय०' इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए भस्म द्वारा त्रिपुण्ड धारण करने चाहिए॥ २-५॥ म.

अथ आसन निर्णयः— जपेन्निधाय दर्भास्त्रीन्कुशचर्म वरासने। काष्ठपल्लव वंशाश्मगोशकृत्तृणमृन्मयम्। विषमं कठिनं मन्त्री त्यजेदासनमाधिदम्॥ १॥ (इति मन्त्रमहोदधौ)॥ वंशासने दरिद्रत्वं पाषाणे व्याधिसम्भवः। धरण्यां दुःख सम्भूतिर्दौर्भाग्यं दारुकासने॥ २॥ (इति तन्त्रान्तरे)॥ तूल कम्बल-वस्त्राणि पट्टव्याघ्रमृगाजिनम्। कल्पयेदासनं धीमान्सौभाग्यं ज्ञानसिद्धिदम्॥ ३॥ तृणासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः। कृष्णासने ज्ञानसिद्धिर्मोक्षश्री व्याघ्रचर्मणि॥ ४॥ स्यात्पौष्टिकं च कौशेयं शान्तिकं वेमविष्टरम्। वंशासने व्याधिनाशो कम्बले दुःखमोचनम्॥ ५॥ स्यादग्निचारिकं नीलं रक्तवस्त्रादिकं भवेत्। धवले शान्तिकं मोक्षः सर्वार्थिचित्रकम्बले। सर्वभावे त्वासनार्थं कुशाविष्टरमिष्यते॥ ६॥ (इति तन्त्रान्तरे)॥ लोमन्यि चैव यदासीन स्तदा सर्वं विनश्यति। लोमस्पर्शनि मात्रेण सिद्धिहानिः प्रजायते। कुशासने मन्त्रसिद्धिर्नात्र कार्या विचारणा॥ ७॥

अथ योगासनम्— जानूर्वोरन्तरे कृत्वा सम्यक्पादतले उभे। ऋजुकायो विशेद्योगी स्वस्तिकं तत्प्रचक्षते॥ ८॥ ऊर्वोरुपरि विन्यस्य सम्यक्पादतले उभे। अङ्गुष्ठौ च निबध्नीयाद्दस्ताभ्यां व्युत्क्रमात्ततः॥ दीपज्ञानमिति प्रोक्तं योगिनां हृदयङ्गमम्। एकपादमधः कृत्वा विन्यस्योरौ तथोत्तरम्। ऋजुकायो विशेद्योगी वीरासन मितीरितम्॥ १०॥

टीका - अब आसन के सम्बन्ध में बताते हैं — 'मन्त्र महोदधि' में कहा है — 'मूँज, वस्त्र, कुश अथवा चर्म के उत्तम आसन पर बैठ कर साधक को जप करना चाहिए। काष्ठ, पल्लव, बाँस, पत्थर, गोबर, एवं तृण के विषम तथा कठिन आसन मन्त्र-साधक के लिए त्याज्य हैं, इस प्रकार के आसन रोगोत्पादक होते हैं ॥१॥ तन्त्रान्तर में कहा गया है — बाँस के आसन का उपयोग दरिद्रता देता है। पत्थर का आसन रोगोत्पादक हो सकता है। पृथ्वी पर बैठकर साधना करने से दुःख की संभावना रहती है तथा लकड़ी के आसन पर बैठकर साधना करना दुर्भाग्यजनक होता है ॥२॥ कुई, कम्बल, वस्त्र, रेशम, व्याघ्रचर्म, मृगचर्म अथवा कृष्णमृगचर्म के आसन का निर्माण करे ऐसे आसन सौभाग्य, ज्ञान तथा सिद्धिदायक होते हैं ॥३॥ तृण के आसन से यश की हानि होती है। पत्तों का आसन चित्त में भ्रान्ति उत्पन्न करता है। कृष्णमृगचर्म के आसन से ज्ञान की सिद्धि मिलती है तथा व्याघ्र-चर्म का आसन मोक्ष तथा लक्ष्मीदायक होता है ॥४॥ रेशम का आसन पुष्टिदायक, बेंत का आसन शान्तिदायक, बाँस का आसन रोग-नाशक तथा कम्बल का आसन दुःख-नाशक होता है ॥५॥ अभिचार-कर्म के लिए नीले रंग का, वशीकरण आदि के लिए लाल रंग का; शान्ति-कर्म तथा मोक्ष के लिए सफेद रंग का तथा सब प्रकार की सिद्धि के लिए चितकबरे कंबल का आसन प्रशस्त होता है। इन सब के अभाव में कुश का आसन ही ग्रहण करने योग्य है ॥६॥ 'हंस माहेश्वर' में कहा गया है — 'जो साधक रोम-निर्मित आसन पर बैठता है, उसका सर्वस्व नष्ट हो जाता है। रोम के स्पर्श मात्र से ही सिद्धि की हानि हो जाती है। कुश के आसन पर बैठने से मन्त्र की सिद्धि होती है — इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिए ॥७॥

म.

अब योगासनों के विषय में कहते हैं — 'जब योगी दोनों जाँघों पर दोनों पाँवों को रखकर सीधा बैठता है, तो उस स्थिति को 'स्वस्तिक आसन' कहते हैं॥८॥ दोनों जाँघों पर दोनों पाँवों को रखकर जब योगी अँगुलियों को व्युत्क्रम से हाथों से पकड़ता है, तो उसे 'पद्मासन' कहा जाता है। यह योगियों का प्रिय आसन है॥९॥ एक पाँव को नीचे करके दूसरे पाँव को जाँघ पर रख कर जब योगी सीधा बैठता है तो उस स्थिति को 'वीरासन' कहते हैं॥१०॥

अथ माला निर्णयः — अरिष्टपुत्रजीवैश्च शङ्खपद्मैर्मणिस्तथा। कुशग्रन्थिश्च रुद्राक्षा उत्तमंचोत्तरोत्तरम्॥१॥ स्फाटिकी मौक्तिकी वापि प्रोतव्या सितसूत्रकैः। सर्वकर्म समृद्ध्यर्थं जपेद्रुद्राक्षमालया॥२॥ वैष्णवे तुलसीमाला गजदन्तैर्गणेश्वरे। त्रिपुराया जपे शस्ता रुद्राक्षं रक्तचन्दनैः॥३॥ (इति मन्त्रखण्डे)॥ रेखाष्टगुणं विद्यात् पुत्रजीवैर्दशस्मृतम्। शतं चन्दन शङ्खैश्च प्रवालैस्तु सहस्रकम्॥४॥ स्फारिकैर्दशसाहस्रं मौक्तिकैर्लक्षमेव च। दशलक्षं शङ्खमणिभिः सौवर्णैः कोटिरुच्यते॥५॥ कुशग्रन्थ्या च रुद्राक्षैरनन्तगुणितं भवेत्। अष्टोत्तरशतैर्माला पञ्चाशच्चतुरधिकैः॥६॥ सप्तविंशतिभिः कार्या एकगीवा समेरुका। मुखं मुखेन संयोज्य पुच्छं पुच्छेन योजयेत्॥७॥ प्रोतव्या सितसूत्रेण सत्कर्मफलसिद्धये। षट्सूत्रकृता माला देव्याः प्रीतिकरा मता॥८॥ कार्यार्थे वैष्णवी माला पञ्चसूत्रैरथापि वा। ऊर्णाभिर्वल्कलैर्वापि शैवी माला प्रकीर्तिता॥९॥ कार्पासि सूत्रे रम्भेवां विदध्याज्जप मालिकाम्। त्रिंशद्भिः स्याद्गुणं पुष्टिः सप्तविंशतिभिर्भवेत्॥१०॥ पञ्चविंशतिभिर्मोक्षः पञ्चस्यादभिचारणे।

टीका - अरिष्ट (रीठा) तथा पुत्रजीवा (जियापोता) के बीज, शंख, पद्मकाष्ठ मणि, कुश की गाँठ तथा रुद्राक्ष- ये सब माला-निर्माण हेतु उत्तरोत्तर श्रेष्ठ माने गये हैं ॥१॥ मन्त्रखण्ड के अनुसार- स्फटिक अथवा मोती को श्वेत धागे में गूँथ कर माला का निर्माण करना चाहिए। सर्व-कर्म-समृद्धि के लिए रुद्राक्ष की माला पर जप करना चाहिए ॥२॥ वैष्णव-मन्त्र के लिए तुलसी की माला, गणेश-मन्त्र के लिए हाथी के दाँत की माला एवं त्रिपुरा-मन्त्र के लिए रुद्राक्ष अथवा लाल-चन्दन की माला प्रशस्त कही गई है॥३॥ रेवा से जप करने में आठ गुना फल प्राप्त होता है। पुत्रजीवा (जियापोता) की माला पर जप करने से दस गुना, चन्दन और शंख की माला पर जप करने से सौगुना तथा प्रवाल (मूँगे) की माला पर जप करने से हजार गुना फल प्राप्त होता है ॥४॥ स्फटिक की माला पर जप करने से दस हजार गुना, मोती की माला पर जप करने से लाख गुना, चाँदी के मनकों की माला पर जप करने से दस लाख गुना तथा स्वर्ण के मनकों की माला पर जप करने से करोड़ गुना फल प्राप्त होता है ॥५॥ कुश-ग्रंथि तथा रुद्राक्ष की माला पर जप करने से अनन्त गुना फल मिलता है। एक सौ आठ दानों की अथवा चौअन दानों की अथवा सत्ताईस दानों की माला बनानी चाहिए। इनमें मेरु के साथ एक गीता बनानी चाहिए। रुद्राक्षों के मुख के साथ मुख तथा पूँछ के साथ पूँछ जोड़ कर माला बनानी चाहिए ॥६-७॥ सत्कर्म के फल की सिद्धि हेतु मनकों को श्वेत रंग के सूत्र (धागे) में पिरोना चाहिए। रेशमी धागे में गूँथी गई माला देवी के लिए प्रीतिकर कही गई है ॥८॥ वैष्णवी-माला को पद्म-सूत्र से तथा शैवी-माला को ऊन एवं बल्वल-सूत्र से गूँथना चाहिए ॥९॥ अन्य देवताओं के मन्त्र-जप के

लिए कपास के धागे में माला गूँथनी चाहिए। तीस माला जपने से धन-लाभ होता है तथा सत्ताईस माला जपने से 'पुष्टि' (स्वास्थ्य) का लाभ होता है ॥९०॥ पच्चीस माला जपने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। अभिचार-कर्म के लिए पाँच माला मन्त्र-जप करना चाहिए। पचास माला का जप करने से सब प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है ॥९१॥

जप्त्वाक्षमाला सकलां ग्रामपेदाशिरःमणेः। प्रदक्षिणा पुनर्वक्रमात्स्थैवं समाचरेत् ॥९२॥ स्वयं वामेन हस्तेन जपमालां न संस्पृशेत्। अदीक्षितो द्विजो वापि स्पृशेच्चेच्छुद्धिमाचरेत् ॥९३॥ न धारयेत्करे मूर्ध्नि कण्ठे च जप मालिकाम्। जपकाले जपं कृत्वा सदा शुद्धस्थले क्षिपेत् ॥९४॥ गुरुं प्रकाशयेद्धीमान्मन्त्रं नैव प्रकाशयेत्। अक्षमालां च मुद्रां च गुरोरपि न दर्शयेत् ॥९५॥ कम्पना-त्सिद्धि हानिस्स्याद्रुदनं बहुदुःखकृत्। शब्दे जाते भवेद्रोगी करस्पृष्टा विनाशकृत् ॥९६॥ छिन्ने सूत्रे भवेन्मृत्युस्तस्माद्यत्नपरो भवेत्। जपान्ते कर्णदेशे वा उच्चस्थानेफला न्यसेत् ॥९७॥

टीका- रुद्राक्ष की माला पूरी होजाने के बाद उसके सुमेरु को पूरा घुमा देना चाहिए तथा पुनः वक्र-गति से इसी प्रकार प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥९२॥ अपने बाँये हाथ से जप-माला का स्पर्श नहीं करना चाहिए और यदि अदीक्षित-ब्राह्मण भी माला को छू दे तो उसकी पुनः शुद्धि करनी चाहिए। जप-माला को हाथ, सिर अथवा कण्ठ में धारण नहीं करना चाहिए। जप-काल में जप करने के पश्चात् माला को किसी शुद्ध-स्थान में रख देना चाहिए ॥९३-९४॥ अन्य लोगों से अपने गुरु

रुद्राक्ष माला तथा 'मुंडा' तो गुरु को भी नहीं दिखानी चाहिए ॥९५॥ माला को कँपाने (हिलाने) से सिद्धि की हानि होती है तथा हनन करने (तोड़ने) से बहुत दुःख मिलता है। जप के समय माला से शब्द निकलने पर (दानों के परस्पर रगड़ने से शब्द उत्पन्न होता है) साधक रोगी हो जाता है। यदि माला हाथ से छूट कर नीचे गिर पड़े तो वह साधक का विनाश कर देती है ॥९६॥ माला का सूत्र (धागा) टूट जाने से साधक की मृत्यु होती है। अतः साधक को सावधानी बरतनी चाहिए। जप के अन्त में माला को खूँटी पर टाँग दें अथवा उसे किसी ऊँचे स्थान पर रख देना चाहिए ॥९७॥

अथ रुद्राक्ष माहात्म्यं - शिरसायां हस्तयोः कण्ठे कर्णयोश्चापि यो नरः।
रुद्राक्षं धारयेद्भक्त्या शैवं लोकमवाप्नुयात् ॥१॥ रुद्राक्षे देहसंस्थे तु क्रूरो म्रियते यदि। सोपि रुद्रपदं याति किं पुनर्मानवा गुह ॥२॥ यो ददाति द्विजातिभ्यो रुद्राक्षं भुवि दुर्लभम् तस्य प्रीतो भवेद्रुद्रः प्रयच्छति निजं पदम् ॥३॥ नववक्त्रं तु रुद्राक्षं धारयेद्बाम बाहुना। चतुर्दशमुखं चैव शिरसायां धारयेद् बुधः ॥४॥ सप्तविंशति रुद्राक्ष मालया देहसंस्थया। यत्करोति नरः पुण्यं सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥५॥ (इति पद्म पुराणे)॥ रुद्राक्षान्कण्ठदेशे दशानपरिमितान्मस्तके विंशतिं द्वे, बद्ध्वा कर्णप्रदेशे करयुगलगता द्वादश द्वादशैव। बाह्वोरिन्दाः कलाभिः पृथक्कारि शिखा सूत्रयोरेकमेकं, वक्षस्यष्टाधिकं स्यात्कलयति सततं स स्वयं नीलकण्ठः ॥६॥ (इति स्कन्द पुराणे)॥

टीका - अब रुद्राक्ष के माहात्म्य का वर्णन करते हैं। 'पद्म पुराण' में कहा गया है - 'जो व्यक्ति शिखा (चोटी), हाथ, कण्ठ और कानों में रुद्राक्ष धारण करता है, वह

'शिव-लोक' को प्राप्त करता है॥ २॥ यदि रुद्राक्ष धारण किए हुए कुत्ते की भी मृत्यु हो जाय, तो वह भी 'रुद्र' पद को जाता है, फिर मनुष्य के विषय में तो कहा ही क्या जाय? जो व्यक्ति द्विजातियों को छः मुखी रुद्राक्ष का दान देता है, शिवजी प्रसन्न होकर उसे अपना पद (शिवलोक) प्रदान करते हैं। नौ मुखों वाले रुद्राक्ष (नवमुखी) को बाँये हाथ में धारण करना चाहिए तथा चौदह मुखी रुद्राक्ष को शिखा में धारण करें। सत्ताईस रुद्राक्ष की माला गले में धारण करने वाले मनुष्य के सभी पुण्य करोड़ गुने हो जाते हैं॥ २-५॥ 'स्कन्द-पुराण' में कहा है - 'गले में बत्तीस रुद्राक्षों की, सिर में चालीस रुद्राक्षों की, प्रत्येक कान में छः छः रुद्राक्षों की, हाथों में बारह-बारह रुद्राक्षों की, बाहुओं में सोलह-सोलह रुद्राक्षों की, शिखा में एक रुद्राक्ष की, यज्ञोपवीत में एक रुद्राक्ष तथा वक्षःस्थल पर आठ से अधिक रुद्राक्षों की माला धारण करने वाला मनुष्य स्वयं 'नीलकण्ठ' (शिवस्वरूप) हो जाता है॥ ६॥

<u>अथ मुखभेदेन रुद्राक्ष माहात्म्यं</u> - कार्तिकेय उवाच॥ एकद्वित्रिश्चतुःपञ्चषट् सप्ताष्टसंनवा। दशैकादश द्वादश त्रयोदश चतुर्दश॥ १॥ एतेषां तु मुखानां तु देवता कोऽब्रवीत्। गुणं च कीदृशं तेषां कथयस्व यथार्थतः॥ २॥ ईश्वर उवाच॥ एकवक्त्रं शिवं साक्षाद् ब्रह्महत्यां व्यपोहति। द्विवक्त्रं देवदेव्यौ च गोवधं नाशयेद् ध्रुवम्॥ ३॥ त्रिवक्त्रो दहनः साक्षाद् भ्रूणहत्यां व्यपोहति। चतुर्वक्त्र स्वयं ब्रह्मा ब्रह्महत्यां व्यपोहति॥ ४॥ पञ्चवक्त्रः स्वयं रुद्रः कालाग्निर्नाम नामतः। षड्वक्त्रः कार्तिकेयस्तु धारयेद्दक्षिणे भुजे॥ ५॥

नाम नागराट् ॥ ६॥ गुरूतल्पादिभिः पापैर्मुच्यते नात्र संशयः / अष्टवक्त्रो महासेनः साक्षाद्देवो विनायकः ॥७॥ षष्ठोदरकरेणापि संपृशेद्वा गुरुस्त्रियम् / एवमादीनि पापानि चातिपापानि सर्वशः ॥८॥ विघ्नास्तस्य न नश्यन्ति मुक्तो याति परां गतिम् / गुणा ह्येतेषु सर्वेषु अष्टवक्त्रेषु धारणात् ॥९॥ नववक्त्रो भैरवः स्याद्दारयेद्दामके भुजे / शिवसायुज्य कारकः ब्रह्मतुल्यबलो भवेत् ॥१०॥ लक्षकोटि सहस्राणि ब्रह्महत्यां करोति यः / तत्सर्वं दहते शीघ्रं नववक्त्रस्य धारणात् ॥११॥ दशवक्त्रो महासेनः साक्षाद्देवो जनार्दनः / ग्रहाश्चैव पिशाचाश्च वैताला ब्रह्मराक्षसाः ॥१२॥ पन्नगाश्च विनश्यन्ति दशवक्त्रस्य धारणात् / वक्त्रैकादश रुद्राक्षो रुद्र एकादशः स्मृतः ॥१३॥ शिखायां धारयेन्नित्यं तस्य पुण्यफलं शृणु / अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्य च ॥१४॥ हेमशृङ्गस्य लक्षस्य सम्यग्दत्तस्य यत्फलम् / तत्फलं समवाप्नोति रुद्रैकादश धारणात् ॥१५॥ रुद्राक्ष द्वादशाक्षस्य कण्ठदेशे च धारणात् / आदित्यस्तुष्यते नित्यं द्वादशार्कप्रवर्धितः ॥१६॥ त्रयोदशमुखः कामः सर्वकाम फलप्रदः / चतुर्दशास्यः श्रीकण्ठो वंशोद्धारकरः परः ॥१७॥

टीका - अब 'रुद्राक्ष' का माहात्म्य कहते हैं / 'स्कन्दपुराण' के अनुसार कार्तिकेय जी ने शिवजी से इस प्रकार कहा - 'हे शङ्करजी! एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः, सात, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह तथा चौदह मुखों वाले रुद्राक्षों के देवता और उनके गुणों को यथार्थ रूप में बताइये?' ॥१-२॥ शिवजी बोले - एकमुखी रुद्राक्ष साक्षात् शिवरूप है / यह ब्रह्महत्या के दोष को दूर करदेता है। दोमुखी रुद्राक्ष के देवी-देवता शिव-पार्वती हैं / यह गोवध के पाप को निश्चित रूप से नष्ट करता है

॥३॥ तीनमुखी रुद्राक्ष का देवता 'अग्नि' है। यह भ्रूणहत्या के पाप को नष्ट करता है। चारमुखी रुद्राक्ष का देवता 'ब्रह्मा' है। यह भी ब्रह्महत्या के दोष को नष्ट करता है ॥४॥ पंचमुखी रुद्राक्ष को 'कालाग्नि' नामक रुद्र का स्वरूप समझना चाहिए। छः मुखी रुद्राक्ष का देवता कार्तिकेय है। इसे (यह ब्रह्महत्या आदि पापों को नष्ट करता है।) म.
दाँयी भुजा में धारण करना चाहिए ॥५॥ सात मुखी रुद्राक्ष का रुद्राक्ष का देवता महासेन अनन्त नामक नागराज है। यह गुरु-हत्या आदि पापों से निस्संदेह मुक्त करता है। आठमुखी रुद्राक्ष महासेन साक्षात् 'विनायक' है। इसको धारण करने से गुरु-स्त्री की पीठ, पैर अथवा हाथ का स्पर्श करने से लगने वाले सभी भारी पाप नष्ट हो जाते हैं। उसके सभी विघ्न दूर हो जाते हैं तथा वह मुक्त होकर परम-गति को प्राप्त कर लेता है। आठमुखी रुद्राक्ष को धारण करने से ये सभी गुण-लाभ प्राप्त होते हैं ॥६-६॥ नौमुखी रुद्राक्ष का देवता 'भैरव' है। इसे बाँयी भुजा में धारण करना चाहिए। यह शिव-सायुज्य कारक, मुक्तिदाता होता है तथा मेरे (शिवके) समान बलवान् बनाने वाला है ॥१०॥ लक्ष कोटि रुद्र ब्रह्महत्या के पापों को भी यह नवमुखी रुद्राक्ष शीघ्र ही भस्म कर देता है ॥११॥ दशमुखी रुद्राक्ष साक्षात् महासेन 'जनार्दन' देवता है। ग्रह, पिशाच, वैताल, क्रूर राक्षस तथा पन्नग आदि दशमुखी रुद्राक्ष को धारण करने से नष्ट हो जाते हैं। ग्यारहमुखी रुद्राक्ष 'एकादश-रुद्र' तुल्य है। इसे शिखा में नित्य धारण किये रहने से जो पुण्य-फल प्राप्त होता है, उसे सुनो। हजार अश्वमेध, सौ वाजपेय यज्ञ, एक लाख स्वर्ण-शृंग मण्डित गायों को दान करने से,

बारहमुखी रुद्राक्ष को धारण करने से द्वादशादित्य (बारहों सूर्य) प्रसन्न होते हैं। तेरहमुखी रुद्राक्ष का देवता 'कामदेव' है, वह समस्त कामनाओं का फल प्रदान करता है। चौदहमुखी रुद्राक्ष सदाशिव 'त्रिकण्ठ' है, यह संकट का उद्धार करने वाला है ॥ १६-१७॥

अथ रुद्राक्ष-धारण विधि- पञ्चामृतं पञ्चगव्यं स्नानकाले प्रयोजयेत्। रुद्राक्षस्य प्रतिष्ठायां मन्त्रः पञ्चाक्षरो यथा॥ 'ॐ त्र्यम्बकादि' मन्त्रं च यथा तेन प्रयोजयेत्॥ १॥

ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनात्मृत्योर्मु-क्षीयमामृतात्। ॐ हौं अघोरे घोरेभ्यो घोरतरेभ्यः ॐ ह्रीं श्रीं सर्वतः सर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः॥ इति मन्त्रः॥

अनेनापि च मन्त्रेण रुद्राक्षस्य द्विजोत्तमः। प्रतिष्ठां विधिवत्कुर्यात्ततोऽधिक फलं भवेत्। ततो यजा स्वमन्त्रेण धारयेद्भक्ति संयुतः॥ २॥

टीका- अब रुद्राक्ष धारण करने की विधि बताते हैं। 'पद्मपुराण' में लिखा है- 'पञ्चामृत अथवा पञ्चगव्य द्वारा स्नान करें। रुद्राक्ष की प्राण-प्रतिष्ठा के लिए "ॐ त्र्यम्बकं०" आदि मन्त्र का प्रयोग करना चाहिए। मन्त्र निम्नानुसार है-

"ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टि वर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनात्मृत्यो-र्मुक्षीय मामृतात्। ॐ हौं अघोरे घोरेभ्यो घोरतरेभ्यः ॐ ह्रीं श्रीं सर्वतः सर्वेभ्यो नमस्ते रुद्ररूपेभ्यः।"

उक्त मन्त्र से रुद्राक्ष की प्राण-प्रतिष्ठा करने से अधिक फल मिलता है। इसके पश्चात् अपने मन्त्र का उच्चारण करते हुए रुद्राक्ष को भक्ति पूर्वक धारण करना चाहिए॥ १-२॥

रुद्राक्ष-धारण मन्त्र-क्रम निम्नानुसार है—

"ॐ ॐ हृम् नमः १ ॐ ॐ नमः २ ॐ ॐ नमः ३ ॐ ह्रीं नमः ४ ॐ हूं नमः ५ ॐ हूँ नमः ६ ॐ हुं नमः ७ ॐ स्वः हूं नमः ८ ॐ हं नमः ९ ॐ ह्रीं नमः १० ॐ श्रीं नमः ११ ॐ हैं ह्रीं नमः १२ ॐ क्षां क्षौं नमः १३ ॐ नमोनमः १४ ॥ इति रुद्राक्ष धारणम् ॥"

अथ गोमुखी निर्णयः — वस्त्रेणाच्छादितं करं दक्षिणं यः सदा जपेत् । तस्य स्यात्सकलं जाप्यं तद्दीनमकलं स्मृतम् ॥ १ ॥ भूतराक्षस वेतालाः सिद्ध गन्धर्व चारणाः । हरन्ति प्रकटं यस्मात्तस्माद् गुप्तं जपेत्सुधीः ॥ २ ॥

टीका— अब 'गोमुखी' के विषय में बताते हैं— 'दाँये हाथ को वस्त्र से ढँक कर जो जप सदैव किया जाता है, वह सकल होता है। हाथ को ढाँके बिना किया गया जप निष्फल होता है। भूत, राक्षस, बेताल, सिद्ध, गन्धर्व तथा चारण खुले हाथ से किये गये जप का हरण कर लेते हैं। अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिए कि वह सदैव गुप्त रूप से (अर्थात् माला को गोमुखी के भीतर डालकर अथवा उसे वस्त्र से ढाँक कर ही मन्त्र-जप करे ॥ १-२ ॥

अथ जपाङ्गुलि-निर्णय— अङ्गुष्ठं मोक्षदं विद्यात्तर्जनी शत्रुनाशिनी । मध्यमा धनदा शान्ति करत्वे ना ह्यनामिका ॥ १ ॥ कनिष्ठा कर्षणे ह्यस्ता जप कर्मणि बोधने । अङ्गुष्ठेन विना कर्म क्षुद्रं तदफलं यतः ॥ २ ॥ इति द्विजवाला विद्यायाम्) ॥ मध्यमानामिकां गुप्ते रक्षमाला मणीन्यसेत् । एवं जपस्य चैक-स्य क्रमोयं चालये ज्जपेत् ॥ ३ ॥ अङ्गुष्ठेन तु मोक्षाय मध्यमार्थविवृद्धये । जपेदनामिकां गुप्तेनलिरात्म्यां

कदाचन । अङ्गुष्ठ मध्यमायोगात्सर्वसिद्धि प्रदायिनि ॥ ४॥ (इति ग्रन्थान्तरे) ॥ अङ्गुष्ठ मध्यमाभ्यां च चालयेन्मध्यमध्यतः । तर्जन्या न स्पृशेद्देवीं मुक्तिदो गणनाक्रमः ॥ ५॥ (इति मतान्तरे) ॥

टीका - अब जप की अँगुलियों के विषय में बताते हैं । 'शिवाहसाविद्या ग्रंथ' मे लिखा है - 'अँगूठे को मोक्षदायक समझना चाहिए । तर्जनी अँगुली शत्रु-नाशिनी है । मध्यमा अँगुली धनदायक तथा अनामिका अँगुली शान्ति-कर्मों के लिए प्रशस्त मानी गई है । कनिष्ठा अँगुली आकर्षण-कर्म के मन्त्र-जप के लिए श्रेष्ठ मानी गई है । अंगूठे के बिना किया गया जप-कर्म निष्फल होता है ॥१-२॥ 'ग्रन्थान्तर' के अनुसार- 'मध्यमा, अनामिका एवं अंगुष्ठ- इनके द्वारा ही रुद्राक्ष-मनकों से जप का एक 'क्रम' होता है, अतः इन्हीं अँगुलियों द्वारा जप करना चाहिए ॥३॥ अंगूठे से जप करना मोक्ष-दायक होता है । मध्यमा से जप करने पर पाप की वृद्धि होती है । अतः जप अँगूठा तथा अनामिका के संयोग से करना चाहिए । अन्य अँगुलियों द्वारा मन्त्र-जप नहीं करना चाहिए । अँगूठे और मध्यमा अँगुली के योग से मन्त्र-जप करते समय माला के मनकों को फिराने से) सभी सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं" ॥४॥ मतान्तर से - 'अँगूठे और मध्यमा के योग से माला की प्रत्येक दो मणियों को बीच से चलाना चाहिए । ऐसे जप में तर्जनी अँगुली द्वारा माला के दानों का स्पर्श नहीं करना चाहिए । इस विधि से किया गया जप मुक्ति-दायक होता है ॥५॥

अब जप निर्णय: - नैरन्तर्यविधि: श्रोक्तो न दिनं व्याप्ति लक्ष्येत् । दिनसाप्ति-क्रमेणैवं सिद्धि रोध: प्रजायते ॥ १॥ शनैरनैरतिस्पष्टं न द्रुतं न विलम्बितम् । न न्यूनं नातिरिक्तं वा

म.

जप कुर्याद्दिने दिने ॥ २॥ (इति गोमिल मतः) ॥ मनः संहृत्य विषयान्मन्त्रार्थेषु गत मानसः। न द्रुतं न विलम्बं च जपेन्मौक्तिक पंक्तिवत् ॥ ३॥ उच्चरेदर्थमुद्दिश्य मानसः स जपः स्मृतः। जिह्वोष्ठौ चालयेत्किञ्चिद्देवतागतमानसः ॥ ४॥ किञ्चिच्छ्रवणयोग्यः स्यादुपांशुः सजपः स्मृतः। जिह्वा जपः शतगुणः सहस्रं मानसः स्मृतः। जिह्वा जपः स विज्ञेयः केवलं जिह्वया बुधैः ॥ ५॥ वर्णलक्षं जपेन्मन्त्रं तदर्धं वा महेश्वरि। एकलक्षावधिं कुर्यान्नातो न्यूनं कदाचनः ॥ ६॥ कल्पान्तो नु कृते संख्या त्रेतायां द्विगुणा स्मृता। द्वापरे त्रिगुणा प्रोक्ता कलौ संख्या चतुर्गुणा ॥ ७॥ (इति तन्त्रसारे) ॥

टीका - अब जप के सम्बन्ध में बताते हैं। 'गोमिल मत' से — जप निरन्तर एवं किसी भी दिन का उल्लंघन किये बिना करते रहना चाहिए। एक दिन का व्यवधान भी सिद्धि में अवरोध उपस्थित करता है ॥ १॥ धीरे-धीरे अत्यन्त स्पष्ट, जो न बहुत क्षीण या से हो और न विलम्ब से, न कम हो और न अधिक - इस नियमानुसार एक रूप जप करना चाहिए ॥ २॥ 'तन्त्रसार' के मत से — 'विषयों से मन को हटा कर तथा मन्त्रार्थ में मन को लगा कर, न जल्दी, न विलम्ब से, मोतियों की एकसार पंक्ति के समान जप करना चाहिए ॥ ३॥ अर्थ को लक्ष्य करते हुए मन-ही-मन जप करने को 'मानस-जप' कहा जाता है। देवता में चित्त लगाये हुए जिह्वा तथा ओष्ठ को बहुत धीरे-धीरे चलाते हुए किंचित् सुनाई देने योग्य जप को 'उपांशु-जप' कहते हैं। जिह्वा से जप करने का सौगुना तथा मानस-जप का हजार गुना फल मिलता है। विद्वान् लोग 'जिह्वा-जप' उसे कहते हैं, जिसमें केवल जीभ से ही जप किया जाता है ॥ ४-५॥ हे महेश्वरि! मन्त्र का जप एक लाख अथवा उससे आधी

संख्या में करना चाहिए। एक लाख की संख्या में जप करना उचित है ॥६॥ महाप्रलय के समान सतयुग में जप की जो संख्या निश्चित हो, त्रेता युग में उससे दूनी, द्वापर युग में तीन गुनी तथा कलियुग में चार गुनी संख्या में मन्त्र-जप करना चाहिए ॥७॥

पुरश्चरण एकस्मिन्कृते जन्मान्तरौघतः। मन्त्रो यदि न सिद्धः स्यात्तदातत्पुनराचरेत् ॥८॥ (इति मन्त्र महोदधौ) ॥ सम्यगनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धिर्न जायते। पुनस्तेनैव कर्तव्यं ततः सिद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥९॥ पुनरनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते। पुनस्तेनैव कर्तव्यं ततः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥१०॥ पुनः सोऽनुष्ठितो मन्त्रो यदि सिद्धो न जायते। उपायास्तत्र कर्तव्या सप्त शङ्करभाषिताः ॥११॥ आमणं रोधनं वश्यं पीडनं शोष मोषणं। दहनान्तं क्रमात्कुर्यात्ततः सिद्धो भवेत्पुनः ॥१२॥ (इति ग्रन्थान्तरे) ॥ यद्वासमुद्रगामिन्यां नद्यामिन्दुरविग्रहे। स्थित्वान्मोक्षान्तमाजप्य जुहुयात्तद्दशांशतः ॥१३॥ विप्रान्संभोज्य नानान्नैर्मन्त्राणां सिद्धिमाप्नुयात्। सम्यग्जपपरस्यापि सिद्ध्यन्ति मनवोचिरात् ॥१४॥ (इति मन्त्र महोदधौ:) ॥

टीका - 'मन्त्र महोदधि' में कहा है - अनन्त जन्मों के कर्म-फल के कारण यदि एक बार पुरश्चरण करने पर मन्त्र सिद्ध न हो तो उस पुरश्चरण को दुबारा करना चाहिए ॥८॥ ग्रन्थान्तर से - 'भलीभाँति अनुष्ठान करने पर भी यदि मन्त्र-सिद्धि न हो तो उसी अनुष्ठान को दुबारा करने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। यदि दुबारा अनुष्ठान करने से भी मन्त्र सिद्ध न हो तो पुनः तीसरी बार उसी मन्त्र से अनुष्ठान करना चाहिए, इस भाँति निश्चित रूप से सिद्धि प्राप्त होती है ॥९-१०॥

यदि तीसरी बार अनुष्ठान करने पर भी मन्त्र सिद्ध न हो तो श्रीशङ्कर द्वारा बताये गये सात उपायों का आश्रय लेना चाहिए। आमण, रोधन, वश्य, पीडन, मोक्षण, पोषण तथा दहन - इन उपायों को क्रमशः करने से सिद्धि अवश्य मिलती है॥ २१-२२॥ 'मन्त्र महोदधि' के अनुसार - 'चन्द्र ग्रहण के समय समुद्र की ओर जाने वाली नदी में, ग्रहण के 'स्पर्श-काल' से 'मोक्ष-काल' तक, खड़े रह कर मन्त्र-जप करे, फिर जप-संख्या का दशांश हवन करे॥ २३॥ फिर ब्राह्मणों को नाना प्रकार के भोज्य-पदार्थ खिलावे तो सिद्धि जल्दी होती है। जो सम्यक्-रीति से जप में तल्लीन होते हैं, उन्हें मन्त्र-सिद्धि शीघ्र जल्दी होती है॥ २४॥

तं. क. म.

ग्रहणे ऽर्कस्य चेन्दो वा शुचिः पूर्वमुखोस्थितः। नद्यां समुद्रगामिन्यां नाभि-मात्रोदके स्थितः। स्पर्शादि मुक्ति पर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः॥ २५॥ (इति अगस्त्य संहितायाम्)॥ अपि मृद्वोदकैः स्नात्वा शुचौ देशे समाहितः। ग्रासादि मुक्ति पर्यन्तं जपेन्मन्त्रमनन्यधीः॥ इति ह्रत्वान सकेहो जपस्य फल माप्नुयात्॥ २६॥ ऋद्धिं रनुरोधेन यदि जाप्यं त्यजेन्नरः। स मनेद्देवता क्रोधी पितृन् सपा नयेदधः॥ २७॥ (इति रुद्रयामले)॥

टीका - 'अगस्त्य संहिता' में लिखा है - 'सूर्य अथवा चन्द्र ग्रहण के समय पवित्र तथा शुद्ध होकर समुद्र-गामिनी नदी में नाभि-पर्यन्त जल में खड़े रहकर 'स्पर्श' से 'मुक्ति' तक जो साधक मन्त्र-जप करता है, वह एकाग्र चित्त वाला, सिद्धि प्राप्त करता है॥ २५॥ 'रुद्रयामल' के

ग्रहण के प्रारंभ से अन्त तक मन्त्र का जप करे तो उसे जप का फल प्राप्त होता है - इसमें सन्देह नहीं है ॥१६॥ जो व्यक्ति श्रद्धा के अभाव में जप को बीच में ही छोड़ देता है, वह देव-द्रोही होता है तथा अपनी सात पीढ़ियों को नरक में ले जाता है ॥१७॥

म.

अथ होम निर्णय:- वसन्तश्चैव पूर्वाह्ने मध्याह्ने ग्रीष्म उच्यते। अपराह्ने भवेद् वर्षा शरच्चैवार्द्धरात्रिके। उषो हेमन्तकश्चैव सन्ध्यां शैशिर: स्मृत: ॥१॥ (अथ स्मरण चन्द्रिकायां) ततो जप दशांशेन होमं कुर्याद्विनेदिते। अथवा लक्ष्य संख्यापां पूर्णाधां होम माचरेत् ॥२॥ (अथ वामकीय संहितायाम्) अथाग्नि. कार्यं वक्ष्यामि कुण्डे वा स्थण्डिलेपि वा। वेद्यामध्यायसे पात्रे मृन्मये वा नवे शुभे। स्थण्डिले वा प्रकुर्वीत सुसिद्धै: सिकतै: सितै ॥३॥

टीका - अब 'होम' के विषय में बताते हैं - 'पूर्वाह्न में वसन्त, मध्याह्न में ग्रीष्म, अपराह्न में वर्षा, अर्द्धरात्रि में शरद्, उष: काल में हेमन्त तथा सायंकाल में शिशिर ऋतु की विद्यमानता मानी जाती है ॥१॥ 'पुरश्चरण-चन्द्रिका' में कहा गया है - 'फिर, प्रतिदिन जप के दशांश से हवन करे अथवा जब मन्त्र-जप की संख्या पूरी एक लाख हो जाय, तब होम करना चाहिए ॥२॥ 'वामकीय संहिता' में होम-स्थान के सम्बन्ध में इस प्रकार कहा गया है - 'होम कुण्ड' तथा 'स्थण्डिल' (वेदी) - दोनों पर होता है। उसकी विधि इस प्रकार है - वेदी के भीतर भी लोहे के पात्र में अथवा पवित्र मृत्तिका-पात्र में, जो नया हो, होम करना चाहिए। अथवा स्थण्डिल अर्थात् वेदी पर उत्तम बालुका (बालू) को बिछा कर हवन करना चाहिए ॥३॥

अथ कुण्ड-कथनम् — चतुरस्रं योनिमर्द्धचन्द्रं त्र्यस्रं सुवर्तुलम् । षडस्रं पङ्कजाकारमष्टास्रं तानि नामतः ॥१॥ सर्वसिद्धिकरं कुण्डं चतुरस्रमुदाहृतम् । पुत्रप्रदं योनिकुण्डमर्द्धेन्द्वाभं शुभप्रदम् ॥२॥ शत्रुक्षयकरं त्र्यस्रं वर्तुलं शान्तिकर्मणि । छेदमारणयोः कुण्डं षडस्रं पद्मसन्निभम् । पुष्टिदं रोगशमनं कुण्डमष्टास्रमीरितम् ॥३॥ अथ वर्णभेदेन ॥ विप्राणां चतुरस्रं स्याद्राज्ञां वर्तुलमिष्यते । वैश्यानामर्द्धचन्द्राभं शूद्राणां त्र्यस्रमीरितम् ॥४॥ चतुरस्रं तु सर्वेषां केचिदिच्छन्ति तान्त्रिकाः ॥ अथ कुण्डप्रमाणम् ॥ कुण्डं तु नारदेनोक्तं हस्तमात्रं शुभप्रदम् । यावत्कुण्डस्य विस्तारः खननं तावदीरितम् ॥५॥ अथ हस्तप्रमाणं ॥ चतुर्विंशत्यंगुलाढ्यं हस्तं तस्य विदो विदुः । कनिष्ठदक्षिणहस्तस्य मध्यमांगुलिपर्वणः ॥६॥ अथ होमप्रमाणेन कुण्डप्रमाणम् ॥ मुष्टिमात्रमितं कुण्डं शतार्द्धे संप्रचक्षते । शतहोमे रत्निमात्रं हस्तमात्रं सहस्रके ॥७॥ द्विहस्तमयुते लक्षे चतुर्हस्तमुदीरितम् । दशलक्षे तु षड्हस्तं कोट्यामष्टकरं स्मृतम् । मानहीनाधिकं कुण्डमनेकभयदं भवेत् ॥८॥ अथ कुण्डस्याङ्गानि ॥ कुण्डरूपं तु जानीयात् परमप्रकृतेर्वपुः । प्राच्यां शिरः समाख्यातं बाहू दक्षिणसौम्ययोः । उदरं कुण्डमित्युक्तं योनिः पादौ तु पश्चिमे ॥९॥ अथ कुण्डप्रमाणेन मेखलाप्रमाणम् ॥ कुण्डवन्मेखलां कृत्वा योनिं कृत्वा ततः परम् । कुण्डानां यादृशं रूपं मेखलानां तु तादृशम् ॥१०॥ कुण्डानां मेखलास्तिस्रो मुष्टिमात्रे तु ताः क्रमात् । उत्सेधायामतो ज्ञेया कण्ठार्द्धगलसंमिताः ॥११॥ अरत्निमात्रे कुण्डे स्युस्तास्त्रिरेकांगुलोच्छ्रिताः । एकहस्तमिते कुण्डे वेदाग्निनव-

-नाडुला: ॥१२॥ मेखलाना भवेदना: योनिर्ला नाम्नडुलाः / एकहस्तस्य कुण्डस्य अङ्गे चैतत्कमात्स्मृतं: ॥१३॥

कुण्डेषु वसुतर्कयुगांगुलाः ॥ कुण्डे रसकरे ताः स्युर्दशार्त्वंगुलान्विता ॥ १२॥ वसुहस्तमिते कुण्डे भानु-
पंक्त्यष्टकान्वितः / दशहस्तमिते कुण्डे मनुभानुदशांगुलाः / विस्तारोत्सेधतो ह्येता मेखला सर्वतो
कुर्यः ॥ १६॥

टीका- अब कुण्ड के विषयों का उल्लेख करते हैं / सबसे पहले 'कुण्ड के स्वरूप' का वर्णन करते हैं— होम का कुण्ड चौकोर, योनि के आकार का, अर्द्धचन्द्राकार, त्रिकोण, वर्तुलाकार, षट्कोणीय, कमलाकार तथा अष्टकोण संज्ञक होता है ॥ १॥ चतुरस्र कुण्ड सर्वसिद्धि दायक तथा योनि के आकार वाला कुण्ड पुत्र-दायक होता है ॥ २॥ त्रिकोणीय हवन-कुण्ड शत्रु-नाशक होता है / गोलाकार हवनकुण्ड शान्ति-कर्म के लिए प्रशस्त माना जाता है / वेदन तथा मारण-कर्म में षट्कोणीय तथा कमल जैसे आकार वाला कुण्ड श्रेष्ठ माना गया है / अष्टकोणीय कुण्ड पुष्टिकारक तथा रोग-नाशक होता है ॥ ३॥ वर्णभेद से कुण्ड प्रकार ॥ ब्राह्मणों के लिए चतुष्कोण हवन-कुण्ड, क्षत्रियों के लिए वर्तुलाकार तथा वैश्यों के लिए अर्द्धचन्द्राकार हवन-कुण्ड प्रशस्त है / शूद्रों के लिए त्रिकोणीय हवन-कुण्ड उत्तम है / कुछ तान्त्रिक चतुष्कोणीय हवन-कुण्ड सब के लिए उत्तम मानते हैं ॥ ४॥ 'नारदीय संहिता' में कुण्ड-प्रमाण के विषय में यह कहा गया है— 'नारद ने एक हाथ प्रमाण वाले हवन-कुण्ड को शुभ कहा है / हवन-कुण्ड का जितना विस्तार हो, गहराई भी उतनी ही होनी चाहिए ॥ ५॥ हाथ का प्रमाण इस प्रकार है— विद्वानों ने हाथ का प्रमाण २४ अंगुल माना है / यज्ञकर्ता के हाथ की अंगुली के पोर के परिमाण से हाथ का परिमाण २४ अंगुल बनाया है ॥ ६॥

होम-प्रमाण से कुण्ड का प्रमाण इस प्रकार कहा है — 'पचास आहुतियों के लिए मुट्ठी भर आकार का हवन-कुण्ड बनाया जाता है। सौ आहुतियों के लिए आरत्नि (हथेली) भर परिमाण का कुण्ड ठीक रहता है तथा सहस्र आहुतियों के लिए एक हाथ परिमाण वाला हवन-कुण्ड प्रशस्त माना गया है॥७॥ लक्ष (लाख) आहुतियों के लिए दो हाथ का हवन-कुण्ड होना चाहिए। दस लाख आहुतियों के लिए छः हाथ का तथा एक करोड़ आहुतियों के लिए आठ हाथ का हवन-कुण्ड होना उचित है। परिमाण से छोटा अथवा बड़ा हवन-कुण्ड अनेक प्रकार के भय देता है॥८॥ अब कुण्ड के अंग के विषय में बताते हैं — कुण्ड को प्रकृति के शरीर के रूप में समझना चाहिए। प्रकृति का सिर पूर्व दिशा में, बाहु दक्षिण तथा उत्तर दिशा में, उदर कुण्ड के मध्य भाग में तथा योनि और दोनों पाँव पश्चिम भाग में जानने चाहिए'॥९॥ अब कुण्ड-प्रमाण से मेखला-प्रमाण के विषय में बताते हैं — 'कुण्ड के समान ही मेखला बना कर योनि का निर्माण करे। कुण्ड का जैसा रूप हो, मेखला का रूप भी वैसा ही होना चाहिए॥१०॥ कुण्डोंकी तीन मेखलायें मुट्ठी के परिमाण की होती हैं। उसकी ऊँचाई चौड़ाई से, कण्ठ से आधे कण्ठ तक जाननी चाहिए। आरत्नि मात्र परिमाण वाले कुण्ड की मेखला, तीन, दो और एक अंगुल परिमाण वाली होनी चाहिए। एक हाथ वाले कुण्ड में चार, तीन तथा दो अंगुल की मेखलायें होनी चाहिए॥११-१२॥ मेखलाओं के भीतरी भाग में चारों ओर एक अंगुल की नेमि होनी चाहिए। चार हाथ वाले कुण्ड में आठ, छः और चार अंगुल की मेखलायें होनी चाहिए। छः-

म.

हाथ वाले कुण्ड में दस, आठ तथा छः अंगुल परिमाण वाली होती है। दस

आठ हाथ वाले हवन-कुण्ड में मेखलायें बारह, दस तथा आठ अंगुल परिमाण वाली होती हैं। दस हाथ वाले कुण्ड में चौदह, बारह तथा दस अंगुल परिमाण की मेखलायें विस्तार तथा ऊँचाई की दृष्टि से समझ लेनी चाहिए ॥१६॥

अथ योनि प्रमाणम् - होतुरग्रे योनिरासा मुपर्यश्वत्थ पत्रवत्। मुष्ट्यारत्न्येक हस्तानां कुण्डानां योनिरीरिता ॥१७॥ बट्चतुर्ह्यंगुलायाम विस्तारोन्नति शालिनी। एकांगुलं तु योन्य-ग्रं कुर्यादधो मुखम् ॥१८॥ एकैकांगुलितो योनिं कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत्। यवबद्ध यक्रमेणैव योन्य-ग्रमपि वर्द्धयेत् ॥१९॥ स्थलादारभ्य नालं स्याद्योन्या मध्यं सरन्ध्रकम्। नार्यधेत्कुण्डकोणेषु योनि तां तन्त्रवित्तमः ॥20॥ अथ नाभि मानम् - कुण्डानां कल्पयेदन्तर्नाभिमम्बुज सन्निभाम्। तत्तत्कुण्डानुरूपं वा मानमस्या निगद्यते ॥21॥ मुष्टयरत्नेक हस्तानां नाभिरुत्सेध नारतः। द्विस्त्रिवेदांगुलोपेतां कुण्डेष्वन्येषु वर्द्धयेत् ॥22॥ यवयव क्रमेणैव नाभिं पृथगुदारधीः। योनिकुण्डे योनिमज्जकुण्डे नाभिं विवर्जयेत् ॥23॥ नाभिक्षेत्रं त्रिधा भित्त्वा मध्ये कुर्वीत कर्णिकाम्। बहिरंश द्वये नाष्टौ पत्राणि परिक-ल्पयेत् ॥24॥

टीका - अब हवन-कुण्ड की योनि के प्रमाण के विषय में कहते हैं - 'मुष्टि, आरत्नि तथा एक हाथ परिमाण वाले कुण्डों की योनि पीपल के पत्ते के आकार की होनी चाहिए। उसका विस्तार छः अंगुल, चार अंगुल तथा दो अंगुल का होता है। योनि का अग्रभाग एक अंगुल का तथा कुछ नीचे की ओर झुका हुआ होना चाहिए ॥१७-१८॥ अन्य कुण्डों में योनि का आकार एक-एक अंगुल

बढ़ाना चाहिए। योनि के अग्रभाग को भी दो यव (जौ) के क्रम से बढ़ाना चाहिए ॥१९॥ स्थल-भूमि से आरंभ कर, योनि के मध्य में रन्ध्र (छिद्र या नाली) युक्त नाल होनी चाहिए। तन्त्रज्ञों को चाहिए कि कुण्ड के कोनों में उस योनि को अर्पित न करें ॥२०॥ अब 'नाभिमान' के विषय में बताते हैं — 'कुण्डों की अन्तर्नाभि को कमल के समान बनाये। प्रत्येक प्रकार के कुण्ड के अनुरूपही इसका मान बताया जाता है ॥२१॥ मुष्टि परिमाण, अरत्नि परिमाण तथा एक हाथ परिमाण वाले कुण्डों की ऊँचाई एवं विस्तार के आधार पर दो, तीन और चार अंगुल परिमाण की नाभि होनी चाहिए। इससे अधिक परिमाण वाले कुण्डों में इसी क्रम से वृद्धि करनी चाहिए ॥२२॥ बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि वह दो-दो यव (जौ) के क्रम से कुण्ड की नाभि में वृद्धि करे। योनि-कुण्ड में योनि को तथा अब्ज-कुण्ड में नाभि को वर्जित करे ॥२३॥ नाभि-क्षेत्र को तीन भागों में बाँट कर, बीच में कर्णिका बनायें। बाहर दो अंश से आठ पत्रों की परिकल्पना (निर्माण) करें ॥२४॥

अथ द्राकल्प एवं आहुति प्रमाणम् — तिलास्तु द्विगुणाः प्रोक्ता यवेभ्यश्चैव सर्वदा। अन्ये सौगन्धिकाः स्निग्धाः गुग्गुल्वादि यवैः समाः ॥२५॥ (इति महार्णवे)॥ आयुः क्षयं यवाधिक्यं यवसाम्यं धनक्षयम्। सर्वकाम समृद्ध्यर्थं तिलाधिक्यं सदैव हि ॥२६॥ द्रव्यभेदेन आहुति प्रमाणम् — 'अथात्र होमद्रव्याणां प्रमाणमभिधीयते। कर्ष मात्रं घृतं होमे शुक्तिमात्रं पयः स्मृतम् ॥२७॥ उक्तानि पञ्चगव्यानि तत्समानि मनीषिभिः। तत्समं मधु दुग्धान्नमर्धमात्रमुदाहृतम् ॥२८॥ दधि प्रसृतिमात्रं स्यात्तत्समा सर्पिरिष्टसम्मिता। [illegible]

स्याच्चर्करापि तथा मता। ग्रासार्द्धं चरुमानं स्यादिदुः पर्वविधिर्मतः ॥३०॥ एकैकं पत्रपुष्पाणि तथाऽऽपूपा
-नि कल्पयेत्। कदलीफलनारङ्गफलान्येकैकशो विदुः ॥३१॥ मातुलुङ्गं चतुःखण्डं वनसं दशधा कृतम्।
अष्टधा नारिकेलानि खण्डितानि विदुर्बुधाः ॥३२॥ त्रिधा कृतं फलं बिल्वं कपित्थं खण्डितं त्रिधा
ऊर्वारुकफलं होमे चोदितं खण्डितं त्रिधा ॥३३॥ फलान्यन्यानि खण्डानि समिधः स्युर्दशांगुलाः। दूर्वा
त्रयं समुद्दिष्टं गुडूची चतुरङ्गुला ॥३४॥ व्रीहयो मुष्टिमात्राः स्युर्मुद्गमाषा यवा अपि। तण्डुलाः
स्युस्तद्दृढिणाः कौड्वा मुष्टिसम्मिताः ॥३५॥ गोधूमा रक्तकलमा विहिता मुष्टिमात्रतः। तिलाश्चु-
-लुकमात्राः स्युस्सर्षपास्तत्प्रमाणकाः ॥३६॥ शुक्तिप्रमाणं लवणं मरीच्यानेकविंशतिः। पुरुं बदरमानं
स्याद्धामठं तत्समं स्मृतम् ॥३७॥ चन्दनागुरुकर्पूरकस्तूरीकुंकुमानि च। तिंतिडीबीजमानानि समुद्दिष्टानि
देशिकैः ॥३८॥ (इति क्षमादा तिलके)॥

टीका - अब शाकल्य का प्रमाण कहते हैं। ~~ग्रंथ~~ 'महार्णव' के अनुसार यव से तिल दोगुना ले। अन्य सुगन्धित एवं स्निग्ध द्रव्य गुग्गुल आदि यव के प्रमाण (बराबर) लेने चाहिए ॥२५॥ 'त्रिकारिका' के अनुसार — 'यव (जौ) की अधिकता से अन्नु का क्षय होता है। यव की समानता (बराबर) से धन का क्षय होता है। तिल की अधिकता समस्त कामनाओं की पूर्ति के लिए उचित कही गई है ॥२६॥ अब द्रव्य-भेद से आहुति के प्रमाण के विषय में कहते हैं। 'शारदा तिलक' के अनुसार — 'होम के द्रव्यों का प्रमाण इस प्रकार है — घृत की आहुति एक कर्ष की होती है तथा दूध की एक शुक्ति (सीप) के बराबर होती है ॥२७॥ विद्वानों ने पञ्चगव्य की आहुति को भी दूध की आहुति

में

के समान एक मुष्टि प्रमाण कहा है। उसीके बराबर मधु, दूध तथा अन्न का प्रमाण भी एक मुष्ठ का होना चाहिए ॥२८॥ दही की आहुति एक 'प्रसृति' (हथेली भर), लाजा (लाई) की आहुति एक मुट्ठी भर तथा 'पृथुक' (बड़ुरी) एवं सत्तू की आहुति का परिमाण भी उतना ही समझना चाहिए। ॥२९॥ गुड़ का परिमाण आधा पल तथा शक्कर की आहुति का परिमाण भी इतना ही है। घृत की आहुति का परिमाण एक ग्रास का आधा तथा गन्ने की आहुति का परिमाण एक पोर (गन्ने का) बताया गया है ॥३०॥ पत्र तथा पुष्प की आहुति का परिमाण एक-एक नग है। यही परिमाण फूल की आहुति का भी है। केला, नारंगी आदि की आहुति एक-एक नग कटी गई है ॥३१॥ बिजौरा नींबू के चार टुकड़े करके, उनमें से एक-एक टुकड़े की आहुति देनी चाहिए। कटहल के दस टुकड़े करके एक-एक टुकड़े की आहुति दे। नारियल के आठ टुकड़े करके एक-एक की आहुति देना उचित है ॥३२॥ बेल और कैथ के फलों के तीन-तीन टुकड़े करके एक-एक की आहुति दें। खरबूजा तथा ऐसे ही अन्य फलों के भी तीन-तीन टुकड़े करके एक-एक की आहुति देनी चाहिए ॥३३॥ अन्यान्य फलों के भी टुकड़े करके आहुति दें। समिधायें दस अंगुल की होनी चाहिए। दूर्वा की आहुति देते समय तीन दूर्वाओं की एक आहुति करें। गिलोय की आहुति के लिए उसके चार-चार अंगुल के टुकड़े लें ॥३४॥ धान, मूँग, उड़द आदि की आहुति के लिए एक-एक मुट्ठी परिमाण में लेना चाहिए। चावल आधी मुट्ठी भर लें। कोदों एक मुट्ठी भर की आहुति देनी चाहिए ॥३५॥ गेहूँ, रक्तकलम की आहुति का परिमाण भी एक मुट्ठी भर ही है। तिल तथा सरसों की मात्रा हथेली

तं. २६ म.

भर बताई गई है ॥३६॥ एक सीप भर नमक की तथा कालीमिर्च की मात्रा इक्कीस नग है। गुग्गुल, हींग, चन्दन, अगर, कपूर, कस्तूरी, केसर तथा इमली के बीजों की मात्रा एक बेर के बराबर कही गई है ॥३७-३८॥

अथ अग्नि वर्णनम्- बधिरत्वं कर्णहोमे नेत्रे त्वन्धत्वमाप्नुयात्। नासिकायां मनःपीड़ा शिरो होमो हि मृत्युदः ॥१॥ यतः काष्ठं ततः श्रोत्रं यतो भूम्यश्च नासिका। यतोल्पज्वलनं नेत्रं यतोभस्म ततः शिरः ॥यतः पुञ्जवलितो वह्निस्तन्मुखं जातवेदसः ॥२॥ अग्नि वर्ण, ध्वनि, गंधेन शुभाशुभ परीक्षणम् ॥ स्वर्णसिन्दूर बालार्क कुंकुम क्षोद सन्निभः। भेरीवारिद हस्तिनां ध्वनिर्वह्नेः शुभावहः ॥३॥ नाग चम्पक पुन्नाग वकुलाः केतकानि च। यूथिकानुनिभो गन्धो गन्धो वह्नेः शुभावह ॥४॥ काकस्वर स्वरो वह्नेर्यजमानस्य दुःखदः। कृष्णे कृष्णगते वर्णे यजमानं विनाशयेत् ॥५॥ एवं दुष्टेषु चिह्नेषु प्रायश्चित्तोपदेशकः। मूलेनाज्येन जुहुयात्पञ्चविंशतिराहुतीः ॥६॥

टीका - अब अग्नि के अङ्गों का उल्लेख किया जाता है। अग्नि के कान में होम करने से 'होता' (हवन करने वाला) बहरा हो जाता है; आँख में होम करने से अन्धा हो जाता है; नाक में होम करने से मन में पीड़ा होती है एवं शिर में होम करने से मृत्यु हो जाती है। कुण्ड में जहाँ काष्ठ है, वह अग्नि का 'कान' है, जहाँ भूमि है, वह 'नाक' है, अग्नि का जलना ही उसकी 'आँख' है; जहाँ भस्म है, वह उसका 'शिर' है और जो पुञ्जण्ड-ज्वाला है, उसी को अग्नि का 'मुख' समझना चाहिए ॥१-२॥ अग्नि के वर्ण आदि से शुभाशुभ की परीक्षा इस प्रकार की जाती है— स्वर्ण, सिन्दूर, बाल-सूर्य तथा

केसर के चूर्ण के समान अग्नि वर्ण दिखाई दे तथा नगाड़ा, बादल एवं हाथी की ध्वनि के समान अग्नि से शब्द प्रकट हो एवं नागचम्पा, पुन्नाग, मौलसी, केतकी अथवा जूही के समान 'गन्ध' प्रकट हो तो उन्हें शुभ-सूचक समझना चाहिए ॥३-४॥ यदि अग्नि से प्रकट होने वाली ध्वनि कौवे के स्वर जैसी हो तो यजमान को दुःख प्राप्त होता है एवं अग्नि से प्रकट काली आभा यजमान को नष्ट कर देती है ॥५॥ ऐसे दुष्ट-चिह्नों के प्रकट होने पर प्रायश्चित्त का उपदेश किया गया है। ऐसे अवसरों पर मूल-मन्त्र द्वारा घृत की पच्चीस आहुतियाँ देनी चाहिए ॥६॥

अथ पूर्णाहुत्यादि वर्णनम् - अतो पूर्णाहुतिं हुत्वा समुद्रादूर्मिसूक्तत:।
सतलमाज्यधारां तां पूर्णाहुतिमथाचरेत् ॥१॥ (इति संस्कार भास्करे)॥ अथ ग्रन्थान्तरे- 'चतुर्हिस्तमाज्यं तदर्द्धहीनं वा सुचिमध्यत:। वस्त्रताम्बूल पूगादि फलपुष्प समन्वितम् ॥२॥ अधोमुखं स्रुवं हस्तां गन्धाक्षतैरलंकृताम्। पूर्वं दक्षिण हस्तेन पश्चाद्वामेन पाणिना ॥३॥ अग्रमध्यममध्यस्थं मूलमध्यममध्यत:। वाणिद्वयेन होतव्यं पाणिरेको निरर्थक: ॥४॥ (इति ग्रंथान्तरे)॥ ऐशान्यामाहरेद्भस्म स्रुचा वाथ स्रुवेण वा। अङ्गानं कारयेत्तेन शिर: कण्ठांसकेषु च ॥५॥ (इति शान्ति रत्ने)॥ होमेऽशक्तौ रुद्राक्ष कथनम्॥ होमकर्मण्यशक्तानां विप्राणां द्विगुणो जप:। यद्यद्दुं भवेदभग्नं तत्संख्या द्विगुणो जप:॥ ६॥ होमाभावे जप: कार्यो होमसंख्या चतुर्गुण:। विप्राणां क्षत्रियाणां च रससंख्या गुण: स्मृत:। वैश्यानां वसुसंख्याकमेषां स्त्रीणामयं विधि:॥७॥ (इति योगिनी हृदये)॥ यदि होमेऽप्यशक्त: स्याच्छ्रुजाघां तर्पणेऽपि वा। तावत्संख्या जपेनैव ब्राह्मणाराधनेन च ॥८॥

टीका - अब पूर्णाहुति आदि के विषय में लिखा जाता है। 'संस्कार भास्कर' में भैरवानंद ने कहा है - 'अन्त में समुद्र से ऊर्मि मुद्रा तक पूर्णाहुति करके, घृत की लगातार धार छोड़ते हुए पूर्णाहुति देनी चाहिए'॥१॥ गंधान्ता के मत से - 'वस्त्र, ताम्बूल, सुपारी आदि युक्त स्रुच में चार बार घृत लेकर अधोमुख स्रुवा से उसे ढँक कर व गन्ध तथा अक्षत से अलंकृत कर स्रुच को अग्रभाग के मध्य में दाँये हाथ से, एवं मूल तथा अंडे के मध्यभाग में बाँये हाथ से पकड़ कर होम करना चाहिए। एक हाथ से होम करना निष्फल होता है॥२-४॥ 'शान्ति रत्न' के अनुसार - 'ईशान कोण से स्रुच अथवा स्रुवा द्वारा यज्ञ-कुण्ड की भस्म निकाल कर, उसे कण्ठ तथा कन्धे पर लगाना चाहिए॥५॥ अब होम करने में असमर्थता हो तो उसका उपाय बताते हैं। 'योगिनी हृदय' में लिखा है - 'जो ब्राह्मण होम-कर्म करने में असमर्थ हो, उन्हें दूनी संख्या में मन्त्र-जप करना चाहिए। जो-जो अङ्ग; टूट (छूट) गया हो, उसकी संख्या का दो गुना जप करना चाहिए॥६॥ होम के अभाव में होम-संख्या का चार गुना मन्त्र-जप करना चाहिए। ब्राह्मण तथा क्षत्रियों को दो गुना तथा वैश्यों एवं स्त्रियों को आठ गुना जप करना चाहिए - ऐसा विधान है॥७॥ 'अगस्त्य संहिता में कहा है - 'यदि होम में, पूजा में अथवा तर्पण में अशक्तता हो तो उतनी ही संख्या में जप तथा ब्राह्मणों की पूजा करने से सिद्धि प्राप्त होती है॥८॥

अथ मन्त्र लेखन पात्र एवं चूर्णादि निर्णयम् - स्वर्णादि पात्रे संलिख्य मातृका-
मन्त्रमुत्तमम्। काश्मीर चन्दनेनापि भस्मना वाथ सुव्रत॥१॥ काश्मीरं शर्कर संस्कारे चन्दनं वैष्णवे मनौ,

शैवे भस्म समाख्यातं मातृका यन्त्रलेखने ॥२॥ अथ धूपादि समर्पणादु: निर्णय:॥ निवेदयेत्पुरो भागे गन्धं पुष्पं च भूषणम् । दीपं दक्षिणतोदद्यात्पुरतो वा न वा मत: ॥३॥ वामतस्तु तथा धूपमग्रे वा न तु दक्षिणे । नैवेद्यं दक्षिणे भागे पुरतो वा न पृष्ठत: । धूपदीपौ सुभोज्यं च देवताग्रे निवेदयेत् ॥४॥ अथ गन्ध निर्णय :॥ सर्वेषु गन्धजातेषु प्रशस्तो मलयोद्भव: । तस्मात्सर्वं प्रयत्नेन दद्यान्मलयजं सदा ॥५॥ देव भेदेन गन्ध निर्णय:॥ कृष्णागुरु सकर्पूर: सहितो मलयोद्भवै: । वैष्णव प्रीतिदो गंध: कामाख्यायाञ्च भैरव: ॥६॥ कुंकुमागरु कस्तूरी चन्दनागै: समीकृतै: । त्रिपुरात्प्रीतिदो गन्धस्तथा चण्डायाश्च शाम्भुना ॥७॥ अथ देव भेदेन गन्धाष्टकम् ॥ गन्धाष्टकं तत्त्रिविधं शाक्त विष्णु शिवात्मकम् । चन्दनागरु कर्पूरचोर कुंकुम रोचना ॥८॥ जटामांसी कपियुता: शाक्तो गन्धाष्टकं विदु: ॥ चन्दनागरु ह्रीवेर कुष्ठ कुंकुम सेव्यका: । जटामांसी मुरमिति विष्णोर्गन्धाष्टकं विदु: ॥९॥ चन्दनागरु कर्पूर तमालजल कुंकुमम् । कुशीतं कुष्ठ संयुक्तं शैवं गन्धाष्टकं विदु: ॥१०॥ अथ गंधार्पणे अंगुलि विचार: ॥ अनामिक्या च देवस्य ऋणीणं च तथैव च । गन्धालेपनं कार्यं प्रयत्नेन विशोषत: ॥११॥ पितृणामर्पयेद्गन्धं तर्जन्यां च सदैव हि । तथैव मध्यमांगुल्या धार्यं गन्धं स्वयं बुधै: ॥१२॥

टीका- अब यन्त्र-लेखन के पात्र, धूप, गन्ध आदि के विषय में लिखते हैं। अथ यन्त्र लेखन-पात्र निर्णय - 'हे सुव्रत! उत्तम मातृका-यन्त्र को स्वर्ण आदि के पात्र में केसर, चन्दन अथवा भस्म द्वारा लिखना चाहिए ॥१॥ शक्ति-संस्कार में केसर से, वैष्णव-मन्त्र में चन्दन से तथा शैव-मन्त्र से भस्म द्वारा मातृका-यन्त्र लिखने का विधान है ॥२॥

के विषय में 'रुद्रयामल' के मत का उल्लेख किया जाता है — 'गन्ध, पुष्प तथा आभूषण - इन्हें देवता के सामने रक्खे; दीपक को दाँई अथवा बाँई ओर अथवा सम्मुख रखना चाहिए ॥३॥ धूप को बाँई ओर अथवा सामने की ओर रखना चाहिए। नैवेद्य को दाँये अथवा सामने रक्खे; पीछे न रक्खे। धूप, दीप तथा नैवेद्य को देवता के सम्मुख रखना ही उचित है ॥४॥ अब 'गन्ध' के विषय में बताते हैं — सब प्रकार की गंधों में मलयागिरि-चन्दन को श्रेष्ठ माना गया है, अतः सब प्रकार के उपचार से सदैव मलयागिरि चन्दन को ही चढ़ाना चाहिए ॥५॥ अब देवता-भेद से गन्ध-भेद का उल्लेख करते हैं। काला अगर, कपूर एवं मलयागिरि चन्दन - ये सब वैष्णव-देवताओं, कामाख्या तथा भैरव के लिए प्रसन्नतादायक हैं। केसर, अगर, कस्तूरी तथा कपूर - इन सबका मिश्रण त्रिपुरा, चण्डी तथा शिव को प्रीतिकर कहा गया है ॥६-७॥ अब देव-भेद से 'गन्धाष्टक-भेद' के विषय में बताते हैं — 'गन्धाष्टक' तीन प्रकार का होता है — १-शक्ति गन्धाष्टक, २-विष्णु गन्धाष्टक और ३-शिव गन्धाष्टक ॥ चन्दन, अगर, कपूर, चोर (ग्रंथिपर्णी), केसर, गोरोचन, जरामांसी और लोबान — यह 'शक्ति गंधाष्टक' है। चन्दन, अगर, हीबेर (हरिवेर), कुश, केसर, सेव्यक, जरामासी और मुर — यह 'विष्णु गंधाष्टक' है, चन्दन, अगर, कपूर, तमाल, जल, केसर, कुशीत और कुष्ठ — यह 'शिव गन्धाष्टक' है ॥८-१०॥ अब गंधार्पण के लिए अंगुलि-विचार का वर्णन करते हैं — 'देवताओं को गन्धार्पण करते समय यह ध्यान विशेष रूप से रखना चाहिए कि देवता तथा ऋषियों को अनामिका अँगुली से गंधानु-लेपन करे ॥ ११॥ पितरों को सदैव तर्जनी अँगुली से ही गंध प्रदान करनी चाहिए एवं स्वयं मध्यमा

अँगुली से गंध लगानी चाहिए ॥ १२ ॥

अथ फल-पुष्प, धूप, दीपादि विधयः ॥ श्वेतं पीतं हरेरिष्टं रक्तं रविगणेशयोः । अक्षतान्कंधत्तूरौ विष्णौ नैवार्पयेत्सुधीः ॥ १ ॥ बन्धूकं केतकी कुन्दं केसरं कुटजं जपाम् । शङ्करे नार्पयेद्विद्वान्मालतीं यूथिकामपि ॥ २ ॥ शक्तौ दूर्वार्कमन्दारान्मालूरं तगरं रवौ । विनायके तु तुलसीं नार्पयेज्जानुचिक्कुधः ॥ ३ ॥ अथ स्नाने विहिते पुष्पस्पर्शे दोषः ॥ स्नानं कृत्वा च ये केचित्पुष्पं गृह्णन्ति वै द्विजाः । देवतास्तन्न गृह्णन्ति भस्मी भवति काष्ठवत् ॥ १ ॥ पुष्पं पत्रं फलं देवे न प्रदद्याद्धोमुखम् । पुष्पाञ्जलौ न तद्दोषस्तथा पर्युषितस्य च ॥ २ ॥ (इति लघुहारीतः) ॥ चम्पकं कमलं त्यक्त्वा कलिकाम् विवर्जयेत् । कुरण्टकं काञ्चनारं वर्जयेद्बृहतीयुगम् ॥ ६ ॥ (इति मन्त्रमहोदधौ:) ॥ सर्वदेवोपयोगी धूपः ॥ गुग्गुलं सरलं दारुपत्रं मलयसम्भवम् । ह्रीबेरमगरं कुष्ठं गुडं सर्जरसं घनम् ॥ ७ ॥ हरीतकीं नखीं लाक्षां जटामांसीं च शैलजम् । लोडशाङ्गः विदुर्धूपं दैवे पित्र्ये च कर्मणि ॥ ८ ॥ (इति तन्त्रसारे) ॥

अथ दीपनिर्णयः ॥ सुवृत्तवर्तिसि स्नेहपात्रेऽग्ने सुदर्शने । मृण्मये वृक्षकोटौ तु दीपं दद्यात्प्रयत्नतः ॥ ६ ॥ तैजसं दारवं लौहं मार्तिकं नारिकेलजम् । तृणध्वजोद्भवं चापि दीपपात्रं प्रशस्यते ॥ ७ ॥

अथ दीप विचारः ॥ न मिश्रीकृत्य दद्याच्च दीपं स्नेहे घृतादिकम् । घृतेन दीपकं नित्यं तैलेन तैलजं वा पुनः ॥ ११ ॥ दीपं घृतयुतं दद्यात् तैलयुक्तं च वामतः । दक्षिणे च स्थितां वर्तिं नाम्ना रक्तवर्तिकाम् ॥ १२ ॥ नैव निर्वापयेद्दीपं देवार्थमुपकल्पितम् । दीपहर्ता भवेदन्धः काणो निर्वापको भवेत् ॥ १३ ॥

अथ अन्य निर्णयः — [illegible]

इति कालिका पुराणे ३०

वादयेत् ॥१४॥ (इति योगिनी तन्त्रे) ॥ वादित्राणामभावे तु पूजाकाले च सर्वदा। घण्टाशब्दो नरैः कार्यः सर्ववाद्यमयीयतः ॥ इति लघुसिद्धकालकुमे ॥१५॥

टीका - अब फल, पुष्प, धूप, दीपादि के विषय में बताते हैं। 'मन्त्रमहोदधि' में कहा गया है - 'श्वेत तथा पीत रंग के पुष्प विष्णु को प्रिय हैं। लाल रंग के पुष्प सूर्य तथा गणेश को प्रिय हैं। बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि कट अक्षत, आक (मदार) तथा धतूरे के फूलों को विष्णु पर कभी न चढ़ाये ॥१॥ गुलदुपहरिया (बन्धूक), केतकी - कुन्द, मौलश्री, केसर, कुरुज (कौरैया), जवाकुसुम (गुड़हल), मालती तथा जूही के पुष्प शङ्कर जी पर नहीं चढ़ाने चाहिए ॥२॥ दूर्वा व अर्क (मदार), शक्ति को; हरसिंगार तथा तगर सूर्य को एवं तुलसी गणेश जी पर कभी नहीं चढ़ाये ॥ ३ ॥ स्नानोपरान्त पुष्प-स्पर्श में दोष का विवेचन करते हुए 'लघु हारीत' नामक ग्रंथ में कहा गया है - 'जो द्विज स्नानोपरान्त पुष्प ग्रहण करते (तोड़ते) हैं, उन फूलों को देवता जले हुए काष्ठ की भाँति ग्रहण नहीं करते ॥४॥ पुष्प, पत्र तथा फल इन्हें अधोमुख करके देवता को समर्पित नहीं करना चाहिए, परन्तु 'पुष्पांजलि' में यह दोष नहीं लगता। बासी फूलों में भी यह दोष नहीं होता ॥५॥ 'मन्त्रमहोदधि' में कहा गया है - 'चम्पा तथा कमल की कलियों के अतिरिक्त अन्य किसी फूल की कली नहीं लेनी चाहिए। पीले रंग की कटसरैया (कटेली), नागचम्पा तथा दोनों प्रकार के बृहती पुष्प भी वर्जित माने गए हैं ॥६॥ 'तन्त्रसार' के अनुसार सर्वदेवोपयोगी 'धूप' के विषय में इस प्रकार समझें - "गुग्गुल, सरल, देवदारु, पत्रज, मलयागिरि-चन्दन, ह्रीबेर (हाऊबेर), अगरु, कूठ, गुड़, सर्जरस, धन, हरीतकी, नखी, लाक्ष, जटामांसी तथा शैलज - इन सोलह वस्तुओं वाली

मः

भूप देव तथा पितृ-कर्म के लिए प्रशस्त कही गई है ॥ ७-८ ॥ अब दीपक के विषय में 'काली-का पुराण' का मत उद्धृत करते हैं — 'उत्तम, अखण्डित, गोलाकार; बत्ती एवं स्नेह (चिकनाई) से युक्त, मिट्टी अथवा काष्ठ द्वारा निर्मित दीपक देवता को चढ़ाना चाहिए। स्वर्ण, काष्ठ, लौह, मिट्टी अथवा नारियल, ताड़ एवं बाँस द्वारा निर्मित दीपक भी उत्तम होता है ॥ ९-१० ॥ दीपक में मिश्रित-तैल नहीं डालना चाहिए / घृत अथवा तिल तैल द्वारा भरे गये दीपक को ही नित्य जलाना चाहिए ॥ ११ ॥ घृत युक्त दीपक को देवता के दाँई ओर तथा तैल युक्त दीपक को बाँई ओर रखना चाहिए / दाँई ओर के दीपक में सफेद बत्ती तथा बाँई ओर के दीपक में लाल रंग की बत्ती रखनी चाहिए ॥ १२ ॥ देवता के लिए जलाये गये दीपक को बुझाना नहीं चाहिए। देवता के दीपक को चुराने वाला व्यक्ति अन्धा तथा बुझा देने वाला काना हो जाता है ॥ १३ ॥ अब 'योगिनी तन्त्र' के अनुसार वाद्य के संबंध में बताते हैं — 'शिव-मन्दिर में भल्लक, सूर्य-मन्दिर में शंख एवं दुर्गा-मन्दिर में बाँसुरी तथा माधुरी (तुरही आदि) को नहीं बजाना चाहिए ॥ १४ ॥ 'जयसिंह कल्पद्रुम' के अनुसार— वाद्य-यन्त्रों के अभाव में पूजा के समय सदैव घण्टा बजाना चाहिए, क्योंकि घण्टा सभी वाद्यों का प्रतिनिधित्व करता है ॥ १५ ॥

अथ नैवेद्यादि निर्णयः ॥ तत्रादौ नैवेद्य-विचारः — भक्ष्यं भोज्यं च लेह्यं च पेयं चोष्यं च पञ्चमम् / सर्वत्र चैतन्नैवेद्यमाख्यं निवेदने ॥

वापि नैवेद्यं स्थापयेद्बुधः / सर्वाभावे च माद्येये स्वहस्त घटिते घटे ॥३॥ अथ नैवेद्य लक्षणम् - अवा-
र्विसर्जनाद् द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते / विसर्जितेन जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ॥४॥ अथ नैवेद्यत्याग
निषेधः - तृणार्त्ताः पशवो रुद्राः कन्यका च रजस्वला / देवता च स निर्माल्या हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥५॥
(इति आह्निक तत्त्वे) ॥ निवेदितं च यद् द्रव्यं भोक्तव्यं तद्धि यानतः / तन्न चेद् भुज्यते मोहाद् भोक्तुमायान्ति
देवताः ॥६॥ अग्राह्यं शिवनैवेद्यं पत्रं पुष्पं फलं जलम् / शालिग्रामशिलास्पृष्टात्सर्वं याति पवित्रताम् ॥७॥
(इति रुद्र यामले) ॥ अथ उच्छिष्टाधिकारी कथनम् - "विष्वक्सेनो हरेरुक्तश्चण्डेश्वर उमापतेः /
विकर्तनस्य चण्डांशुर्वक्रतुण्डो गणेशितुः / द्वास्तेरुच्छिष्ट चाण्डाली स्मृता उच्छिष्ट भोजिनः ॥८॥

टीका - अब नैवेद्य के विषय में कहते हैं - भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय तथा चोष्य - इन पाँचों प्रकारों का नैवेद्य सभी देवताओं को चढ़ाना चाहिए ॥१॥ अब नैवेद्य के पात्रों का उल्लेख करते हैं - स्वर्ण, रजत (चाँदी), ताँबा, पत्थर, कमल अथवा महीप-कणों द्वारा निर्मित पात्र में नैवेद्य चढ़ाना चाहिए / बुद्धिमान् मनुष्य को चाहिए कि इन सब के अभाव में अपने हाथ से बनाये गये मिट्टी के पात्र में नैवेद्य रख कर चढ़ाना चाहिए ॥ २-३ ॥ अब नैवेद्य के लक्षण बताते हैं - अपने हाथ में रखी जिस वस्तु को देवता के सम्मुख उसके चरणों में विसर्जित किया जाता है, उसे 'नैवेद्य' कहते हैं / जगन्नाथ के सम्मुख विसर्जित किया गया 'नैवेद्य' तत्काल ही 'निर्माल्य' बन जाता है ॥४॥ अब नैवेद्य त्याग के निषेध के सम्बन्ध में 'आह्निक तत्त्व' का मत कहते हैं, जो इस प्रकार है - प्यासे पशु का पात्र में बँधा रहना अथवा घर में रजस्वला-कन्या का होना तथा देवता का निर्माल्य सहित

होना - ये सभी बातें पूर्व में किए गए पुण्य को समाप्त कर देती हैं (अर्थात् नैवेद्य को चढ़ा देने के बाद उसे उठा लेना चाहिए) ॥ ५ ॥ 'रुद्रयामल' में कहा है — " जो द्रव्य देवता को चढ़ाया गया हो उसे विधिवत् सेवन करना चाहिए। यदि उसे मोहवश खाया नहीं जाता तो उसे खाने के लिए देवता न्योते हैं ॥ ६ ॥ शिवजी पर चढ़ाये गये पत्र, पुष्प, फल तथा जल आदि 'अग्राह्य' होते हैं अर्थात् उन्हें ग्रहण या सेवन नहीं करना चाहिए; परन्तु शालग्राम-शिला के स्पर्श से वे पवित्र हो जाते हैं ॥ ७ ॥ 'मन्त्रमहोदधि' में देवता का उच्छिष्ट खाने के अधिकारी इस प्रकार बताये गये हैं — 'विष्णु के विष्वक्सेन, शिव के चण्डेश्वर, विकर्तन के चण्डांशु, गणेश के वक्रतुण्ड तथा शक्ति की उच्छिष्टभोगी चाण्डाली हैं ॥ ८ ॥

अथ वस्त्र स्य प्रदक्षिणा निर्णयः — पीत कौशेय वसनं विष्णु प्रीत्यं प्रकीर्तितम् । रक्तं शक्त्यर्क विघ्नानां शिवस्य च सितं प्रियम् ॥ १ ॥ मलहीनं तथाऽच्छिद्रं क्षौमं कार्पास मेव च ॥ (इति जयसिंह कल्पद्रुमे) ॥ अथ प्रदक्षिणा निर्णयः — एका चण्ड्याः रवेः सदा तिस्रो दद्याद्विनायके । चतस्रो विष्णवे दद्याच्छिवे तिस्र प्रदक्षिणाः ॥ २ ॥ (इति लिङ्गार्चन चन्द्रिकायाम्) ॥ एक चण्ड्या रवेः सदा तिस्रः कार्या विनायके । हरेश्चतस्रः कर्तव्याः शिवस्यार्द्ध प्रदक्षिणा (इति ग्रंथान्तरे) ॥ ३ ॥ अथ शिव प्रदक्षिणा माहात्म्यम् ॥ पूजां कृत्वा च यः शम्भोर्न करोति प्रदक्षिणा ॥ सा पूजा निष्फला तस्य प्रोक्ता सर्व दार्मिकैः ॥ ४ ॥ अकृत्वा करोति यः सम्यक् केवलं तु प्रदक्षि-

टीका- अब वस्त्र तथा प्रदक्षिणा के विषय में बताते हैं। 'जयसिंह कल्पद्रुम' के अनुसार- विष्णु की प्रसन्नता के लिए पीला रेशमी वस्त्र प्रशस्त है। शक्ति, सूर्य तथा गणेश को लाल रंग का तथा शिव को श्वेत रंग का वस्त्र प्रिय है। मल-हीन तथा छिद्र-रहित रेशम अथवा कपास निर्मित वस्त्र उत्तम होते हैं ॥१॥ अब प्रदक्षिणा के विषय में कहते हैं। 'लिङ्गार्चन चन्द्रिका' में कहा है — 'चण्डिका की एक, सूर्य की सात, गणेश की तीन, विष्णु की चार तथा शिव की तीन प्रदक्षिणा करनी चाहिए ॥२॥ ग्रन्थान्तर के अनुसार — 'चण्डिका की एक, सूर्य की सात, गणेश की तीन, विष्णु की चार तथा शिव की आधी (मतान्तर से — दो) प्रदक्षिणा करना उचित है ॥३॥ अब शिव-प्रदक्षिणा 'माहात्म्य' नामक ग्रंथ का मत बताते हैं — 'जो व्यक्ति शिव की पूजा करके प्रदक्षिणा नहीं करता, उसकी पूजा निष्फल हो जाती है। ऐसे व्यक्ति को पूजा-दाम्भिक (घमण्डी) समझना चाहिए ॥४॥ जो व्यक्ति भक्ति पूर्वक केवल प्रदक्षिणा ही करता है, वह शिव-पूजक मानो सम्पूर्ण पूजा-कृत्य सम्पन्न कर लेता है ॥५॥

अथ कूर्म-चक्रादि निर्णयः। कूर्मचक्र-स्थापनावश्यकता — क्षेत्रमध्यं समाश्रित्य कूर्मचक्रं लिखितव्यम्। कूर्मचक्रमविलाप्य यः कुर्य्याज्जप यज्ञकम्। तज्जपस्य फलं नास्ति सर्वानर्थांश्च कल्पते ॥१॥ (इति यामले)॥ कूर्मस्थानं सुविलाप्य यो जपेदवधि स्थितः। स प्राप्नोति फलान्युक्ता न्यन्यथा नाशमेति च ॥२॥ (इति तन्त्रराजे)॥

टीका- अब 'यामल' के अनुसार 'कूर्म-चक्र' की आवश्यकता के विषय में बताते हैं —

क्षेत्र मध्य में 'कूर्म-चक्र' का विचार करें। 'कूर्म-चक्र' का ज्ञान प्राप्त किए बिना जो व्यक्ति जप अथवा यज्ञ करता है, उसका कोई फल नहीं मिलता। उसका किया हुआ सभी कर्म अनर्थ का कारण बन जाता है ॥१॥ 'तन्त्रराज' में कहा है — 'कूर्म-स्थिति' को जानने के बाद ही जो व्यक्ति सम्पूर्ण अवधि तक जप करता है, वह सभी पूर्वोक्त फलों को प्राप्त कराता है। इसके विपरीत चलने पर नष्ट हो जाता है ॥२॥

अथ कूर्मचक्र विवेचनम् — वर्तुलं नवकोष्ठं तत्कृत्वा कूर्माकृतिं लिखेत्।
स्वर युग्मं क्रमेणैव ऐन्द्र्याद्यष्टसु दिक्षु च ॥३॥ कादीन् वर्णान्लक्ष्मीशे मध्ये क्षेत्राधिपं यजेत्।
क्षेत्र नामाद्यवर्णस्तु यस्मिन्कोष्ठे स्थितो भवेत् ॥४॥ मुखं तु तस्य जानीयाद्दक्षावुभयतः स्थितौ।
कोष्ठे कुक्षि उभौ पादौ द्वौ शिरः पुच्छमीरितम् ॥५॥ मुखस्थो लभते सिद्धिं करस्थः स्वल्प जीवनः।
कुक्षि स्थिति रुदासीनः पादस्थो दुःखमाप्नुयात् ॥६॥ पुच्छस्थः पीड्यते मन्त्री बन्धनोच्चारनादिभिः।
कूर्मचक्रमिति प्रोक्तं मन्त्राणां सिद्धि साधनम् ॥७॥ नवधां तां धरां कृत्वा पूर्वादिषु समालिखेत्।
कोष्ठेषु सप्तवर्गांश्च लक्ष्मीमध्ये तथा स्वरान् ॥८॥ क्षेत्र नामादिमो वर्णो यत्र कोष्ठे भवेत्तनः।
उपविश्य जपं कुर्यान्नान्यस्मिन्दुःखदे स्थले ॥९॥

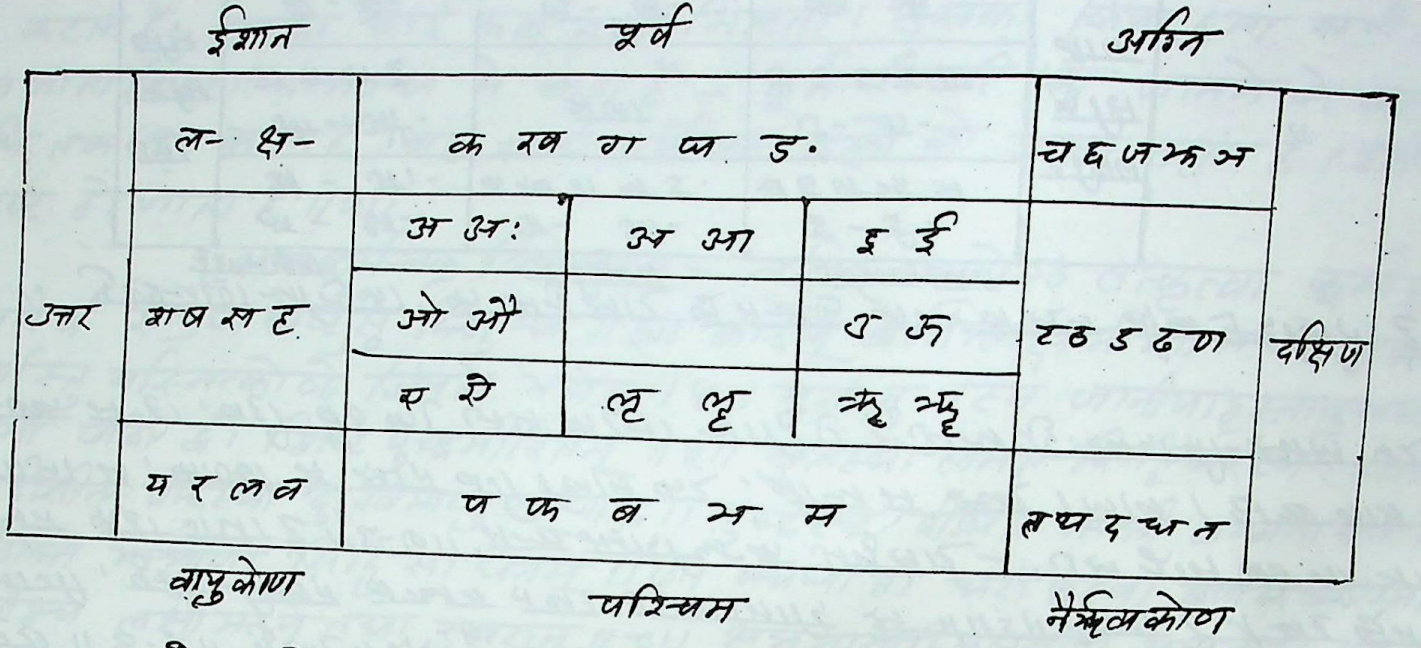
टीका - अब 'पुरश्चरण-चन्द्रिका' के अनुसार 'कूर्म-चक्र' के विषय में बताते हैं — एक नौ कोष्ठों (खानों अथवा कोठों) वाला वर्तुल (गोल घेरा) तथार कर के उसमें 'कूर्म' (कछुए) की आकृति बनायें। फिर ऐन्द्री आदि आठ दिशाओं में क्रमशः स्वर-युग्मों (दो-दो

स्वरों) को लिखें ॥३॥ ककारादि वर्णों को वैष्णवी दिशाओं में तथा क्षेत्राधिपति को मध्यभाग में रखना चाहिए। क्षेत्र के नाम का आदि-वर्ण जिस कोष्ठ में पड़े, उसमें कूर्म (कच्छप) का मुख तथा उसके दोनों ओर रखा जाने चाहिए। तदुपरान्त दोनों ओर कुक्षि तथा उसके नीचे दोनों ओर पाँव जानने चाहिए ॥ ४-५ ॥ मुखस्थ मन्त्री सिद्धि ज्यादा करता है; करस्थ अल्पायु, कुक्षि-स्थित उदासीन, पाद-स्थित दुःखभोगी, पुच्छ-स्थित बन्धन तथा उच्चाटनादि से पीड़ित होता है। यह कूर्मचक्र मंत्रों की सिद्धि का साधन कहा गया है ॥६-७॥ 'मन्त्र महोदधि' के अनुसार — 'उस भूमि को नौ भागों में बाँट कर सूर्यादि दिशाओं में, कोष्ठों में सात वर्ण लिख कर, बीच में स्वर लिखें। क्षेत्र नाम का आदि वर्ण जिस कोष्ठक में हो, वहीं बैठ कर जप करना चाहिए। अन्य दुःखदायी-स्थल पर नहीं बैठना चाहिए ॥ ८-९ ॥

'पुरश्चरण चन्द्रिका' के अनुसार कूर्मचक्र का स्वरूप नीचे प्रदर्शित है —

	दैत्यनभुजा	पूर्वमुख	अग्निभुजा	
उत्तर कुक्षि दक्षि	ल - क्ष - अं - अः -	अ - आ - क ख ग घ ङ.	इ - ई - च छ ज झ ञ	दक्षिण कुक्षि वाम
	ओ - औ - श ष स ह	त्रजा	उ - ऊ - ट ठ ड ढ ण	
	ऐ - ऐ - य र ल व	ऌ - ॡ - प फ ब भ म	ऋ ॠ त थ द ध न	

'मन्त्रमहोदधि' के अनुसार कूर्मचक्र का स्वरूप नीचे प्रदर्शित है—



देवस्थाने सुनिश्चित्य कूर्मचक्रं सुसिद्धिदम् । अष्टवर्गलिखेद्धीमान्मध्यतो यावदुत्तरम् ॥१०॥
लक्ष्मीप्रदे क्षेत्रे वेद्यास्तो नवकोष्ठके । हृदास्य भुजकट्यंघ्रिपुच्छे वर्गाः क्रमात्स्थिता ॥११॥ पादादि यदि संधानि तेषु क्षेत्राधिपा नव । अनंतो वृषभश्चैव शूलराजश्च वासुकिः ॥१२॥ अमरा अजरश्चैव पूज्य शक्तिः पुनस्तथा । पद्मयोनिर्महाशङ्खो ज्ञेयास्तत्तदनुक्रमात् । माध्यात्पूर्वादितः पूज्या मन्त्रमत्रैव वेद्यते ॥१३॥ (अपूर्ण)

कक्षपुटि के अनुसार - देवस्थान में उत्तम सिद्धि देने वाले 'कूर्म-चक्र' को बना कर, बुद्धिमान् व्यक्ति को चक्र के मध्यभाग में पूर्व से उत्तर दिशा तक, विष्णु देवता वाली दिशा में, वेदी के नवकोष्ठों में अष्टवर्ग को लिखना चाहिए ॥१०॥ हृदय, मुख, भुजा, कटि, पाँव तथा मूँछ में वर्ग-क्रम से लिखें ॥११॥ पाद आदि जो नाम हैं, उनमें नव क्षेत्राधिपति होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं— १. अमृत, २ वृषभ, ३ शूलराज, ४ वासुकि, ५ अमर, ६ अजर, ७ शक्तिपुत, ८ पद्मयोनि और ९ महाशङ्ख —इन्हें क्रम से जानना चाहिए। मध्य से पूर्वादि क्रम से ये पूज्य हैं। इसी जगह मन्त्र का उच्चारण किया जाता है ॥१२-१३॥

कक्षपुटि के अनुसार कूर्म-चक्र

ईशान	पूर्व	अग्नि	
दक्ष भुजा महाशङ्ख ल क्ष	मुख वृषभ क ख ग घ ङ	वामभुजा शूलराज च छ ज झ ञ	
दक्षिण कटि पद्मयोनि व ब स ह	हृदय अमृत अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ ऌ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः	वाम कटि वासुकि ट ठ ड ढ ण	दक्षिण
दक्षांघ्रि पूज्य य र ल व	पुच्छ अजर प फ ब भ म	वामांघ्रि पूज्य अमर त थ द ध न	
उत्तर			
वायव्य	पश्चिम	नैर्ऋत्यकोण	

मन्त्र निम्नानुसार है—

"ॐ अमुक क्षेत्रपाल देवीपुत्रावतारावतार बलिं पिशितं गृह्ण गृह्ण रवल रवल सर्व विघ्नान् दह दह स्वाहा। वि०

अनेन मन्त्रेण अमृतादयः सर्वे क्षेत्रपालाः पूज्याः स्वस्या स्थान भूम्यां यः क्षेत्रपालः तस्योद्देशेन तन्नाम्ना बलिर्देयः ॥१४॥ यत्र यत्र भवेद्वर्गे क्षेत्रनामाक्षरम्। तन्मुखं शेष वर्गेषु करकुक्षिंघ्रि कल्पना ॥१५॥

टीका— उक्त मन्त्र द्वारा अमृत आदि सभी

क्षेत्रपाल भजनीय हैं। अपनी भूमि में जो क्षेत्रपाल स्थान हो, उसके उद्देश्य से तथा उसके नाम से बलि देनी चाहिए ॥ १४॥ जिस-जिस वर्ग में क्षेत्रपाल के नाम का आदि-अक्षर हो, उसके सम्मुख शेष वर्णों में हाथ, कुक्षि तथा पाँव आदि की कल्पना करनी चाहिए ॥ १५॥

मुखस्थः क्षोभयेत्सन्त्री करस्थः स्वल्प भोगभाक्। कुक्षिस्थो ह्युदासीनः पादस्थो दुःखमाप्नुयात् ॥ १६॥ पुच्छस्थो वधबन्धं च जपादाप्नोति निश्चितम्। दीपस्थानं ततः क्षेत्रे ज्ञात्वा मन्त्रान् शुचिर्जपेत् ॥ १७॥

टीका - जप के समय कूर्म-चक्र के मुख पर बैठा हुआ साधक सबको क्षुब्ध कर देता अर्थात् हिला देता है। हाथ पर बैठा हुआ स्वल्प भोग प्राप्त करता है। कुक्षि पर बैठा हुआ उदासीन होता है तथा पाँव पर बैठा हुआ दुःख पाता है ॥ १६॥ पूँछ पर बैठा हुआ वध तथा बन्धन प्राप्त करता है। अतः क्षेत्र में दीप का स्थान जान कर, पवित्रता पूर्वक मन्त्र-जप करना चाहिए ॥ १७॥

अथ दीपस्थाने कूर्मविशेषः - क्षेत्राधिपस्य नाम्नादि दीपस्थानं विचारयेत्। मुखं च नवधा कृत्वा स्वर वर्णादिकं लिखेत् ॥ १॥ साध्यनामादिमो वर्णो यत्र कोष्ठे भवेत्सदि अथ वा कूर्म कोष्ठेषु यत्र नामाक्षरं भवेत् ॥ २॥ दीपस्थानं हि तज्ज्ञेयं तत्र स्थित्वा मनुं जपेत्। क्षेत्र साधक मन्त्राणामेकमेवाधमक्षरम्। यदि स्यात्स ध्रुवो मन्त्रः शिघ्रमेव सुसिध्यति ॥ ३॥ कूर्मस्थितिं सुविज्ञाय यो जपेदवधिस्थितिः। स प्राप्नोति फलान्युक्तान्यन्यथा नाप्नुयादिह ॥ ४॥ इति तन्त्रान्तरे

तं. ६५ म.

टीका - अब दीप-स्थान में कूर्म विशेष के विषय में बताते हैं - 'क्षेत्र पति के नाम से दीप-स्थान का विचार करे। मुख के नौ भाग करके वहाँ स्वर-वर्णादि को लिखना चाहिए ॥१॥ साध्य-वस्तु के नाम का आदि वर्ण जिस कोष्ठ में हो अथवा कूर्म-कोष्ठ में जहाँ नाम का अक्षर हो, वही दीप-स्थान होता है ॥२॥ दीप-स्थान को जान कर, वहीं बैठ कर मन्त्र का जप करना चाहिए। क्षेत्र-साधक मन्त्रों में से किसी एक का आदि अक्षर यदि वहाँ हो तो मंत्र अवश्य ही सिद्ध हो जाता है ॥३॥ 'तन्त्रराज' के अनुसार - 'कूर्म-स्थिति को जानकर जो साधक निश्चित अवधि तक जप करता है, वह उक्त फलों को प्राप्त करता है, अन्यथा नष्ट हो जाता है' ॥४॥ 'यामल' के अनुसार - 'जो साधक कूर्म-चक्र को जाने बिना ही जप अथवा पाठ करता है, वह उसका फल प्राप्त नहीं कर पाता, अपितु सभी अनर्थों की उपलब्धि होती है ॥५॥

कुरुक्षेत्रे प्रयागे च गङ्गासागर सङ्गमे। महाकाले च काञ्च्यां च कूर्म स्थानं न चिन्तयेत् ॥६॥ (इति देवीयामले)॥ पर्वते सिन्धु तीरे वा पुण्यारण्ये नदी तटे। यदि कुर्यात्पुरश्चर्यां तत्र कूर्मं न चिन्तयेत् ॥७॥ ग्रामे वा यदि वा सौधे वा गृहे तं च विचिन्तयेत्॥ (इति गौतमीये) काशीपुरी च केदारो महाकालोथ नासिकम्। त्र्यम्बकं च महाक्षेत्रं पञ्चद्वीपा इमे स्मृताः ॥८॥ (इति विश्वामित्र कल्पे)॥

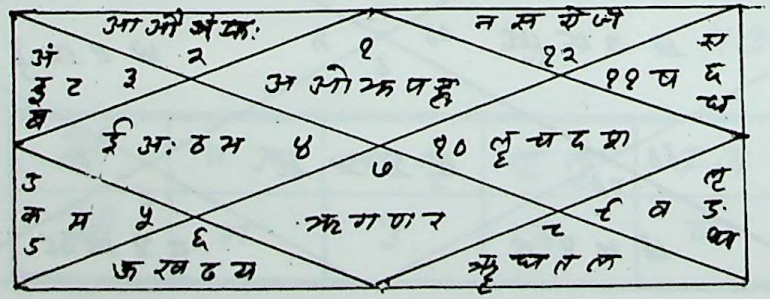
टीका - 'देवीयामल' में कहा है - 'कुरुक्षेत्र, प्रयाग, गङ्गा-सागर का संगम स्थल, महाकाल (उज्जैन में) तथा काशी में कूर्म-चक्र का विचार नहीं करना चाहिए।' गौतमीय-तन्त्र-

नुसार - ' पर्वत, समुद्र-तट, पुण्यारण्य अथवा नदी-तट पर यदि पुरश्चरण किया जाय तो कूर्म-चक्र का विचार नहीं करना चाहिए। ग्राम, बस्ती अथवा घर में कूर्म-चक्र का विचार करना आवश्यक होता है ॥६-८॥ 'विश्वासिनी कल्प' में कहा गया है - ' काशीपुरी, केदार, महाकाल (उज्जैन), नासिक तथा त्र्यम्बक - ये पाँच 'महाक्षेत्र' हैं, जहाँ कूर्म-चक्र के विचार की आवश्यकता नहीं होती ॥८॥

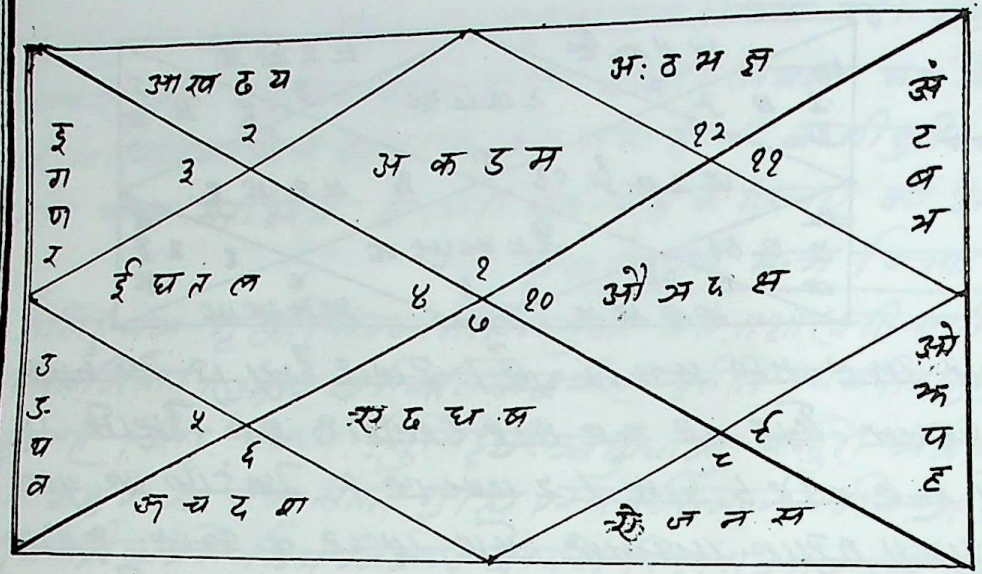
अथ सिद्धादि मन्त्र विचार: - ऋणासिद्धादि योगेषु मन्त्रे दाने विशेषत: । प्रसिद्धं नाम गृह्णीयाज्जागर्ति मनुजो यत: ॥१॥ (इति मालिनी विजये) ॥ द्वादशारे तथा चंक्रे कूटघान्त-विवर्जितान् । आद्यन्तान्विलिखेद्वर्णान् पूर्वतो यावदीश्वर: ॥२॥ अङ्कानेकादिभान्तानां लिखेत्पूर्वादित: क्रमात् । सिद्ध: साध्य: सुसिद्धोरिश्चतुर्धा तु स्मृतो भवेत् ॥३॥ मन्त्र साधकयोर्याद्यो वर्ण: स्याद्यत्र कोष्ठक: । स एव सततं ग्राह्य: स्ववर्णान्मन्त्रवर्णत: ॥४॥ नवैक पञ्चमे सिद्ध: साध्य: षड्दशयुग्मके । त्रिसप्तैकादशे मित्रं वेदाष्ट द्वादशे रिपु: ॥५॥ (इति सिद्धादि चक्रं मालिनी विजये) ॥ नाम्नो मन्त्रस्य वर्णैर्यं चतुर्धा विभजेत् सुधी: । एकादि शेषे सिद्धादि क्रमाज्ज्ञेयं विचक्षणै: ॥६॥ सिद्ध: सिध्यति कालेन साध्यस्तु जप होमत: । सुसिद्ध: प्राप्ति मात्रेण साधकं भक्षयेदरि: ॥७॥ (इति मन्त्र महोदधौ) ॥

टीका - अब सिद्धादि मन्त्र का विचार कहते हैं 'मालिनी विजय' तन्त्र के अनुसार - ' ऋण-सिद्धादि योगों में, विशेष कर मन्त्र-दान में 'प्रसिद्ध-नाम' को ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सुन कर मन्त्री (साधक) जग जाता है अर्थात् सोते समय जिस नाम को लेकर पुकारने से सोया हुआ

में विचार करना चाहिए ॥१॥ अब 'मालिनी विजय' के अनुसार सिद्धादि चक्र की विधि बताते हैं— 'बारह कोठों वाले चक्र को बनाकर, उनमें सूर प्राणों को छोड़कर आदि तथा अन्त के वर्णों को ईशकर (देवता) तक लिखें ॥२॥ एक से लेकर बारह अङ्कों को पूर्वादि क्रम से लिखना चाहिए, ताकि सिद्ध, साध्य, सुसिद्ध और अरि— ये चार प्रकार प्रकट हो सकें ॥३॥ जिस कोष्ठ में मन्त्र और साधक का आदि-वर्ण हो, सर्वदा उसे ही मन्त्रवर्ण से स्ववर्ण तक ग्रहण करना चाहिए ॥४॥ नौ, एक व पाँच में 'सिद्ध'; छः तथा दश युग्मों में 'साध्य'; तीन, सात तथा ग्यारह में 'मित्र' एवं चार, आठ तथा बारहवें कोष्ठ में हो तो 'शत्रु' समझना चाहिए ॥५॥ 'मन्त्र महोदधि' में कहा है— 'नाम तथा मन्त्र के वर्णों को जोड़कर ४ का भाग दे। यदि १ शेष बचे तो 'सिद्ध', २ शेष बचें तो 'साध्य', ३ शेष बचें तो 'सुसिद्ध' एवं ४ (शून्य) शेष बचे तो 'शत्रु' समझना चाहिए ॥६॥ 'सिद्ध' मन्त्र अपने निर्धारित-समय पर ही सिद्ध होता है। 'साध्य' मन्त्र जप तथा होम से सिद्ध होता है। 'सुसिद्ध' मन्त्र दीक्षा-आदि-मात्र से ही सिद्ध हो जाता है तथा 'अरि' मन्त्र साधक को खा जाता है ॥७॥



← सिद्धादि योग विजयक मालिनी विजय मन्त्र का अ क ड म चक्र



(शुद्ध अकडम चक्रम्)

← स्निग्धादि योग सम्बन्धी शुद्ध अ क ड म चक्र

अथ अरि-मन्त्र विचार- मन्त्राक्षरेण मन्त्रं च दीपनाम्नोर्भवेद्यदि। साधकस्य च नाम्नार्थं किं न सिद्ध्यन्ति मन्त्रिणः ॥ १॥ तस्माच्चक्रं विचार्यैव मित्रं चेत्सर्वसिद्धिदम्। अरित्वमृद्धयस्थे ह ग कारेण परस्परम् ॥ २॥ ॠद्धयस्य ठकारेण ठकारस्य च ॠद्धयम्। ऌद्धयस्य फकारेण फकारस्य च ऌद्धयम् ॥३॥ ऊद्धयस्य षकारेण षकारस्योयुगेन तु। ञकारस्य टकारेण ॡकारस्य रकारतः ॥४॥ ऽकारस्य लकारेण ॡकारस्य चकारतः। ॡकारस्य च रेफेण ळकारस्य सकारतः। अरित्वमेकं वर्णानामन्येकं मित्रमाकलय ॥५॥

ॐ नं. म.

टीका- अब 'अरि-मन्त्र' का विचार कहते हैं। 'समयाचार तन्त्र' के अनुसार- मन्त्राक्षर से दीप का नाम तथा मन्त्र-साधक का नाम भी हो तो मन्त्र-साधक को क्या सिद्धि नहीं होता? अर्थात् सिद्धि प्राप्त होती है॥ १॥ अतः चक्र का विचार करने के बाद ही मित्र-मन्त्र सब सिद्धियों का दाता होता है। दोनों 'अ' कारों की (अ, आ) 'ग' के साथ शत्रुता है॥ २॥ दोनों 'ऋ' कारों (ऋ, ॠ) 'ठ' कार के साथ तथा 'ढ' कार की दोनों 'ॠ' कारों के साथ शत्रुता है। दोनों 'ऌ' (ऌ, ॡ) कारों की 'ण' कार के साथ तथा 'प' कार की 'ॡ' कारों के साथ शत्रुता है॥ ३॥ दोनों 'उ' (उ, ऊ) कारों की 'ब' कार के साथ तथा 'ष' कार की दोनों 'ऊ' कारों के साथ शत्रुता है। 'ञ' कार की 'ट' कार के साथ तथा 'ऌ' कार की 'ख' कार के साथ शत्रुता है॥ ४॥ 'ऊ' कार की 'त' कार के साथ, 'क' कार की 'च' कार के साथ, 'फ' कार की 'र' कार के साथ तथा 'क' कार की 'स' कार के साथ भी शत्रुता है। शेष अन्य सभी वर्णों में परस्पर मित्रता कही गई है॥ ५॥

॥ अरि-मन्त्र चक्रम् ॥

वैरी	अ आ	ऋ ॠ	ऌ ॡ	उ ऊ	ञ	ऐ	ऊ	क	फ	फ
वैरी	ग	ठ	ण	ष	ट	ख	त	च	र	स

अरिमन्त्रो गृहीतश्चेद्दानवशात्तदा । तस्य त्यागः प्रकर्तव्यस्तत्प्रकारो
धुनोच्यते ॥६॥ शुदिने स्थापयेत्कुम्भं सर्वतोभद्रमण्डले । विलोमञ्चजपेन्मन्त्रं पूरयेत्तन्तु पायसा ॥७॥
तत्र देवं समावाह्य जपेदावरणार्चितः । तदग्रे स्थण्डिलं कृत्वा प्रतिष्ठाप्यानलं ततः ॥८॥ जुहुयान्मूलमं-
त्रेण विलोमेन घृतं घृतैः । दिव्यादिभ्यो बलिं दद्यात्पायसान्नैर्घृतान्वितैः ॥९॥ पुनः सम्पूज्य देवेशं प्रार्थ-
येन्मनुनामुना :-

"अनुकूलमनालोच्य मया तरल बुद्धिना ॥१०॥ यदुपात्तं प्रजप्तं च प्रभो मन्त्रस्य
रूपकम् । तेन मे मनसः क्षोभमशेषं विनिवर्तय ॥११॥ पूजनं प्रत्महं वा तु भूयाच्छ्रेयः सनातनम् ।
तनोतु मम कल्याणं पावनी भक्तिरस्तु मे ॥१२॥"

एवं सम्प्रार्थ्य देवेशं कर्पूरागुरु चन्दनैः । विलोमं विलिखेन्मन्त्रं ताडपत्रे तद-
र्चयेत् ॥१३॥ प्रबध्य तु निजे मूर्धिन स्नायात्कुम्भस्थितैर्जलैः । पुनः सम्पूर्य तत्तोयैर्न पश्येन्मन्त्रपत्र-
कम् ॥१४॥ सम्पूज्य कुंभ सहितं तडागे वा विनिःक्षिपेत् । विप्रात्सम्भोज्य मुच्येत पीडयासौ च
मानवः ॥१५॥

टीका- 'मालिनी विजय' के अनुसार- 'यदि अज्ञान-वश अरि-मन्त्र ले लिया
गया हो तो उसका त्याग कर देना चाहिए। त्याग करने की विधि इस प्रकार है- 'शुभ दिन में 'सर्वतो-
भद्रमण्डल में एक कुम्भ की स्थापना करे। फिर विलोम-मन्त्र का जप करके उस कुंभ

स्थण्डिल बनाकर, उस पर अग्नि स्थापित करे। फिर, विलोम मूल-मन्त्र द्वारा घृत से सौबार होम करे अर्थात् उस अग्नि में घृत से एक सौ आहुतियाँ दे एवं दिक्पालों को बलि देकर, घृत सहित खीर से बलि प्रदान करे। फिर, पूजा के समय निम्नलिखित मन्त्र द्वारा देवेश से प्रार्थना करे। (प्रार्थना का मन्त्र ऊपर संस्कृत में लिखा है - "अनुकूल मनालोच्य मया तरल दृष्टिता" से प्रारम्भ कर, "पावनी-भवित्त वस्तु मे" तक)॥ ८-१२॥ इस प्रकार देवेश से प्रार्थना करके कपूर, अगर तथा चन्दन द्वारा ताड़पत्र के ऊपर विलोम-मन्त्र लिख कर, उस का पूजन करे। फिर उसे अपने सिर पर बाँधकर, घड़े में भरे हुए जल से स्नान करे। तत्पश्चात् पुनः जल से घड़े को भर कर, मन्त्र-पत्रकों को न देखे, या फिर कुम्भ सहित पूजा करके उसे किसी तालाब में फेंक दे। तत्पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन कराये तो मनुष्य ऋरि-मन्त्र की पीड़ा से बच सकता है॥ १३-१५॥

अथ ऋणधनबोधनम् - नामाक्षरं मारस्य यावन्मन्त्रादिवर्णकम् । कृत्वा स्वरे बुधो भिन्नात्तदन्यद्विपरीतकम् ॥१॥ कृत्वाधिको मन्त्रवर्णं ऋणी चेन्मन्त्रमुत्तमम् । स्वयं ऋणी च तन्मन्त्रं त्यजेत्पूर्वं ऋणी यतः ॥२॥ (इति मालिनी विजये)॥ मन्त्रसाधक नामार्णः साधकस्य तथैव च। अष्टभिस्तु हरेद्भागं शेषैर्ऋणधनं भवेत् ॥३॥ (इति प्रकारान्तरे)॥

येषां मनुर्ना सिद्धादिबोधनं नास्ति तान्प्रबे॥ एकवर्णस्त्रिवर्णो वा पञ्चार्णो रसवर्णकः॥४ सप्तार्णो नववर्णश्च रुद्रार्णो रदनाक्षरः। अष्टार्णो हंसमन्त्रश्च कूटो वेदोदितो ध्रुवम् ॥५॥ स्वप्नलब्धः स्त्रियो प्राप्तो माला मन्त्रो हरेस्तथा (पुत्रदो रविमन्त्रश्च वाराहो मातृकाः परा ॥६॥ त्रिपुरा

कामसन्त्रसुआल्हासिद्धिःपक्षिनायक: / बौद्धमन्त्रा जैन मन्त्रा नैव सिद्धादि शोधनम् / एतद्भिन्नेषु मन्त्रेषु शुद्धिरावश्यकी मता ॥७॥ नपुंसकस्य मन्त्रस्य सिद्धादीन्नैव शोधयेत् ॥८॥ (इति सिद्ध सारस्वते:)॥

टीका - अब मन्त्रों के ऋण-धन शोधन के विषय में बताते हैं। मालिनी विजय तन्त्र' में कहा गया है- 'नाम के आदि-अक्षर से आरंभ करके, जब तक मन्त्र का आदि वर्ण न आजाय, तबतक बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह विपरीत स्वरों से भेदन करे ॥१॥ मन्त्र-वर्ण अधिक होंगे मन्त्र 'ऋणी' होता है। ऐसे मन्त्र को शुद्ध-ऋणी होने के कारण छोड़ देना चाहिए ॥२॥ उल्कातन्त्र से कहा गया है— 'साधक के नाम तथा मन्त्र के वर्णों को जोड़ करे, उनमें ८ का भाग दे तथा जो शेष बचे उससे ऋण-धन का ज्ञान साधक करे। अशुद्धि के बिना जप के लिए अपुक्त ऐसे मन्त्रों के विजय में बताया जाता है, जिनका 'सिद्धादि-शोधन' नहीं होता। एक वर्ण वाले, तीन वर्ण वाले, पाँच वर्ण छः वर्ण, सात वर्ण, नव वर्ण, बारह वर्ण, बत्तीस वर्ण अथवा आठ वर्ण वाले 'हंस मन्त्र' को वेदों में निश्चित रूप से 'कूट' कहा गया है / स्वप्न में अथवा किसी स्त्री द्वारा बताया माला-मन्त्र, नृकेसरी (नृसिंह मन्त्र), प्रसाद, सूर्य-मन्त्र, वाराह, मातृका, त्रिपुरा, काम मन्त्र, आल्हा सिद्धि, पक्षि-नायक (गरुड़-मन्त्र, बौद्ध मन्त्र तथा जैन मन्त्र- इनमें सिद्धादि-शोधन की आवश्यकता नहीं पड़ती। विशेष रूप से इनके अतिरिक्त जो मन्त्र हैं, उन्हीं के लिए 'शोधन' कर्तव्य है ॥ ३-८ ॥ 'सिद्ध सारस्वत' ग्रंथ में कहा गया है— 'नपुंसक मन्त्र का सिद्धादि शोधन नहीं करना चाहिए ॥९॥

अथ मन्त्र-भेदा: / तत्रादौ शास्त्रसंमत मन्त्र विवेचनम् / रवि-मनि पाणिनी

म.

सा च प्रशस्ता कलौ युगे। विष्णो सहस्र नामाख्यं स्तोत्रं पाप प्रणाशनम् ॥ १॥ गजेन्द्र मोक्षणं चैव तथा कारुण्यकः स्तवः। नारसिंहं तथा स्तोत्रं स्तोत्र श्रीराम संज्ञकम् ॥२॥ देव्याः सप्तशती स्तोत्रं तथा नाम सहस्रकम्। श्लोकाष्टकं नील कण्ठं शैवनाम सहस्रकम् ॥३॥ त्रिपुराधाः प्रसादाख्यं सूर्यस्य स्तव राजकम्। पैङ्गो रुचिस्तवो यश्च इन्द्राक्षी स्तोत्र मेव च ॥४॥ वैष्णवं च महालक्ष्म्याः स्तोत्र मिन्द्रेण भाषितम्। मार्गाख्येन रामेण प्रोक्तान्यन्यानि कारणात् ॥५॥ अथ कलिसिद्धि प्रदा मन्त्राः। सिद्धि प्रदा कलियुगे ये मन्त्रास्तान्ववाम्यतः। त्र्यणं एकाक्षरो ऽनुष्टुप् त्रिविधो नर केसरी ॥६॥ एकाक्षरोर्जुनो नुष्टुब् द्विविधस्तुरगानतः। चिन्तामणिः क्षेत्रपालो भैरवो यक्ष नायकः ॥७॥ गोपालो गजवक्त्रश्च चेटका यक्षिणी तथा। मातङ्गी सुन्दरी श्यामा तारा कर्णपिशाचिनी ॥८॥ द्वाक्षर्येक जटा वामा काली नीलसरस्वती ॥ त्रिपुरा कालरात्रिश्च कलाविष्ट प्रदा इमे ॥९॥

टीका — अब मन्त्रों के भेदों का वर्णन करते हैं। सर्व प्रथम शाप-रहित मन्त्रों के विषय में बताते हैं। भीष्म-पर्व में वर्णित 'गीता' कलियुग में 'प्रशस्त' कही गई है। 'विष्णु सहस्रनाम' स्तोत्र पाप-नाशक है ॥१॥ 'गजेन्द्र मोक्ष'; 'कारुण्यक-स्तव'; 'नृसिंह स्तोत्र'; 'श्रीराम स्तोत्र', दुर्गा सप्तशती स्तोत्र तथा सहस्रनाम स्तोत्र, श्लोकाष्टक, नीलकण्ठ स्तोत्र, शिव सहस्रनाम ॥२-३॥ त्रिपुरा प्रसाद स्तोत्र, सूर्यस्तवराज, पैङ्गरुचि स्तोत्र, इन्द्राक्षी स्तोत्र ॥४॥ विष्णु स्तोत्र एवं महालक्ष्मी स्तोत्र, जिसे इन्द्र ने कहा है, - ये सभी शाप-रहित हैं। इनके अतिरिक्त अन्य मन्त्र विभिन्न कारणों से परशुराम द्वारा अभिशप्त हैं ॥५॥ अब 'मन्त्र सारोदधि' के अनुसार कलियुग में सिद्धि-

दायक मन्त्रों का उल्लेख किया जाता है:- कलियुग में जो मन्त्र सिद्धि-दायक हैं, उन्हें बताते हैं- नृसिंह का त्र्यक्षर, एकाक्षर एवं अनुष्टुप् - ये तीनों मन्त्र ॥६॥ एकाक्षर तथा अनुष्टुप् - ये दो प्रकार के अर्जुन (कार्तवीर्यार्जुन) मन्त्र, दो प्रकार के हयग्रीव मन्त्र; चिन्तामणि, क्षेत्रपाल, भैरव तथा यक्षराज मन्त्र ॥७॥ गोपाल, गणपति, चेटका यक्षिणी, मातङ्गी, सुन्दरी, श्यामा, तारा, कर्णपिशाचिनी ॥८॥ शबरी, एकजटा, वामा काली, नीलसरस्वती, त्रिपुरा और कालरात्रि - ये सभी मन्त्र कलियुग में अभीष्ट दायक हैं ॥९॥

अथ त्रिवर्णोपयोगी मन्त्राः ॥ अघोरा दक्षिणामूर्तिरुमा माहेश्वरो मनुः हयग्रीवो वराहश्च लक्ष्मीनारायणस्तथा ॥१०॥ प्रणवाद्याश्चतुर्वर्णा वह्नेर्मन्त्रास्तथा रवेः। प्रणवाद्यो गणपतिर्हरिद्रागणनायकः ॥११॥ सौराष्ट्रक्षरमन्त्रश्च तथा रामषडक्षरः। मन्त्रराजो ध्रुवादिश्च प्रणवो वैदिको मनुः ॥१२॥ वर्णत्रयाय दातव्या एते शूद्राय नो बुधैः। सुदर्शनं श्यामुपत्माग्नेयास्त्रं नृकेसरी। वर्णद्वयाय दातव्या नान्यवर्णं कदाचन ॥१३॥ छिन्नमस्ता च मातङ्गी त्रिपुरा कालिका छिन्नः। लघुश्यामा कालरात्रि गोपालो जानकीपतिः ॥१४॥ उग्रतारा भैरवश्च देया वर्णचतुष्टये, दृगीदृशां विशेषेण मन्त्रा ये ते सुसिद्धिदा ॥१५॥ ब्राह्मणा क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा नार्योधिकारिणः। प्रह्लादनो देवगुरुद्विजपूजासु सर्वदा ॥१६॥ माया कामं श्रियं वाचं प्रदद्यान्मुखजन्मने। माया भृगे बाहुजेभ्यः ऊरुजेभ्यः श्रियं गिरम् ॥१७॥ वाणी बीजं तु शूद्रेभ्यो न्येभ्यो वर्म वषण्तमः ॥१८॥

टीका - अब त्रिवर्णोपयोगी मन्त्रों के विषय में कहते हैं। अघोर मन्त्र,

दक्षिणामूर्ति, उमामहेश्वर, हयग्रीव, वराह, लक्ष्मीनारायण ॥ १०॥ प्रणवादि चार वर्ण वाले अग्नि के मन्त्र, सूर्य-मन्त्र, प्रणव युक्त गणपति मन्त्र, हरिद्रागणपति मन्त्र ॥ ११॥ अष्टाक्षर सूर्यमन्त्र, षडक्षर राम मन्त्र, प्रणवादि मन्त्रराज (त्रिपुरा मन्त्र), प्रणव तथा वैदिक-मन्त्र — ये सब मन्त्र तीनों वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) को देने चाहिए, परन्तु शूद्र को न दें। सुदर्शन मन्त्र, पाशुपत, आग्नेयास्त्र तथा नृकेसरी — इन्हें ब्राह्मण तथा क्षत्रिय — इन दो वर्णों को ही देना चाहिए, अन्य वर्णों को न दें ॥ १२-१३॥ छिन्नमस्ता, मातङ्गी, त्रिपुरा, कालिका, शिव, लघुश्यामा, कालरात्रि, गोपाल, राम-मन्त्र, उग्रतारा तथा भैरव — ये मन्त्र सभी — चारों वर्णों को देने चाहिए। विशेषकर स्त्रियों के लिए ये मन्त्र विशेष सिद्धिदायक हैं ॥ १४-१५॥ ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र तथा स्त्री — इन सब वर्णों के श्रद्धालुओं को देवता, गुरु तथा ब्राह्मणों की पूजा का अधिकारी माना गया है ॥१६॥ माया बीज (ह्रीं), काम बीज (क्लीं), श्री बीज (श्रीं) तथा वाक् बीज (ऐं) — ये सब ब्राह्मणों को देने चाहिए। माया बीज (ह्रीं) के अतिरिक्त अन्य तीनों बीज क्षत्रियों को; 'श्रीं' तथा वाक् बीज (ऐं) वैश्यों को तथा केवल वाक् बीज (ऐं) शूद्रों को देना चाहिए। वर्म (हुं), वषट् तथा नम: — ये बीज अन्यों को देने चाहिए ॥ १६-१८॥

दासस्य शिवभक्तस्य दिनद्विजकरस्य च। शूद्रस्यापि प्रदातव्यं नमोन्तं प्रणवं विना ॥ १९॥ विनाऽपि प्रणवं मन्त्रः स्त्री शूद्राणां प्रकीर्तितः। प्रणवेन समायुक्ता सन्मन्त्रस्य विशोधना: ॥ २०॥ (शतिकुलार्णवे)॥ स्वाहा प्रणव संयुक्तं मन्त्रं शूद्रे ददेद्विजः। शूद्राश्चाण्डाल

-तामेति विप्रः शूद्रत्वमेव हि ॥२१॥ (इति आगमे) ॥ मन्त्राणां लिङ्गादि विचारः ॥ पुन्मन्त्रा हुंफडन्ताः स्युर्ठिठान्तास्तु स्त्रियो मताः। नपुंसका नमोन्ताः स्युरित्युक्ता मनवस्त्रिधा ॥ २२ ॥ (इति भागदा तिलके) ॥ पुंस्त्रीनपुंसकाः प्रोक्ता मनवस्त्रिविधा बुधैः। वषडन्ता फडन्ताश्च पुंमांसो मनवः स्मृताः ॥ २३ ॥ वौषट् स्वाहान्तगानार्घी हूं नमोन्ता नपुंसकाः। वश्योच्चाटन रोधेषु पुमांसः सिद्धिदायकाः ॥ २४ ॥ क्षुद्र कर्म रुजां नाशे स्त्रीमन्त्राः शीघ्र सिद्धिदाः। अभिचारे स्मृतः क्लीबा एवं ते मनवस्त्रिधा ॥ २५ ॥ (इति मन्त्र महोदधौ:) ॥ प्रणवाक्षरैरेफ हकार प्राणा मन्त्राः आग्नेयाः। इद्रामृताक्षराणाप्या मन्त्राः सौम्या सूर्ये वदन्ति (इति ग्रंथान्तरे) आग्नेयानां प्रबोधकाल श्चन्द्र सौम्यानाम्। स्वप्रबोधकाले मन्त्रग्रहणे जपे च क्षते तात्कालिकसिद्धिः स्यादेवेति ॥ २६ ॥ अथ बीज मन्त्रादि प्रकारः ॥ बीजमन्त्रास्तथा मन्त्रा मालामन्त्रास्तथापरे। त्रिधा मन्त्रगणः प्रोक्ता बुधैरागमवेदिभिः ॥ २७ ॥ बीज मन्त्रा दशार्णान्तास्ततो मन्त्रा नखावधिः। विंशत्यधिकवर्णा ये मालामन्त्रास्तु ते स्मृताः ॥ २८ ॥ बाल्ये वयसि सिद्ध्यन्ति बीजमन्त्रा उपासितुम्। मन्त्राः सिद्धा यौवने तु मालामन्त्राश्च वार्द्धके ॥ २९ ॥ उक्तान्यस्यामवस्थायामभीष्ट प्राप्तये सुधीः। बीज मन्त्रादि मन्त्राणां द्विगुणं जप माचरेत् ॥ ३० ॥ (इति मन्त्र महोदधौ:) ॥ शुक्लवीर्यश्च ये मन्त्राः न दास्यन्ति फलं प्रिये। मन्त्राश्चैतन्य रहिता मन्त्रा प्रोक्ता वर्णास्तु केवलाः। फलं नैव प्रयच्छन्ति लक्ष कोटि जपादपि ॥ ३२ ॥ (इति शिव तन्त्रे) ॥

शिवभक्त शूद्र को भी प्रणव-रहित 'नमः' अन्तवाले मन्त्र को देना चाहिए ॥१९॥ प्रणव-रहित मन्त्र स्त्रियों तथा शूद्रों के लिए कहा गया है। प्रणव-युक्त मन्त्र उनके लिए विष-तुल्य हो जाते हैं ॥२०॥ 'आगम' में कहा है— जो द्विज 'स्वाहा' तथा 'प्रणव' से युक्त मन्त्र शूद्र को देता है, वह स्वयं भी शूद्र हो जाता है और यदि शूद्र ऐसा करे तो वह चाण्डाल हो जाता है ॥२१॥ अब मन्त्रों के स्त्री-नपुंसकादि लिङ्ग के विषय में बताते हैं। 'ज्ञानदा तिलक' में कहा गया है— "जिन मन्त्रों के अन्त में 'हुं फट्' लगा हो, वे 'पुल्लिङ्ग' होते हैं। जिनके अन्त में दो 'ठ' (ठः ठः) लगे हों, वे 'स्त्री लिङ्ग' होते हैं तथा जिनके अन्त में 'नमः' लगा हो, वे नपुंसक' होते हैं— इस प्रकार मन्त्र तीन तरह के होते हैं ॥२२॥ 'मन्त्र महोदधि' में कहा गया है— 'विद्वानों ने मन्त्रों के पुल्लिङ्ग, स्त्रीलिङ्ग तथा नपुंसक लिङ्ग— ये तीन प्रकार कहे हैं। जिन मन्त्रों के अन्त में 'वषट्' तथा 'फट्' लगे होते हैं, वे 'पुल्लिंग' कहे जाते हैं। जिनके अन्त में 'वौषट्' तथा 'स्वाहा' लगे हों, उन्हें 'स्त्री लिङ्ग' कहते हैं। जिनके अन्त में 'हुं' तथा 'नमः' लगे हों, उन्हें 'नपुंसक' कहा जाता है ॥ वशीकरण तथा उच्चाटन में पुल्लिङ्ग-मन्त्र सिद्धि दायक होते हैं। क्षुद्र-कर्म तथा रोग-विनाश में 'स्त्री-मन्त्र' शीघ्र सिद्धि देते हैं तथा अभिचार-कर्म में नपुंसक-मन्त्र श्रेष्ठ रहते हैं। इस प्रकार से मन्त्र तीन तरह के होते हैं ॥ २३-२४॥ अन्य ग्रंथों में अग्नि तथा चन्द्रमा से सम्बन्धित मन्त्रों का उल्लेख इस प्रकार पाया जाता है— 'जिन मन्त्रों में प्रणव, अक्षर, रेफ तथा टकार अधिक होते हैं, उन्हें 'आग्नेय' कहा जाता है तथा जिन मन्त्रों में इन्दु तथा अमृत अक्षर अधिक रहते हैं, वे 'सौम्य' होते हैं तथा

चन्द्र-मन्त्र' कहे जाते हैं। आग्नेय मन्त्र सूर्योदय के समय तथा सौम्य-मन्त्र चन्द्रोदय के समय जाग्रत् होते हैं। अपने प्रबोध-काल अर्थात् जागृतावस्था में मन्त्र ग्रहण करने अथवा जपने से तत्काल सिद्धि मिलती है ॥२७॥ 'मन्त्र महोदधि' में बीज मन्त्र आदि की विधि इस प्रकार कही गई है— "शास्त्रों के ज्ञाताओं ने बीज-मन्त्र, मन्त्र तथा माला-मन्त्र — मन्त्रों के ये तीन प्रकार बताये हैं ॥२७॥ बीज-मन्त्र दस वर्णों तक के होते हैं। छः से बीस वर्णों वाले 'मन्त्र' कहे जाते हैं। बीस से अधिक वर्ण वालों को 'माला मन्त्र' कहा जाता है ॥२८॥ बालावस्था में बीज-मन्त्र, युवावस्था में मन्त्र तथा वृद्धावस्था में माला-मन्त्र सिद्ध होते हैं ॥२९॥ इनसे भिन्न स्थिति में विपरीत अवस्था वाले साधक को बीज मन्त्र, मन्त्र तथा माला-मन्त्र का दोगुनी संख्या में जप करना चाहिए ॥३०॥ शिव जी ने कहा है— हे प्रिये! गुप्त-शक्ति वाले मन्त्र फल नहीं देते। चैतन्य-शक्ति वाले मन्त्र ही सब प्रकार की सिद्धियों को देते हैं ॥३१॥ चैतन्य-रहित मन्त्र केवल 'वर्ण' मात्र होते हैं। वे करोड़ों की संख्या में जपने पर भी फल नहीं देते ॥३२॥

अथ कामनापरत्वेन मन्त्रादौ बीज निरूपणं ॥ यदि दोषे तु सर्वत्र माया कामम-
-यापि वा। शिखा त्यादौ स्थितं दद्यात्सर्वदोष विमुक्तये ॥३३॥ प्रणवो नु वनेशानि रमाबीज मनोभवम्,
जीवनं सर्व मन्त्राणामित्याहुर्भगवान्शिवः ॥३४॥ श्रीबीजाद्यं यदा जप्यं तदा लक्ष्मीश्चञ्चला। कामाद्यं
जपनादेव सर्वलोकं वशे नयेत् ॥३५॥ वाग्भवादि जपनादेव वाक्सिद्धिर्जायते ध्रुवम्। वाक्ति बीजादिको

किं न सिध्यति मन्त्रिवर ॥ ३७ ॥ (इति मालिनी विजये) ॥ अथ कामनापरत्वेन मन्त्राणां पल्लव निर्णयः
मंत्राणां पल्लवो वाग्भो मंत्राणां प्रणवः शिरः ॥ शिरः पल्लव संयुक्तो मन्त्रः कामदुघो भवेत् ॥ ३८ ॥ वशर्णा-
-कर्षण होमेषु स्वाहान्तः सिद्धिदायकः । वौषट्पल्लव संयुक्तो मन्त्रः पुष्ट्यादि साधकः ॥ ३९ ॥ हुंकार पल्लवो
बोधितो मारणे ब्राह्मणं विना । मन्त्रभङ्ग-जन्मकार्येषु सुघोरमघनाशने ॥ ४० ॥ वषडंतः प्रकल्प्यस्तु गृह-
बाधा विनाशकः । उच्चाटने तु संप्रोक्तो मंत्रः फट्पल्लवान्वितः ॥ ४१ ॥ (इति हरगौरी तंत्रे) ॥ वषड्
वश्ये फडुच्चाटे हुंस्तंभे खेचरे मारणे । स्वाहा तुष्टयै ठः ठः पुष्टयै नमः सर्वार्थ साधने ॥ ४२ ॥ (इति
मनुमते) ॥ वषड्वश्ये फडुच्चाटे हुंक्षेभे खेचरे मारणे । टस्तम्भे वौषडाकर्षे नमः संपत्ति हेतवे ॥
स्वाहा पुष्टि रत्याख्या तुष्टि रित्येते मन्त्र पल्लवाः ॥ (इति मातृकायां) ॥ ४३ ॥

टीका ॥ अब कामना परक मन्त्रों के आदि में बीज-निर्णय का उल्लेख करते हैं। 'मालिनी विजय तन्त्र' में कहा गया है— "यदि सर्वत्र दोष हो तो सभी दोषों की शान्ति के लिए माया (ह्रीं), काम (क्लीं) भी (श्रीं) को प्रारंभ में रख कर जप करना चाहिए ॥ ३३ ॥ हे सुवदने शंकरी। प्रणव रमा बीज से उत्पन्न है। यह सभी मन्त्रों का जीवन है — ऐसा भगवान् शिव ने कहा है ॥ ३४ ॥ आदि में श्री-बीज युक्त मन्त्र का जप करने से अचल-सम्पत्ति का लाभ होता है। काम-बीज आदि में हो तो उस मन्त्र के जप से साधक तीनों लोकों को वश में कर लेता है ॥ ३५ ॥ वाक् आदि मन्त्रों के जप से चिरकालीन वाक्-सिद्धि प्राप्त होती है। शक्ति-बीज वाले मन्त्र निर्दोष तथा तत्काल-फल देने वाले होते हैं ॥ ३६ ॥ दो प्रणवों से मन्त्र को पुटित करके, जप करने वाला साधक निश्चित रूप से

म.

मोक्ष प्राप्त करता है। मन्त्रवेत्ता व्यक्ति इस प्रकार से मन्त्र का जप करके क्या सिद्धि नहीं कर लेता? ॥३७॥ अब कामना परक मन्त्रों के अन्त में पल्लव-विधि के विषय में कहते हैं। 'हरगौरी तन्त्र' में कहा गया है - 'मन्त्रों का 'वास' ही पल्लव है तथा 'प्रणव' ही शिर है। शिर तथा पल्लव संयुक्त मंत्र ही कामनाओं की पूर्ति करता है ॥३८॥ वशीकरण, आकर्षण तथा होम में 'स्वाहा' पल्लव लगाना सिद्धिदायक होता है। 'वौषट्' पल्लव युक्त मन्त्र पुष्टि आदि कर्म में सिद्धि दायक होते हैं ॥३९॥ हुंकार पल्लव युक्त मन्त्र ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य लोगों के मारण-कर्म में प्रयुक्त होता है ॥ मन्त्र-भंजन कार्यों में तथा सारी भय दूर करने के लिए 'वषट्' पल्लव युक्त मन्त्र का जप करना चाहिए। यह ग्रह-बाधा-विनाशक है। उच्चाटन-कर्म में 'फट्' पल्लव युक्त मन्त्र का जप करे ॥४०-४१॥

मनु के मतानुसार - 'वशीकरण में 'वषट्', उच्चाटन में 'फट्', स्तम्भन में हुं' तथा मारण में 'स्वाहा'; तुष्टि-पुष्टि में 'वौषट्' तथा सर्वार्थ-साधन में 'नमः' का प्रयोग करना चाहिए ॥४२॥ मतान्तर से - 'वशीकरण में 'वषट्', उच्चाटन में 'फट्', द्वेषण तथा मारण में 'हुं', स्तम्भन में 'वौषट्', सम्पत्ति के लिए 'नमः' और तुष्टि तथा पुष्टि के 'स्वाहा' - ये सब मन्त्रों के पल्लव हैं ॥४३॥

<u>अथ मन्त्राणां द्विलादि दोष विचार</u> - द्विलादि दुष्ट मंत्रास्ते पालमपि न साधकम्। द्विलो रुद्रः क्षतिर्हीनः परान्मुख उदीरितः ॥१॥ बधिरो नेत्रहीनश्च कीलितस्तंभितस्तथा। दग्धस्त्रस्तश्च भीतश्च मलिनश्च तिरस्कृतः ॥२॥ भेदितश्च सुषुप्तश्च मदोन्मत्तश्च मूर्छितो

निर्बीजः सिद्धिहीनश्च मंदः कूटस्तथा पुनः ॥ ४॥ निरंकः सत्त्वहीनः केकरो बीजहीनकः।
धूमिलालिंगितो स्यातां मोहितस्तु क्षुधार्तकः ॥५॥ अतिदृप्तोऽङ्गहीनः स्यादतिक्रुद्ध समीरितः। अति
क्रूरश्च सव्रीडः भ्रान्तमानस एव च ॥ ६॥ स्यानभ्रष्टस्तु विकलः सोतिवृद्धश्चकीर्तितः। निःस्नेहः
पीडितश्चापि वक्ष्याम्येषां च लक्षणम् ॥ ७॥ (इति भगदा तिलके)॥

टीका- अब मन्त्रों के छिन्नादि दोषों के विचार कहते हैं। 'भग दा तिलक' के अनुसार— " छिन्नादि दोषों से दुष्ट-भाव को प्राप्त हुए मन्त्र साधक का पालन नहीं करते, मन्त्रों को- छिन्न, रुद्ध, शक्तिहीन, पराङ्मुख, ॥ १॥ बधिर, नेत्रहीन (अन्ध), कीलित, स्तम्भित, दग्ध, त्रस्त, भीत, मलिन, तिरस्कृत ॥२॥ भेदित, सुषुप्त, मदोन्मत्त, मूर्च्छित, हतवीर्य-हीन, ध्वस्त बालक ॥३॥ कुमार, युवा, प्रौढ़, वृद्ध, निश्शंशक, निर्बीज, सिद्धिहीन, मन्द, कूट ॥४॥ निरंशक, सत्वहीन, केकर, बीजहीन धूमिल, आलिंगित, मोहित, क्षुधार्त ॥ ५॥ अतिदृप्त, अङ्गहीन, अतिक्रुद्ध, अतिक्रूर, व्रीड़ा युक्त, भ्रान्त मानस, ॥६॥ स्थान-भ्रष्ट, विकल, अतिवृद्ध, निःस्नेह तथा पीड़ित- कहा गया है। अब मैं इनके लक्षणों को कहता हूँ ॥७॥

मनोर्भस्यादि मध्यान्तेष्वातिलं बीजमुच्यते। संपुटं वापि मुखं वा स्वराद्यानं विधा पुनः ॥८॥ चतुर्धा पंचधा वाथ समन्त्रविदलं संस्मृतः ॥ आदि मध्यावसानेषु बीजबन्धलांछितः ॥९॥ रुद्धमन्त्रः सविज्ञेयो मुक्तिमुक्ति विवर्जितः ॥१०॥ मायाग्निवधूबीजं बीजहीनश्च यो मनुः। शक्ति-हीनः सकथितो यस्य मध्ये न विद्यते ॥११॥ कामबीजं मुखे माया शिरस्यंकुशमेव च। असौ पराङ्मुखः

प्रोक्तौ हकारो बिन्दु संयुतः ॥१२॥ आद्यन्तमध्येष्विंदुर्वा स भवेद्बिंदुरः स्मृतः। पञ्चवर्णो मनुर्ज्ञेयः स्याद्रे
-फार्केन्दु विवर्जितः ॥१३॥ नेत्रहीनः स विज्ञेयो दुःखशोकामयप्रदः। आदिमध्यावसानेषु हंसः प्रासाद
वाग्भवौ। रुकारो बिन्दुमाञ्जीवो वायुश्चापि चतुष्कलः ॥१४॥ माया नमामि च पदं नास्ति यस्मि- म
-न्स कीलितः। एकं मध्ये द्वयं मूर्ध्नि यस्मिन्नस्त्रपुरन्दरौ ॥१५॥ विश्लेते सतु मन्त्रः स्यात्स्तम्भितः
सिद्धिरोधकः। वह्निर्वायुसमायुक्तो यन्त्र मन्त्रस्य मूर्द्धनि ॥१६॥ सप्तधा दृश्यते तं तु दग्धं मन्त्रविदो
अस्त्रं द्वाभ्यां त्रिभिः षड्भिरष्टभिर्दृश्यतेऽक्षरैः ॥१७॥ त्रस्तः सोमहितो यस्य मुखे न प्रणवः स्थितः।
शिखो वा शक्तिरथवा भीतारव्यः स प्रकीर्तितः ॥१८॥ आदिमध्यावसानेषु भवेत्प्राणार्चतुष्टयम्।
अस्य मन्त्रः स मलिनो मन्त्रवित्तं विवर्जयेत् ॥१९॥ यस्य मध्ये दकारो वा क्रोधो वा मूर्द्धनि द्विधा।
अस्त्रं तिष्ठति मन्त्रश्च स तिरस्कृत ईरितः ॥२०॥ न्योढ्यं हृदयं शीर्षे वषट् चौषट् च मध्यतः।
यस्यासौ भेदितो मन्त्रस्त्याज्यः सिद्धिषु सूरिभि ॥२१॥ त्रिवर्णो हंसहीनो यः सुषुप्तः समुदाहृतः।
मन्त्रो वाच्यश्च वा विद्या सप्ताधिकदशाक्षरः ॥२२॥ फट्कार पञ्चकादिर्यो मदोन्मत्त उदीरितः। तद्व-
-दस्त्रं स्थितं मध्ये यस्य मन्त्र समूर्द्धितः ॥२३॥ विरामस्थानगं यस्य हृत्वीर्यस्य कथ्यते। आदौ मध्ये
तथा मूर्ध्नि चतुरस्त्रयुतो मनुः ॥२४॥ ज्ञातव्यो हीन इत्येष यः स्यादष्टादशाक्षरः। एकोनविंशत्यर्णो वा
यो मन्त्रस्तात् संयुतः ॥२५॥ हृल्लेखां कुरु बीजाढ्यस्तं प्रदत्तस्तं पंचदशते। सप्तवर्णो मनुर्बलि-
कुमारोष्टाक्षरः स्मृतः ॥२६॥ षोडशार्णो युवा प्रोक्तश्चत्वारिंशल्लिपिर्मनुः। त्रिंशदर्णश्चतुर्वक्त्रो षष्टिवर्णो
मन्त्र शताक्षरः ॥२७॥ अतः परं [illegible]

टीका- अब मन्त्र के लक्षणों के विकल्प में बताते हैं—" जिस मन्त्र के आदि, मध्य तथा अन्त में अनिल (वायु) बीज बोला जाता है और जो संयुक्ता, मुक्ता अथवा स्वराक्रान्ता तीन, चार या पाँच प्रकार का होता है, उसकी 'छिन्न' संज्ञा होती है। जो मन्त्र आदि, मध्य अथवा अन्तमें भू-बीज से युक्त होता है, वह भोग तथा मोक्ष से विवर्जित मन्त्र 'रुद्र' संज्ञक होता है। जो मन्त्र शक्ति-हीन हो तथा जिसके मध्य में माया-बीज (ह्रीं), त्रिनेत्र-बीज 'ऊर्ध्व' (ऊँ) तथा श्री-बीज (श्रीं) न हो, वह 'शक्तिहीन' कहा जाता है ॥ ८-९१॥ जिस मन्त्र के आदि में काम-बीज (क्लीं) तथा अन्तमें माया-बीज (ह्रीं) एवं अंकुश-बीज (क्रों) न हो, उसे 'पराङ्मुख' कहा जाता है ॥ ९२॥ जिस मन्त्र के आदि, मध्य तथा अन्त में विन्दु युक्त 'ह' कार अथवा 'इन्दु' (चन्द्रविन्दु) न हो, उसे 'बधिर' कहा जाता है। जो मन्त्र पाँच वर्णों वाला है और उसमें रेफ, अर्क तथा इन्दु-बीज न हो, उसे 'नेत्र-हीन' (अन्ध) कहा जाता है। ऐसा मंत्र दुःख तथा रोग-कारक होता है। जिस मन्त्र के आदि, मध्य तथा अन्त में हंस बीज, प्रासाद-बीज, वाग्भव-बीज, विन्दु सहित हकार, जीव-बीज रव, चतुष्कल-बीज, माया-बीज तथा 'नमामि' पद नहीं होता, उसे 'कीलित' कहते हैं। जिस मन्त्र के मध्य में एक, तथा आदि में दो 'अस्त्र-बीज' तथा इन्दु-बीज हो, वह 'स्तम्भित' कहलाता है तथा सिद्धि-अवरोधक होता है। जिस मन्त्र के आदि में अग्नि-बीज, सात वायु-बीजों से युक्त दिखाई दे, उसे मन्त्रवेत्ता को 'दग्ध' समझना चाहिए। जिस मन्त्र में दो, तीन, छः अथवा आठ अक्षरों से अस्त्र-बीज दिखाई दे एवं जिसके आदि में 'प्रणव' न हो, उसे 'त्रस्त' कहा जाता है। जिस मन्त्र में शिव अथवा शक्ति बीज न हो,

उसे 'भीत' कहते हैं। आदि, मध्य और अन्त में कुल मिला कर चार 'म' कार जिस मन्त्र में हों उसे 'मलिम' कहते हैं। मन्त्र-वेत्ता को चाहिए कि वह ऐसे मन्त्र का परित्याग करदे ॥ १३-१८ ॥ जिस मन्त्र के मध्य में 'हंकार' अथवा क्रोध-बीज हो और आदि तथा अन्त में दो अस्त्र-बीज हों, उसे 'रिस्फुल' कहा जाता है ॥२०॥ जिस मन्त्र के हृदय में 'थो' द्वय हो, शीर्ष में 'वषट्' हो तथा मध्य में 'वौषट्' हो, उसे 'भेदित' कहा जाता है। ऐसे मन्त्र को विद्वानों ने सभी सिद्धियों में त्याज्य कहा है ॥२१॥ सत्रह से अधिक अक्षरों वाले जिस मन्त्र में तीन वर्ण 'हंस' से रहित हों, उसे 'सुषुप्त' कहा जाता है ॥२२॥ जिस मन्त्र के आदि में पाँच 'फट्' कार हों, उसे 'मदोन्मत्त' कहते हैं तथा जिस मन्त्र के मध्य में अस्त्र-बीज हो उसे 'मूर्च्छित' कहा जाता है ॥२३॥ जिस मन्त्र के अन्त में अस्त्र-बीज हो, उसे 'हतवीर्य' कहते हैं। अठारह अक्षरों वाले जिस मन्त्र के आदि, मध्य तथा अन्त में चार अस्त्र-बीज हों, उसे 'हीन' समझना चाहिए। जो मन्त्र उन्नीस वर्णों वाला तथा प्रणव से युक्त हो और जिसके आदि में माया-बीज और अंकुश-बीज हो, उसे 'प्रध्वस्त' कहते हैं। सात वर्णों वाले मन्त्र को 'बाल' आठ वर्णों वाले को 'कुमार', सोलह वर्णों वाले को 'युवा' तथा चालीस वर्णों वाले को 'प्रौढ़' कहते हैं। तीस, साठ, सौ तथा चार सौ वर्णों वाला मन्त्र 'वृद्ध' कहा जाता है। नौ अक्षरों वाले मन्त्र, जिसमें 'शुभ-बीज' हों को 'निस्त्रिंश' कहा जाता है ॥२४-२८॥

अस्पावसाने हृदयं शिरोमन्त्रस्य मध्यतः। शिखी वर्म च न स्थानं वौषट् फट्कार एव वा ॥२९॥ त्रिवर्णाद्यैर्वर्णहीनो वा स निर्बीज इतीरितः॥ शेषु स्थानेषु फट्कारः

बोध यस्मिन्न दृश्यते ॥ ३० ॥ स मंत्रः सिद्धिहीनः स्यान्मन्दः पंक्त्यक्षरो मनुः । कूट एकाक्षरो मन्त्रः स एवेक्तो निरंशकः ॥ ३१ ॥ द्विवर्णः सत्त्वहीनः स्या च्चतुर्वर्णश्च केकरः । षडक्षरो बीजहीनः सार्धसप्ताक्षरो मनुः ॥ ३२ ॥ सार्धदादशवर्णो वा धूमितः स तु निन्दितः । सार्धबीजत्रयस्तद्वदेकविंशति वर्णकः ॥ ३३ ॥ विंशत्यर्णस्त्रिंशदर्णो यः स्यादालिङ्गितस्तु सः । द्वात्रिंशदक्षरो मन्त्रो मोहितः परकीर्तितः ॥ ३४ ॥ चतुर्विंशति वर्णो यः सप्तविंशति वर्णकः । क्षुधार्तः स तु विज्ञेयो यश्चतुस्त्रिंशदर्णकः ॥ ३५ ॥ एकादशाक्षरो नाथ पञ्चविंशति वर्णकः । त्रयोविंशति वर्णो वा मन्त्र एषा उदाहृतः ॥ ३६ ॥ षडविंशत्यक्षरो मन्त्रः षट्त्रिंशदर्णकस्तथा त्रिंशदेकोनवर्णो वाप्यंगहीनोभिधीयते ॥ ३७ ॥

टीका ॥ जिसके अन्त में दृश्य-मन्त्र 'नमः' तथा शिरोमन्त्र 'स्वाहा' न हों एवं मध्य में शिखी-मन्त्र, वर्म-मन्त्र, वौषट् अथवा फट्कार न हों अथवा जो शिव एवं शक्ति के बीज मन्त्रों से हीन हो, वह मन्त्र 'निर्बीज' कहलाता है ॥ जिस दशाक्षर मन्त्र के आदि, मध्य तथा अन्त में छः बार 'फट्कार' देना हो, वह 'सिद्धिहीन' कहा जाता है । ऐसा मन्त्र प्रत्येक कार्य में मन्द होता है । एक अक्षर वाले मन्त्र को 'कूट' तथा 'निरंशक' कहते हैं ॥ २८-३१ ॥ दो वर्णों वाले मन्त्र को 'सत्त्वहीन' तथा चार वर्णों वाले को 'केकर' कहते हैं । छः अक्षर वाले को 'बीजहीन' एवं साढ़े सात अथवा साढ़े बारह वर्णों वाले मन्त्र को 'धूमित' कहते हैं । ऐसा मन्त्र निन्दित माना गया है । साढ़े तीन बीजों से युक्त इक्कीस वर्णों वाला, बीस वर्णों वाला एवं तीस वर्णों वाला मन्त्र 'आलिङ्गित' और बत्तीस अक्षरों वाला मन्त्र 'मोहित' कहा जाता है ॥ ३२-३४ ॥ चौबीस वर्णों वाला, सत्ताईस वर्णों वाला

तथा चौंतीस वर्णों वाला मन्त्र 'क्षुधार्त्त' एवं ग्यारह, पच्चीस तथा तेईस वर्णों वाला मन्त्र 'हृदा' कहा जाता है ॥३५-३६॥ छब्बीस, छत्तीस तथा उन्तीस अक्षरों वाला मन्त्र 'अङ्गुष्ठेन' कहलाता है ॥३७॥

अष्टाविंशत्यक्षरो य एकत्रिंशदथापि वा। अतिक्षुरः स कथितो निन्दितः सर्वकर्मसु ॥३८॥ त्रिंशदक्षरको मन्त्रस्त्रयस्त्रिंशदथापि वा। अतिक्षुरः स गदितो निन्दितः सर्वकर्मसु ॥३९॥ ऊनचत्वारिंशदर्णः सप्तत्रिंशदथापि वा। कथमंत्यतिरिक्तं तं मन्त्रं मन्त्रविशारदाः ॥४०॥ चत्वारिंशक मारभ्य द्विषष्टियविदापयेत्। तावत्संख्या निगदिता मन्त्राः सव्रीडसंहृताः ॥४१॥ पञ्चषष्ट्यक्षरा ये स्युर्मन्त्रास्ते शान्तमानसाः। एकोनशतपर्यन्तं षञ्चषष्ट्यक्षरादितः ॥४२॥ ये मन्त्रास्तु निगदिता स्तान्यष्टाढ्यया बुधैः। त्रयोदशाक्षरा ये स्युर्मन्त्राः पञ्चदशाक्षरा ॥४३॥ विकलास्तेभिधीपतो शतं सार्धशतं तथा। शतद्वयं द्विनवतिरेकहीनाथ वापि सा ॥४४॥ शतत्रयं वा यत्संख्या निःस्नेहास्ते समीरिताः। चतुःशतान्यष्टाधिक्य यावद्वर्णं सहस्रकम् ॥४५॥ अति बृहाः स योगेषु परित्याज्याः सदा बुधैः। सहस्राणाधिका मन्त्रा दण्डका पीडिताह्वयाः ॥४६॥ द्विसहस्राक्षरा मन्त्राः खण्डशः शतधा हृताः। शतद्वयात्तोत्रकृपास्ते मन्त्रा एते यथा स्मृताः ॥४७॥ तथा विद्याश्च बोद्धव्या मन्त्रिभिः काम्यकर्मसु। दोषानिमान्विजानाति यो मन्त्रान्भजते जडः ॥४८॥ सिद्धिर्न जायते तस्य कल्पकोटि शतैरपि। इत्यादि दोषदुष्टांस्तान्मन्त्रान्नात्मनि योजयेत् ॥ शोधयेद्बृहवतो बृहा योनिमुद्रया ॥४९॥

टीका— अट्ठाईस, इकत्तीस अथवा तीस अक्षरों वाला मन्त्र 'अतिक्षुर' कहागया है। ऐसा मन्त्र सभी कर्मों में निन्दित है ॥३८॥ तैंतीस अक्षरों वाला मन्त्र भी ऐसा ही होता है ॥३९॥

उन्तालीस तथा सैंतीस अक्षरों वाले मन्त्र को मन्त्र-विशारद 'अतिरिक्त' कहते हैं ॥ ४०॥ चालीस से बासठ वर्णों वाले मन्त्र को 'सद्विडु' कहते हैं ॥ ४१॥ पैंसठ अक्षरों वाले मन्त्र 'प्रान्त मानस' कहे जाते हैं। पैंसठ से निन्यानवे वर्णों वाले मन्त्रों को विज्ञजन 'स्थान भ्रष्ट' कहते हैं ॥ ४२॥ तेरह, पचहत्तर सौ तथा डेढ़ सौ अक्षर वाले मन्त्र 'विकल' कहे जाते हैं। इक्यानवे नानवे, दो सौ तथा तीन सौ संख्या वाले मन्त्र 'निःस्नेह' कहलाते हैं। चार सौ से एक हजार तक वर्णों वाले मन्त्र 'अतिवृद्ध' होते हैं। उन्हें विद्वानों द्वारा योगों में त्याज्य माना गया है। एक हजार से अधिक वर्णों वाले मन्त्र 'पीडित' कहे गये हैं ॥ ४२-४६॥ दो हजार अक्षरों वाले मन्त्र सौ खण्डों में बाँटे जाने पर 'स्तोत्ररूप' हो जाते हैं। वे जैसे हैं, वैसे ही साधकों द्वारा काम्य-कर्मों में प्रयोजनीय होते हैं। इन दोषों को जाने बिना जो मूर्ख मनुष्य मन्त्र-जप करता है, उसे करोड़ों कल्पों में भी सिद्धि नहीं मिलती। पूर्वोक्त दोषों से युक्त मन्त्रों को आत्मा में संयोजित करते समय 'योनिमुद्रा' से वायु को बाँधकर मन्त्र-शोधन करना चाहिए ॥ ४७-४९॥

अथ मन्त्राणां दश संस्काराः- मन्त्रश्चरण सम्पन्नो मन्त्रोहि फलदायकः। किं होमैः किं जपैश्चैव किं मन्त्रन्यास विस्तरैः ॥ १॥ द्विन्नत्वादिकदोषा ये पञ्चाशन्मन्त्रसंस्थिताः। तैर्दोषैः सकला व्याप्ता मनवः सप्तकोटयः ॥ २॥ अतस्तद्दोषशान्त्यर्थं संस्कार दशकं चरेत्। जननं जीवनं पश्चात्ताडनं बोधकं तथा ॥ ३॥ अभिषेकोविमलीकरणाप्यायने पुनः। तर्पणं दीपनं गुप्तिर्दशैता मन्त्र संस्क्रियाः ॥ ४॥ (इति मन्त्र महोदधौ)॥

टीका- 'मन्त्र महोदधि' के अनुसार द्विन्नत्वादिक दोषों के निवारणार्थ

मन्त्रों के दश संस्कार करने चाहिए। कहा है — 'सभी चरणों से युक्त मन्त्र ही फलदायक होता है। होम, जप और मन्त्र-न्यास से क्या होगा? छिन्नादिक मन्त्रों के जो पचास दोष कहे गये हैं, उनसे सात कोड़ मन्त्र प्रभावित हैं ॥१-२॥ अतः उनके दोषों की शान्ति के लिए दश प्रकार के संस्कार करने चाहिए, वे हैं — १ जनन, २ जीवन, ३ ताडन, ४ बोधन, ५ अभिषेक, ६ विमलीकरण, ७ आप्यायन, ८ तर्पण, ९ दीपन और गुप्ति (गोपन) ॥३-४॥

१. अथ जननं : भूर्जपत्रे लिखेत्सम्यक् त्रिकोणं रोचनादिभिः। वारुणं कोणमारभ्य सप्तधा विभजेत् समम् ॥५॥ एवमीशानि कोणाभ्यां जायते तत्र योनयः। तत्र षोडशिता-स्तत्र विलिखेन्मातृकां क्रमात् ॥६॥ अंकारादि हकारान्तामाद्यादि वरुणावधिः। देवीं तत्र समावाह्य पूजयेच्चन्दनादिभिः। ततः समुद्धरेन्मन्त्रं जननं तदुदीरितम् ॥७॥

टीका-अब जनन संस्कार के बारे में बताते हैं — 'गोरोचन आदि से भोजपत्र के ऊपर सम त्रिभुज लिखे। फिर, पश्चिम कोण से प्रारंभ कर, उसे ७ समान विभागों में विभक्त करे ॥५॥ इसी प्रकार ईशान कोण से एवं आग्नेय कोण से भी उसे ७ विभागों में विभाजित करना चाहिए। (इस प्रकार ४९ योनियाँ बन जाएँगी ॥५॥ इस चक्र में ईशान कोण से प्रारंभ कर, पश्चिम तक 'अंकार से 'हकार पर्यन्त सभी वर्णों को लिखे। उस पर मातृका देवी का आवाहन कर, चन्दन आदि से पूजन करे। तत्पश्चात् उसके मन्त्र के एक-एक वर्ण का उद्धार करे। इसी को 'जनन संस्कार' कहते हैं ॥६-७॥

टीका - अब 'दीपन' संस्कार के विषय में बताते हैं — 'मूल-मन्त्र को 'हंस' मन्त्र से पुटित कर एक सहस्र की संख्या में जप करने को 'दीपन' कहा जाता है' ॥ ८॥

३. अथ बोधनं - "नमो वह्नि-युक्तादि-संपुटस्य जपो मनोः। सहस्र-पञ्चकमितो बोधनं तत् स्मृतं बुधैः ॥ ९॥

टीका - अब 'बोधन' संस्कार के विषय में बताते हैं — 'नम (६), वह्नि (र) तथा इन्दु (अनुस्वार) सहित अर्धीश (ऊ) अर्थात् 'ह्रूँ' - इस से सम्पुटित कर, मूल-मन्त्र का पाँच हजार की संख्या में जप करने को 'बोधन' कहा जाता है ॥ ९॥

४. अथ ताडनं - सहस्रं प्रजपेद् मन्त्रं पुटितं ताडनं हि तत्।

टीका - अब 'ताडन' - संस्कार के विषय में बताते हैं — 'अस्त्र अर्थात् 'फट्' से सम्पुटित मूल-मन्त्र का एक हजार की संख्या में जप करने को 'ताडन' कहा जाता है।

५. अथ अभिषेकः - वाग्भवं तारेणोद्धृत्य सहस्रं पयसा मनुम्। अभिषिञ्चेत् वागाद्ये रभिषेकोयमीरितः ॥ १०॥

टीका - "अब 'अभिषेक' संस्कार के विषय में बताते हैं — 'वाग् (ऐं), हंस (हंसः) तथा तार (ॐ) — इस मन्त्र द्वारा अभिमंत्रित जल से इसी मन्त्र से अभिषेक करने को 'अभिषेक-संस्कार' कहा जाता है ॥ १०॥

६. अथ विमलीकरणः - हरि-त्रय-न्वितस्तारो वसुतो मनुरादिकः। सहस्रं तत्पुटो जप्यो

विमलीकरणे मनुः ॥ ११ ॥

टीका - अब 'विमलीकरण' संस्कार के विषय में बताते हैं — वह्नि (र) तथा नाद (ॐ) सहित हरि (ल) अर्थात् ग्रीं; इसके अन्त में वषट् एवं आदि में चतुर्थ (ॐ) लगाने से निर्मित 'ॐ ग्रीं वषट्' — इस मन्त्र द्वारा सम्पुटित मूल-मन्त्र का एक हजार की संख्या में जप करने से 'विमली करण' संस्कार सम्पन्न होता है ॥ ११ ॥

७. अथ जीवनं : स्वधा वषट् युतं जप्त्वासहस्रं जीवने मनुम् ॥

टीका - अब 'जीवन' संस्कार के विषय में बताते हैं — "स्वधा वषट्" मन्त्र से सम्पुटित मूल-मन्त्र का एक हजार बार जप करने को 'जीवन' कहते हैं ॥

८. अथ तर्पणं : क्षीराज्य युक्त पाद्योभिस्तर्पणे तर्पयेन्मनुम् ॥ १२ ॥

टीका - अब 'तर्पण' - संस्कार के विषय में कहते हैं — 'दूध, घृत एवं जल के द्वारा मूल-मन्त्र से उसी का तर्पण करने को 'तर्पण-संस्कार' कहा जाता है ॥ १२ ॥

९. अथ गोपनं : जपेन्मायायुतं मन्त्रं सहस्रं गोपने हितम् ॥

टीका - अब 'गोपन' संस्कार के विषय में बताते हैं — माया-बीज (ह्रीं) से सम्पुटित मूल-मन्त्र का एक हजार की संख्या में जप करने को 'गोपन' कहते हैं ॥

१०. अथ आप्यायनं : बलामायाधिपेनेन गगनाक्षेम सम्पुटम् (सहस्रं जपेन्मन्त्रमेतद्)

टीका - अब 'आप्यायन' संस्कार के विषय में बताते हैं — 'बाला' के तार्तीय-बीज (सौः) के आदि में गगन (ह) लगा कर (अर्थात् 'ह सौः') मूल-मन्त्र को इससे सम्पुटित कर एक हजार की संख्या में जप करने को 'आप्यायन' कहते हैं ॥२३॥ ये दस संस्कार मन्त्रों के दोषों को नष्ट करने वाले कहे गए हैं ॥२४॥

अथ शारदातिलकोक्तं मन्त्राणां दश संस्काराः - कर्मण्यति जडा मन्त्रा मन्त्राणां चोचिता अमि । तस्मात्तद्दोषनाशाय कर्तव्याः संस्क्रिया दश ॥२५॥ मन्त्राणां दशसंस्काराः कथ्यन्ते सिद्धिदायिनः । जननं जीवनं पश्चात्ताडनं बोधनं तथा ॥२॥ अथाभिषेको विमलीकरणाप्यायते पुनः । तर्पणं दीपनं गुप्तिश्चेतनाः स्युर्मन्त्रसंस्क्रियाः ॥३॥ मन्त्राणां मातृकाम्बुद्वारो जननं स्मृतम् ॥४॥ प्रणवा-नारितान्कृत्वा मन्त्रवर्णाञ्जपेत्सुधीः । एतज्जीवनमित्याहुर्मन्त्रतन्त्रविशारदाः ॥५॥ मन्त्रवर्णान्समालिख्य ताडयेच्चन्दनाम्भसा । प्रत्येकं वापुना मन्त्री ताडनं तदुदाहृतम् ॥६॥ विलिख्य मन्त्रं तं मन्त्री प्रसूनैः कर-वीरजैः । तन्मन्त्राक्षरसंख्यातैर्हत्वा प्रेक्षेण बोधनम् ॥७॥ स्वतन्त्रोक्तविधानेन मन्त्री मन्त्राणं संख्यया । अश्वत्थपल्लवैर्मन्त्रमभिषिञ्चेद्घटाम्बुभिः ॥८॥ संचिन्त्य मनसा मन्त्रं ज्योतिर्मन्त्रेण निर्दहेत् । मन्त्रे मल-त्रयं मन्त्री विमलीकरणं त्विदम् ॥९॥ तारं व्योमाग्नि मनुयुग्दण्डी ज्योतिर्मनुर्मतः । कुशोदकेन जप्तेन प्रत्यृचं प्रोक्षणं मनोः । तेन मन्त्रेण विधिवदेतदाप्यायनं मतम् ॥१०॥ मन्त्रेणानेन मन्त्रे तर्पणं तर्पणं स्मृतम् ॥११॥ तारमाया रमा योगे मनोर्दीपनमुच्यते । जप्यमानस्य मन्त्रस्य गोपनं त्वतिगोपकम् ॥१२॥ संस्काराः दश ते प्रोक्ता सर्वतन्त्रेषु गोपिताः । यान् कृत्वा सम्यगाप्नोति मन्त्री वांछितमश्नुते ॥१३॥ तन्मूले

भूर्जपत्रे वा लिखित्वा च कर्तव्या ॥

टीका - अब 'शारदा तिलक' के अनुसार मन्त्रों के दश संस्कारों के विषय का उल्लेख करते हैं — जो मन्त्र कार्य-साधन में अत्यन्त जड़ हों, उनका प्रयोग करने के लिए, उनके दोष दूर करने हेतु दश संस्कार करने चाहिए। मन्त्रों के सिद्धि दायक दश संस्कार इस प्रकार हैं — १ जनन, २ जीवन, ३ ताडन, ४ बोधन, ५ अभिषेक, ६ विमली करण, ७ आप्यायन, ८ तर्पण, ९ दीपन तथा १० गुप्ति (गोपन)- ये मन्त्रों के दश संस्कार हैं ॥१-३॥ मातृकाओं के बीच से मन्त्रों के उद्धार को 'जनन' कहते हैं ॥४॥ सुधी व्यक्ति को चाहिए कि वह प्रणव (ॐ) से मन्त्रवर्णों को आन्तरित करके जप करे, इसे मन्त्र-तन्त्र विशारदों ने 'जीवन' कहा है ॥५॥ साधक द्वारा मन्त्र-वर्णों को भोजपत्र पर लिखकर चन्दन के पानी से वायुबीज द्वारा ताड़न करने को 'ताडन' कहते हैं ॥६॥ साधक भोजपत्र आदि पर कुंकुम आदि से मूलमन्त्र को लिख कर, मन्त्र के अक्षरों की जितनी संख्या हो, उतनी बार 'रं' बीज-मन्त्र से, कनेर के फूलों द्वारा उसका ताडन करे। इसे 'बोधन' कहते हैं ॥७॥ अपने स्वतन्त्र-विधानानुसार मन्त्र-साधक मन्त्र के अक्षरों की जितनी संख्या हो, उतनी बार पीपल के पत्तों से उसका अभिसिंचन करे। इसे 'अभिषेक' कहते हैं ॥८॥ मन में ही मन्त्र का चिन्तन करते हुए साधक मन्त्र में तीन-दो को ज्योति मन्त्र से दग्ध करे। इसे 'विमली करण' कहते हैं ॥९॥ तार (ॐ), व्योम (ह), अग्नि (र), मनु (यौ), दण्डी (अनुस्वार युक्त) अर्थात् 'ॐ ह्रौं' — यह मन्त्र 'ज्योति-मन्त्र' कहलाता है। [illegible]

के अक्षरों के बराबर [illegible]

मन्त्र से जल द्वारा मन्त्र से तर्पण करने को 'तर्पण' कहते हैं ॥ ९१॥ तार (ॐ), माया (ह्रीं) तथा रमा (श्रीं) अर्थात्—'ॐ ह्रीं श्रीं'—इनका योग होने पर मन्त्र का 'दीपन' कहलाता है। जिस मन्त्र का जप किया जाता है, उसे प्रकाशित न करने को 'गोपन' कहते हैं ॥ ९२॥ सभी तन्त्रों में मुख्य इन दस संस्कारों का वर्णन किया गया है। इन्हें अपने सम्प्रदाय के अनुसार सम्पन्न करके साधक इच्छित फल प्राप्त कर सकता है। मन्त्रों को ताम्बूल (पान) अथवा भोजपत्र के ऊपर लिखकर ही ये दश संस्कार करने चाहिए ॥ ९३॥

अथ डाङ्कोक्त उपायाः - आमणं बोधनं वश्यं पीडनं शोष शोषये। दहनान्तं क्रमात् कुर्य्यात्ततः सिद्धो भवेद् ध्रुवम् ॥ १॥ आमणं वायुबीजेन प्रथमं कल योगतः। तन्मन्त्रं यन्त्रमालिख्य सिक्थकर्पूरचन्दनैः॥ २॥ उशीरचन्दनाम्भोभिस्तु यन्त्रं सम्पुटमालिखेत्। पूजनाज्जपनाद्धोमाद् भ्रामितः सिद्धिदो भवेत् ॥ ३॥ भ्रामितो यदि नो सिद्धो बोधनं तस्य कारयेत्। सारस्वतेन बीजेन सम्पुटीकृत्य सञ्जपेत् ॥ ४॥ एवं रुद्धो भवेत्सिद्धो न चेद्देतद्वशी कुरु। अलक्तं चन्दनं कुष्ठं हरिद्रामार्दनं शिला ॥ ५॥ एतैस्तु यन्त्रमालिख्य भूर्जपत्रे सुशोभने। धृत्वा कण्ठे भवेद् सिद्धः पीडनं तस्य कारयेत् ॥ ६॥ अधरोत्तर योगेन पदानि परिजाप्य वै। ध्यायेच्च देवतां तद्वद्धरोत्तर रूपिणीम् ॥ ७॥ विद्यामादित्यदुग्धेन लिखित्वाक्रम्य चांघ्रिणा। तथा मूलेन मन्त्रेण होमः कार्यो दिने दिने ॥ ८॥ पीडितो लज्जयाविष्टः सिद्धिं स्यादथ शोषयेत्। बालायां त्रितयं बीजमाद्यन्तो तस्य योजयेत् ॥ ९॥ गोक्षीरमधुनालिख्य विप्रां पाणौ विधारयेत्। शोषितोयं भवेत् सिद्धो न चेत्कुर्णीत शोषणम् ॥ १०॥ द्राभ्यां च वायुबीजाभ्यां

मन्त्रं कुर्य्याद्विदर्भितम् / एषा विद्या गले धार्या लिखित्वा वरभस्मना ॥११॥ शोभितो न च सिद्ध्येच्च दहनीयोनिवर्जितः / आग्नेयेन तु बीजेन मन्त्रस्यैकैकमक्षरम् ॥१२॥ आद्यन्तमध ऊर्ध्वं च योजयेद्दाहकर्मणि / महावृक्षस्य तैलेन मन्त्रमालिख्य धारयेत् ॥१३॥ कण्ठदेशे ततो मन्त्रसिद्धिः स्याच्छंकरोदितं / इत्येतत्कथितं सम्यक् केवलं तव भक्तितः / एकेनैव कृतार्थः स्याद्बहुभिः किमु सुव्रते ॥१४॥

टीका - अब शंकरजी द्वारा कहे गए मन्त्र-शोधन के सात उपायों के विषय में लिखा जाता है — १ ग्रामण, २ बोधन, ३ वश्य, ४ पीडन, ५ पोषण, ६ शोषण तथा ७ दहन - इन सात उपायों को क्रमशः करने से मन्त्र निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है ॥ १॥ क्रमशः पहले वायु-बीज से 'ग्रामण' संस्कार करे / मन्त्र तथा यन्त्र को कपूर तथा चन्दन से गोला (सिक्त) करके उशीर और चन्दन से मन्त्र को सम्पुट लिखे / पूजा, जप तथा होम से ग्रसित ऐसा मन्त्र सिद्धिदायक होता है ॥ २-३ ॥ यदि 'ग्रामण' संस्कार से मन्त्र सिद्ध न हो तो उसका 'बोधन' संस्कार करे / इसमें सारस्वत बीज 'ऐं' से सम्पुट करके मन्त्र-जप करना चाहिए ॥ ४ ॥ यदि ऐसा करने पर भी मन्त्र सिद्ध न हो तो 'वश्य' संस्कार करना चाहिए / अलक्तक, चन्दन, कूठ, हल्दी, चोरा तथा मैनसिल - इन सब के रंग से यन्त्र को अच्छे भोजपत्र पर लिखकर, कण्ठ में धारण करने से वह सिद्ध हो जाता है / यदि फिर भी सिद्ध न हो तो 'पीडन-संस्कार' करे / अधरोक्त योग से मन्त्र-पदों को जपकर, उसीसे से अधरोक्त सविधि देवता का ध्यान करे ॥ ५-८ ॥ लिखा (मन्त्र) को [illegible]

से उसका आकुम करके, उस मन्त्र से प्रतिदिन होम करे, तो वह लज्जा-बीज (ह्रीं) से मुक्त होकर सिद्ध होजाता है ॥१॥ यदि इस पर भी मन्त्र सिद्ध न हो तो उसका 'पोषण-संस्कार' करे। बीजा में तीन बीज (रें, क्ली:, सौ:) उसके आदि तथा अन्त में जोड़ दें। गाय के दूध तथा मधु (शहद) से विद्या (मन्त्र) को लिख कर हाथ में धारण करना चाहिए। यदि 'पोषण' करने पर भी मन्त्र सिद्ध न हो तो 'शोधन-संस्कार' करना चाहिए ॥ ८-१०॥ दो वायु-बीजों से मन्त्र को विदर्भित करके, भस्म द्वारा लिख कर गले में धारण करे ॥ ११॥ यदि इससे भी मन्त्र सिद्ध न हो तो उसका 'दहन'-संस्कार करना चाहिए। अग्नि-बीज द्वारा मन्त्र के एक-एक अक्षर को आदि, अन्त, नीचे तथा ऊपर दाह-कर्म में जोड़ना चाहिए। फिर, पलाश के तैल से मन्त्र को लिख कर कण्ठ में धारण करे। इससे मन्त्र सिद्ध होजाता है - भट शंकर का कथन है। इस सब को मैंने तुम्हारी भक्ति के कारण ही बताया है। हे सुव्रते! मनुष्य एक ही मन्त्र से कृतार्थ हो सकता है, अनेक मन्त्रों की क्या आवश्यकता है? ॥ १२-१४॥

अथ उत्कीलन विधि - शिवेन कीलिता विद्या तदुत्कीलनमुच्यते। मातातारपुरो मन्त्री जप्त्वादष्टोत्तर शतम् ॥ १॥ मन्त्रस्यादौ तथैवान्ते भवेत्सिद्धिप्रदा तु सा। एवं नूनं विधिगोप्यः सिद्धिकामेन मन्त्रिणा ॥२॥ तन्त्रान्तरे: भूर्जपत्रेष्टगन्धेन अष्टोत्तरशतं मूलं विलिख्य पञ्चोपचारैः सम्पूज्य ब्राह्मणान् भोजयेत्। ततस्ताम्रपात्रे जलमापूर्य प्रत्येकं क्षिपेत्। अथवा नद्यादौ क्षिपेत् उत्कीलनं भवति ॥३॥ अन्यत्: मृत्तिकया नराकारां मिश्रदेव प्रतिमां कृत्वा प्राणान्संस्थाप्य ततो भूर्जपत्रेष्टगन्धेन मंत्रं विलिख्य प्रतिमा हृदये संस्थाप्य मासान्ते पञ्चोपचारैः सम्पूजयेत्। अष्टोत्तरशतं मूलं च जपेत् मासान्ते गुरो-

राहुपा नमोदो ज्वालयेत् । ब्राह्मणांश्च भोजयेत् तदा उत्कीलनं भवति ॥४॥

टीका - अब उत्कीलन की विधि बताते हैं । 'मन्त्र महोदधि' के अनुसार - 'शिवजी द्वारा कीलित विद्याओं की उत्कीलन-विधि कही जा रही है । मन्त्र-साधक माया बीज (ह्रीं) तथा तार बीज (ॐ) से मन्त्र को पुटित करके एक सौ आठ बार जपे । मन्त्र के आदि तथा अन्त में इसी प्रकार से करने पर विद्या सिद्धि-दायक हो जाती है । सिद्धि की कामना रखने वाले साधक के लिए यह विधि गोपनीय है' ॥2॥ अन्य तन्त्र में कहा गया है - भोजपत्र पर अष्टगन्ध (1. गोरोचन, 2 कपूर, 3 गज-मद, 4 मृग-मद (कस्तूरी), 5 अगर, 6 केसर, 7 श्वेत चन्दन तथा 8 रक्त चन्दन) द्वारा मूल-मन्त्र को 10 बार लिख कर पञ्चोपचारों से पूजा करने के बाद ब्राह्मणों को भोजन कराये । फिर ताम्रपात्र में जल भर कर उसमें पत्रे को घोड़े अथवा नदी या तालाब में फेंक दे । इस विधि से कीलित-मन्त्र का 'उत्कीलन' हो जाता है ॥3॥ अन्यत्र कहा गया है - मिट्टी द्वारा मनुष्य के आकार की देवता की प्रतिमा का निर्माण कर, उसमें प्राण-प्रतिष्ठा करे । फिर भोजपत्र पर अष्टगन्ध से मन्त्र को लिख कर, प्रतिमा के हृदय में रखे । फिर एक मास बाद पञ्चोपचारों से पूजा करे । मूल-मन्त्र का जप 10 बार करना चाहिए । एक मास बाद गुरु की आज्ञा लेकर, उसे नदी आदि में प्रवाहित कर दे तथा ब्राह्मणों को भोजन कराये तो इस विधि से कीलित मन्त्र का उत्कीलन हो जाता है ॥4॥

अथ पुरश्चरण निर्णयः फलिष्यतीति विश्वासः सिद्धेः प्रथम लक्षणम् । द्वितीयं श्रद्धया युक्तं तृतीयं गुरु पूजनम् ॥1॥ चतुर्थं समतामाहुः पञ्चमेन्द्रिय निग्रहम् । षष्ठं च प्राणिमात्रे

सप्तमं नैव विद्यते ॥२॥ (इति मन्त्र सिद्धि भाण्डागारे)॥

टीका - अब पुरश्चरण - विधि के विषय में बताते हैं। 'मन्त्र सिद्धि भाण्डागार' ग्रंथ में लिखा है - 'हमारा मन्त्र फलीभूत होगा' - ऐसा दृढ़ विश्वास ही मन्त्र-सिद्धि का प्रथम लक्षण है। दूसरा श्रद्धा से युक्त होना, तीसरा गुरु-पूजन, चौथा समता भाव, पाँचवाँ इन्द्रिय-निग्रह व छठा प्रतिमा हार है। इनके अतिरिक्त सिद्धि का कोई भी सातवाँ लक्षण नहीं है॥ २॥

निश्चयोत्साहधैर्याच्च तत्त्वज्ञानस्य दर्शनात्। अल्पाशी त्यक्तसङ्गश्च षड्भिर्मन्त्रः प्रसिद्धयति॥ ३॥ (इति मन्त्र महोदधौ)॥ उपदेशस्य सामर्थ्यात्श्रीगुरोश्च प्रसादतः। मन्त्र-प्रभावाद्भक्त्या च मन्त्र सिद्धिः प्रजायते॥ ४॥ (इति तु उपकाश तन्त्रे)॥ मनः संहारणं शौचं मौनं मन्त्रार्थ चिन्तनम्। अल्पत्व मनिर्वेदो जप सिद्धेस्तु हेतवः॥ ५॥ (इति शिवे)॥ अभ्यासात्सिद्धिमाप्नोति भोग-युक्तोपि मानवः। सकलः साधितार्थोपि सिद्धो भवति भूतले॥ ६॥ (इति गंधर्वतन्त्रे)॥ अशुचिर्वा शुचिर्वापि गच्छंस्तिष्ठन् स्वपन्नपि। मन्त्रैकशरणो विद्वान् मनसैव समभ्यसेत्। न दोषो मानसे जापे सर्वदेशेपि सर्वदा॥ ७॥ प्रवासी नृपभक्तौ च प्रजल्पी नियमारतः। नीचसङ्गाच्च लौल्याच्च षड्भिर्मन्त्रो न सिद्धयति॥ ८॥ (इति मन्त्र सिद्धि भाण्डागारे)॥ मैथुनं च तदालापं तद्गोष्ठीमपि वर्जयेत्। कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा॥ ९॥ सर्वत्र मैथुन त्यागं ब्रह्मचर्यं प्रचक्षते। राहश्चैव गृहस्थस्य ब्रह्मचर्यमुदाहृतम्॥ १०॥ ऋतु स्नातासु दारेषु सङ्गतिस्तु विधानतः संस्कृतायां सवर्णायामृतुं दृष्ट्वा प्रयत्नतः॥ ११॥ रात्रौ तु गमनं कार्यं ब्रह्मचर्यं हरेन्न तत्॥ (इति देवी भागवते)॥

टीका - 'मन्त्र महोदधि' में कहा गया है - '१ निश्चय, २ उत्साह, ३ धैर्य, ४ तत्त्वज्ञान-दर्शन, ५ अल्प-भोजन तथा ६ सङ्ग-त्याग - इन ६: उपायों द्वारा मन्त्र सिद्ध होता है ॥ ३॥ 'कुल प्रकाश तन्त्र' में कहा गया है - 'उपदेश के सामर्थ्य, गुरु की प्रसन्नता एवं मन्त्र के प्रभाव तथा भक्ति के द्वारा मन्त्र की सिद्धि होती है ॥ ४॥ 'शिव-तन्त्र' में कहा है - 'चित्त-निग्रह, शौच, मौन, मन्त्रार्थ-चिन्तन, अचंचलता और अनिर्वेद अर्थात् किसी की निन्दा न करना - ये सब मन्त्र-सिद्धि के कारण हैं ॥ ५॥ गन्धर्व तन्त्र में कहा है - 'योगी मनुष्य भी यदि नित्य अभ्यास करता रहे तो सिद्धि प्राप्त कर लेता है। अभ्यासी व्यक्ति की सभी कामनाएँ इस संसार में पूर्ण होती हैं ॥ ६॥ विद्वान् व्यक्ति पवित्र अथवा अपवित्र अवस्था में, चलते या बैठने की स्थिति में, सुषुप्त अथवा जाग्रत अवस्था में, एक मात्र मन्त्र की शरण होकर मन से मन्त्र का अभ्यास करता रहे। मन्त्र के नित्य मानस-जप में कोई दोष नहीं होता ॥ ७॥ 'मन्त्र सिद्धि भाण्डागार' के अनुसार - 'प्रवासी, बहुभोजी, प्रजल्पी (बहुत बोलने वाला), नियम का पालन न करने वाला, नीचों का सङ्ग करने वाला तथा लालची - इन ६ प्रकार के दोषों वाले मनुष्य का मन्त्र सिद्ध नहीं होता ॥ ८॥ 'देवी भागवत' में स्त्री-भोग के परित्याग का महान् फल इस प्रकार बताया गया है - 'मन्त्र-साधक को सभी अवस्थाओं में मन, वचन तथा कर्म से स्त्री से वार्तालाप तथा मिलना तक छोड़ देना चाहिए ॥ ९॥ सर्वत्र मैथुन का त्याग ही ब्रह्मचर्य कहा जाता है। गृहस्थ राजा के लिए भी ब्रह्मचर्य-पालन के लिए कहा गया है ॥ १०॥ ऋतु-स्नान के बाद विधानानुसार ही स्त्री-संगम करना चाहिए, वह भी प्रयत्न पूर्वक संस्कार-सम्पन्ना सवर्णा स्त्री से अन्य

को देखकर वनिता के समक्ष गमन करने से ब्रह्मचर्य का नाश नहीं होता ॥ ९१॥

व्यासादीनामपि कुवृत्तेः कृतः स्त्री संगतो ध्रुवा । दुर्लभः पुरुषाणां तु निर्विकल्पेन्द्रिय निग्रहः ॥ ९२॥ विषयेभ्यस्तु सर्वेभ्यः स्त्रीरूपविषयो महान् । पुमांसं मोहयत्येव विरक्तमपि सत्वरम् । विषयेभ्यो निवृत्तिश्चेज्जितं तेनेन संशयः ॥ ९३॥ (इति शिव रहस्ये) ॥ पुरश्चरणे वणिग्दत्तं वर्जयेत् ॥ वणिग्दत्तेन वित्तेन तनुः पः पोषयिष्यति । भुक्त्वा स नरकं घोरं प्रयात्येव न संशयः ॥ ९४॥ (अथ योगिनी हृदये) ईश्वर उवाच- सर्वहिंसा विनिर्मुक्ता, सर्वप्राण हिते रताः । सोऽस्मिन्नास्त्रेधिकारी स्यात्तदन्ये भ्रष्ट साधकाः ॥ ९५॥ (अथ कुलार्णवे) देव्युवाचः- कुलेश श्रोतुमिच्छामि पुरश्चरण लक्षणम् । स्थानाहारादिभेदेन वद मे परमेश्वर ॥ ९६॥ ईश्वर उवाच- शृणु देवि प्रवक्ष्यामि यन्मा त्वं परिपृच्छसि । तस्य श्रवणमात्रेण मन्त्रतत्त्वं प्रकाशते ॥ ९७॥ जपपूजात्परो मंत्रो नापरोस्तीह कश्चन । तस्माज्जपेन धर्मार्थकाममोक्षं च साधयेत् ॥ ९८॥ सर्व पादान् परित्यज्य मन्त्रपादं समाचरेत् । आलस्य जीवे दोषाश्च नियमादि क्रमोद्भवाः ॥ ९९॥ ज्ञानाज्ञान कृता. सर्व पुण्यप्रदा भवन्ति ये । संसारे दुःख बहुले यदीच्छेत्सिद्धिमात्मनः ॥ 200॥ पञ्चाङ्गोपासनेनैव मन्त्रजापी सुखं व्रजेत् । मन्त्रं यन्त्रं पञ्जरं च स्तोत्रं नाम सहस्रकम् ॥ २०१॥ पूजा त्रैकालिकी नित्यं जपस्तर्पणमेव च । होमो ब्राह्मण भुक्तिश्च पुरश्चरण मुच्यते ॥ २०२॥ यथाङ्गं च विदधीत तत्संख्या दशगुणं जपम् । कुर्यादि त्रिचतुः पञ्चसंख्यं वा साधकः क्षिप्रे ॥ २०३॥ कुर्वीत साङ्गसिद्ध्यर्थी तदशक्तेन भक्तितः । सर्वदाङ्गविहीनस्य मन्त्री नेष्टमवाप्नुयात् ॥ २०४॥

टीका - 'शिव-रहस्य' में लिखा है — व्यास आदि दुराचारियों द्वारा भी प्रसन्नता पूर्वक स्त्री-संग किया गया है, तब (सामान्य) पुरुषों के लिए तो नित्य इन्द्रिय-निग्रह करना अत्यधिक कठिन है ॥१२॥ सब विषयों में स्त्री रूपी विषय महान् है। यह स्त्री रूप विरागी पुरुषों को भी शीघ्र मोहित कर लेता है। 'जो मनुष्य विषयों से निवृत्ति पा ले, उसने जैसे संसार को ही जीत लिया है' - इसमें सन्देह नहीं है ॥१३॥ 'योगिनी हृदय' में शिवजी ने कहा है - 'जो मनुष्य सब प्रकार की हिंसाओं से मुक्त तथा सब प्राणियों के हित में संलग्न हो, वही इस शास्त्र का अधिकारी है, अन्य लोग तो भ्रष्ट-साधक ही हैं ॥१४॥ 'कुलार्णव' ग्रंथ के पञ्चम खण्ड के पन्द्रहवें उल्लास में कहा गया है - 'देवी बोली - हे कुलेश! मैं पुरश्चरण का लक्षण सुनना चाहती हूँ। हे परमेश्वर! आप मुझे स्नान-आहार आदि का भेद बताइये ॥१५॥ शिवजी बोले - 'हे देवि! सुनो, तुमने जो कुछ पूछा है, उसके श्रवण मात्र से ही मन्त्र-तत्त्व का प्रकाश होता है ॥१६॥ जप-यज्ञ से श्रेष्ठ यज्ञ इस संसार में और कोई नहीं है। अतः जप द्वारा ही धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष की सिद्धि करनी चाहिए ॥१७॥ सब पापों को त्याग कर, केवल मन्त्र-पाद का ही आश्रय लेना चाहिए। बाला से लेकर सामान्य-जीव तक को ज्ञान अथवा अज्ञान के कारण नियमोल्लंघन से उत्पन्न जो दोष लगे हों, वे सब जप से नष्ट हो जाते हैं। हे प्रिये! दुःख से भरे इस संसार में यदि कोई अपनी सफलता चाहता है तो पञ्चाङ्गोपासना द्वारा मन्त्र-जप करने से उसे सुख प्राप्त होता है ॥१८-२०॥ मन्त्र-मन्त्र, पंजर, सहस्रनाम, तीनों काल की संख्या, नित्य-जप, पश्चि-होम तथा तर्पण के लक्षण

पुरश्चरण' कहे जाते हैं ॥ 21-22॥ जो-जो अङ्ग कहे गये हैं, उनमें से जितने की हानि (कमी) हो, उससे दोगुनी अधिक संख्या में मन्त्र-जप करना चाहिए। हे प्रिये! साङ्ग (सम्पूर्ण) सिद्धि के लिए साधक को तीन गुना, चारगुना अथवा पाँच गुना जप करके हीन-अंगों की पूर्ति करनी चाहिए॥ 23॥ इसमें अशक्त होने पर, भक्ति-सहित यथाशक्ति जप करना चाहिए। अङ्ग-विहीन पुरश्चरण से साधक को कभी इष्ट-सिद्धि नहीं मिलती ॥24॥

सम्यक् सिद्धैकमन्त्रस्य पञ्चाङ्गं सेवनेन च। सर्वे मन्त्राश्च सिद्ध्यन्ति तत्प्रभावात्कुलेश्वरि ॥25॥ उपदेशस्य सामर्थ्यात्तथा गुरोश्च प्रभावतः। मन्त्रप्रतापाद्भक्तेश्च मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥26॥ सिद्धमन्त्रं गुरोर्लब्ध्वा मन्त्रोयं शीघ्रसिद्धये। पूर्वजन्मकृताभ्यासान्मन्त्रोयं शीघ्रसिद्धदः ॥27॥ दीक्षापूर्वं कुलेशानि पारम्पर्यक्रमागतम्। न्यासलब्धं तु यन्मन्त्रं सच्चसिद्धं न संशयः ॥28॥ मासमात्रं जपेन्मन्त्रं भूर्जलिप्यक्षरसम्पुटम्। क्रमोत्क्रमात्सहस्रं तु तस्य सिद्धो भवेन्मनुः ॥29॥ मण्डलं भूर्जयेन्मन्त्रं मातृकाक्षरसम्पुटम्। अनुलोमविलोमेन मन्त्रसिद्धिः प्रजायते ॥30॥ विषदाक्षरसंयुक्तं मातृकाक्षरसम्पुटम्। क्रमोत्क्रमं तु तज्जप्त्वा मासात्सिद्धो भवेन्मनुः ॥31॥ मातृकाजपमात्रेण मन्त्राणां कोटिकोटयः। जागृताः स्युर्न सन्देहो यत्तत्सर्वं तदुद्भवम् ॥32॥ अनेन कोटिमन्त्रेण चित्तव्याकुलकारकम्। मन्त्रगुरुकृपाव्याप्तमेकं स्यात्सर्वसिद्धिदम् ॥33॥ यदोच्चया श्रुतं मन्त्रं छद्मनाप्यच्छलेन वा। यस्य स्थितं च वाग्द्वयस्तं तज्जपेन व्यनर्थकृत ॥34॥ पुस्तके लिखितान्मन्त्रानालोक्य प्रजपन्ति ये। ब्रह्महत्यासमं तेषां पातकं परिकीर्तितम् ॥35॥

टीका- हे कुलेश्वरि! भलीभाँति पठ-चाप- सेवन से एक मन्त्र के सिद्ध होजाने पर, उसके प्रभाव से सभी मन्त्र सिद्ध होजाते हैं ॥२५॥ उपदेश के सामर्थ्य, श्रीगुरु के प्रभाव मन्त्र के प्रताप तथा भक्ति द्वारा मन्त्र की सिद्धि होती है ॥२६॥ गुरुद्वारा जाप्त किया गया सिद्ध-मन्त्र शीघ्र सिद्धि देता है। जिस मन्त्र का पूर्व-जन्म में अभ्यास किया गया हो, वह भी शीघ्र सिद्धि देता है ॥२७॥ हे कुलेश्वरानि! परम्परा क्रम से दीक्षा-जाप्त मन्त्र भी शीघ्र सिद्धि देता है- इसमें सन्देह नहीं है ॥२८॥ भूत-लिपि-वर्ण से सम्पुटित मन्त्र का एक महीने तक एक हजार की संख्या में क्रम तथा उत्क्रम विधि से जप करने पर, वह सिद्ध होजाता है ॥२९॥ मातृकाक्षर से सम्पुटित मन्त्र का अनुलोम-विलोम क्रम से, मण्डल में प्रजप्त करके जप करने से सिद्धि जाप्त होती है ॥३०॥ तिरेसठ अक्षरों से युक्त मातृका-वर्णों से सम्पुटित मन्त्र को क्रमोत्क्रम से एक मास तक जपने से मन्त्र-सिद्धि मिलती है ॥३१॥ मातृका के जप मात्र से ही कोटि-कोटि मन्त्र जागृत हो जाते हैं- इसमें सन्देह नहीं है, क्योंकि सभी मन्त्र उसीसे उत्पन्न हुए हैं ॥३२॥ करोड़ों मन्त्र चित्त को व्याकुल करने वाले हैं, परन्तु गुरु की कृपा से व्याप्त एक अक्षर वाला मन्त्र भी सर्वार्थ सिद्धि देता है ॥३३॥ अपनी इच्छा से अथवा धन-दम्भ से सुने गये अथवा जिसका जप करते समय वाणी लड़खड़ा गई हो, ऐसे मन्त्र अनधिकारक होते हैं ॥३४॥ पुस्तक में लिखे हुए मन्त्र को देख कर, जो व्यक्ति उसका जप करता है, उसे जगने वाला पाप ब्रह्महत्या के समान कहा गया है ॥३५॥

वचसा वा मनु पठेत् । उभयोर्निष्फलं देवि भिन्नभाण्डोदकं यथा ॥३६॥ शाणोल्लेखनेन
शस्त्राणि यथा स्फूर्तिमन्ति वै ॥ मन्त्राश्च स्फूर्तिमापान्ति संस्कारैर्दशभिस्तथा ॥३७॥ भक्ष्यं हविष्यं
शाकादि हविष्याणि फलं पयः । मूलं सक्तुर्घृतान्नं च ह्यष्टान्येतानि मन्त्रिणां । यथान्नपानपूरणस्य
कुरुते धर्मसञ्चयम् ॥३८॥ अन्नदातुः फलस्यार्द्ध कर्तुश्चार्द्धं न संशयः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परान्नं वर्ज-
येत्सुधीः ॥३९॥ पुरश्चरणकर्तुश्च करो दग्धः प्रतिग्रहैः । मनो दग्धं परस्त्रीभिः कार्यसिद्धिः
कथं भवेत् ॥४०॥ मनोन्यत्र शिवोन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः । न सिध्यन्ति वरारोहे लक्षकोटिजपादपि
॥४१॥ वादार्थं पठ्यते विद्या परार्थं क्रियते जपः । ख्यात्यर्थं दीयते दानं कथं सिद्धिर्वरानने ॥४२॥ धना-
र्थं गम्यते तीर्थं दम्भार्थं क्रियते तपः । काम्यार्थं देवतायात्रा कथं सिद्धिर्वरानने ॥४३॥ अनित्येन तु देहेन
न्यासं देवार्चनं जपम् । होमं कुर्वन्ति ये मूढा सर्वं भवति निष्फलम् ॥४४॥ तपोर्चनादिकं सर्वमपवित्रं
भवेत् प्रिये । मलिनाङ्गः पराकेश मुखं दुर्गन्ध संयुतम् ॥ यो जपेत्तं तदा हन्याद्देवता सुप्तगुप्तितम् ॥४५॥

टीका - अब स्नान, आसन, प्राणायाम, न्यास, माला तथा जप के लक्षण बताते हैं । स्तोत्र का मनसा-जप (मन-ही-मन जपना) तथा मन्त्र का वाचिक-पाठ (जोर-जोर से बोलते हुए मन्त्र को जपना) - ये दोनों ही निष्फल होते हैं; जिस प्रकार कि फूटे हुए घड़े में पानी का रखना व्यर्थ रहता है ॥३६॥ जिस प्रकार सान पर चढ़ाने से शस्त्र तेज हो जाते हैं, उसी प्रकार दस संस्कारों से मन्त्र भी स्फूर्तिवान् बन जाते हैं ॥ ३७॥ आठ हविष्य, शाक आदि, फल, दूध, कन्द, सत्तू, मक्खन तथा अन्न - ये आठ वस्तुएँ उचित हैं । अन्न-पान के संचय के लिए साधक को धर्म का

टीका- हे कुलेश्वरि! भलीभाँति पञ्चाङ्ग-सेवन से एक मन्त्र के सिद्ध होजाने पर, उसके प्रभाव से सभी मन्त्र सिद्ध हो जाते हैं ॥२५॥ उपदेश के सामर्थ्य, श्रीगुरु के प्रभाव, मन्त्र के प्रलाप तथा भक्ति द्वारा मन्त्र की सिद्धि होती है ॥२६॥ गुरुद्वारा जाप्त किया गया सिद्ध-मन्त्र शीघ्र सिद्धि देता है। जिस मन्त्र का पूर्व-जन्म में अभ्यास किया गया हो, वह भी शीघ्र सिद्धि देता है ॥२७॥ हे कुलेश्वरि! परम्परा क्रम से दीक्षा-जाप्त मन्त्र भी शीघ्र सिद्धि देता है - इसमें सन्देह नहीं है ॥२८॥ भूत-लिपि-वर्ण से सम्पुटित मन्त्र का एक महीने तक एक हजार की संख्या में क्रम तथा उत्क्रम विधि से जप करने पर, वह सिद्ध हो जाता है ॥२९॥ मातृकाक्षर से सम्पुटित मन्त्र का अनुलोम-विलोम क्रम से, मण्डल में प्रजन करके जप करने से सिद्धि जाप्त होती है ॥३०॥ तिरेसठ अक्षरों से युक्त मातृका-वर्णों से सम्पुटित मन्त्र को क्रमोत्क्रम से एक मास तक जपने से मन्त्र-सिद्धि मिलती है ॥३१॥ मातृका के जप मात्र से ही कोटि-कोटि मन्त्र जागृत हो जाते हैं - इसमें सन्देह नहीं है, क्योंकि सभी मन्त्र उसीसे उत्पन्न हुए हैं ॥३२॥ करोड़ों मन्त्र चित्त को व्याकुल करने वाले हैं, परन्तु गुरु की कृपा से व्याप्त एक अक्षर वाला मन्त्र भी सर्वार्थ सिद्धि देता है ॥३३॥ अपनी इच्छा से अथवा दल-दध से सुने गये अथवा जिसका जप करते समय वाणी लड़खड़ा गई हो, ऐसे मन्त्र अनधिकारक होते हैं ॥३४॥ पुस्तक में लिखे हुए मन्त्र को देख कर, जो व्यक्ति उसका जप करता है, उसे लगने वाला पाप ब्रह्महत्या के समान कहा गया है ॥३५॥

वचसा वा मनु पठेत् । उभयोर्निष्फलं देवि भिन्नभाण्डोदकं यथा ॥३६॥ शाणोल्लीढानि
शस्त्राणि यथा स्फुर्तिमन्ति वै॥ मन्त्राश्च स्फूर्तिमायाति संस्कारैर्दशभिस्तथा ॥३७॥ भक्ष्यं हविष्यं
शाकादि हविष्याणि फलं पयः । मूलं सक्तुर्घृतान्नं च ह्यष्टान्येतानि मन्त्रिणां । यथान्नपानपूगस्य
कुरुते धर्मसञ्चयम् ॥३८॥ अन्नदातुः फलस्यार्द्ध कर्तुश्चार्द्ध न संशयः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन परान्नं वर्ज-
येत्सुधीः ॥३९॥ पुरश्चरणकर्तुश्च करो दग्धः प्रतिग्रहैः । मनो दग्धं परस्त्रीभिः कार्यसिद्धिः
कथं भवेत् ॥४०॥ मनोन्यत्र शिवोन्यत्र शक्तिरन्यत्र मारुतः । न सिध्यन्ति वरारोहे लक्षकोटिजपादपि
॥४१॥ वादार्थं पठ्यते विद्या परार्थं क्रियते जपः । ख्यात्यर्थं दीयते दानं कथं सिद्धिर्वरानने ॥४२॥ धना-
र्थं गम्यते तीर्थं दम्भार्थं क्रियते तपः । कामार्थं देवतायात्रा कथं सिद्धिर्वरानने ॥४३॥ अनित्येन तु देहेन
न्यासं देवार्चनं जपम् । होमं कुर्वन्ति ये मूढा सर्वं भवति निष्फलम् ॥४४॥ तपोर्चनादिकं सर्वमपवित्रं
भवेत् प्रिये । मलिनाङ्गः पराकेश मुखं दुर्गन्धसंयुतम् ॥ यो जपेत्तं तदा हन्याद्देवता सुकुहुप्सितम् ॥४५॥

टीका – अब स्नान, आसन, प्राणायाम, न्यास, माला तथा जप के लक्षण बताते हैं । स्तोत्र का मनसा-जप (मन-ही-मन जपना) तथा मन्त्र का वाचिक-पाठ (जोर-जोर से बोलते हुए मन्त्र को जपना) – ये दोनों ही निष्फल होते हैं; जिस प्रकार कि फूटे हुए घड़े में पानी का रखना व्यर्थ रहता है ॥३६॥ जिस प्रकार 'सान' पर चढ़ाने से शस्त्र तेज हो जाते हैं, उसी प्रकार दस संस्कारों से मन्त्र भी स्फूर्तिवान् बन जाते हैं ॥ ३७ ॥ आहार्य हविष्य, शाक आदि, फल, दूध, कन्द, सत्तू, मक्खन तथा अन्न – ये आठ वस्तुएँ उचित हैं । अन्न-पान के संचय के लिए साधक को धर्म का

संचय करना चाहिए ॥ ३८ ॥ अन्न देने वाले को अच्छा तथा पुरश्चरण करने वाले को अच्छा फल प्राप्त होता है - इसमें सन्देह नहीं है । अतः सुधी - साधक को चाहिए कि वह सभी उपलब्धों से परायें अन्न का त्याग करे ॥ ३९ ॥ पुरश्चरण करने वाले का दाह दान लेने से जल जाता है तथा मन पर - स्त्रियों के ध्यान में लगाने से जल जाता है, फिर कार्य - सिद्धि कैसे होगी ?॥ ४० ॥ जिसका मन कहीं हो, शिव कहीं हो, शक्ति कहीं हो, प्राणवायु कहीं हो, हे श्रेष्ठ सुन्दरी ! ऐसे व्यक्ति का मन्त्र करोड़ों की संख्या में जपने पर भी सिद्ध नहीं होता ॥ ४१ ॥ वाद - विवाद के लिए की गई विद्या, दूसरे के लिए किया गया जप औषधि के लिए किया गया दान, हे वरानने ! ये कभी सिद्धि नहीं देते ॥ ४२ ॥ धन - लाभ के लिए की जाने वाली तीर्थ - यात्रा, दम्भ - प्रदर्शन के लिए किया गया तप एवं कामना - पूर्ति के लिए देव - यात्रा, हे वरानने ! तुम्हीं बताओ कि इनसे सिद्धि कैसे मिलेगी ?॥ ४३ ॥ जो मूर्ख मनुष्य अनित्य - देह से न्यास, देवार्चन, जप तथा होम करते हैं, वह सब निष्फल हो जाता है ॥ ४४ ॥ हे प्रिये ! जो साधक मलिन - अङ्ग तथा केश एवं दुर्गन्धयुक्त मुख रहते हुए जप करता है, उस निन्दित व्यक्ति को देवता ही मार डालते हैं ॥ ४५ ॥

भूशय्यां ब्रह्मचर्यं च त्रिकालं देवतार्चनम् । नैमित्तिकार्चनं देवस्तुतिं विश्वासमाश्रयेत् ॥ ४६ ॥ पुरश्चरणं पुरश्चरणं तावन्नैव न्यूनाधिकं क्वचित् । एवं जपं समाप्यान्ते दशांशं होममाचरेत् ॥ ४७ ॥

मासं त्यजेच्चैव जपकाले सदा सुधीः ॥ ५०॥ स्त्री शूद्र भाषणं निद्रां ताम्बूलं शयनं दिवा। प्रतिग्रहं
दृत्यगीते कौटिल्यं वर्जयेत्सदा ॥५१॥ इति मन्त्र महोदधौ ॥ लवणं पललं चैव क्षारं क्षौद्रं रसा-
न्तरम्। माषमुद्गमसूरांश्च कोद्रवांश्चणकानपि ॥५२॥ असद्भाषणमन्याय्यं वर्जयेदन्यपूजनम्। बिना
श्रमोचितं नित्यमथ नैमित्तिकं चरेत् ॥५३॥ ताम्बूलं गन्धलेपं च पुष्पधारणमेव च। मैथुनं तत्कथा-
लापं तद्गोष्ठीं परिवर्जयेत् ॥५४॥ असङ्कल्पित कृत्यं च त्यक्तवेदित भोजनम्। न छिद्रान्नदर रोमाणि न
स्पृशेच्चदमङ्गलम् ॥५५॥ नग्नो वस्त्रो जपं कुर्यादृोमं दानं प्रतिग्रहम्। सर्वं तद्राक्षसं विद्याद्बहिर्जानु च
पाकृतम् ॥५६॥ न पदा पादमाक्रम्य तथैव हि पदा करौ। न चासमाहितमना न च संध्यामतिक्रमेत् ॥५७॥
न च चंक्रमणेश्चैव च पार्श्वं चावलोकयेत्। न प्रवृत्तो न जल्पंश्च न प्रावृतशिरास्तथा। ५८॥ इति मन्त्रमहो. दधौ)

टीका- 'मन्त्र महोदधि' के अनुसार- 'भूमि पर शयन करना, ब्रह्मचर्य-
पालन, त्रिकाल-देवार्चन, नैमित्तिक-पूजन देव-स्तुति तथा विश्वास का आश्रय लेकर ॥ ४६॥ प्रतिदिन
एक समान संख्या में जप करना चाहिए, कम या अधिक नहीं। इस प्रकार जप का समर्पण करने के बाद
जप का दशांश होम करे ॥ ४७॥ तत्तत्कल्प में वर्णित द्रव्यों द्वारा आधान करे। मन्त्रज्ञ को चाहिए कि
मूल-मन्त्र से षडङ्ग-प्राणायाम करे ॥ ४८॥ रात्रि में हविष्य का भोजन करे। तैल मर्दन न करके तीन बार
स्नान करना चाहिए। जम्हाई, आलस्य एवं थूकना, क्रोध करना, बाँव फैलाना एवं अन्य भाषा बोलना - सुधी-
साधक को जप-काल में यह सब छोड़ देने चाहिए ॥ स्त्री तथा शूद्र से वार्तालाप करना, अधिक सोना, ताम्बूल
(पान) खाना, दिन में सोना, दान लेना, नाचना-गाना एवं कुटिलता - इन सबको सदा के लिए छोड़ दे ॥ ४९-५१॥

'तन्त्रान्तर' में कहा गया है – नमक, मांस, क्षार, शहद, अन्य प्रकार के रस, उड़द, मूँग, मसूर, कोदों, चना ॥ ५२॥ असत्य-भाषण, अन्याय व अन्य देवताओं की पूजा – इन सबको त्याग दे। बिना थकान के नित्य तथा नैमित्तिक कर्मों को करता रहे॥ ५३॥ ताम्बूल-भक्षण, गन्ध-लेप, पुष्प-घ्राण, मैथुन तथा उसकी चर्चा एवं गोष्ठी त्याग दे ॥ ५४॥ असंकल्पित-कृत्य तथा देवता को बिना चढ़ाया हुआ भोजन न करे। नख बालों को न काटे। अमाङ्गलिक-वस्तुओं का स्पर्श न करे॥ ५५॥ गीले-वस्त्रों से जप न करे। होम, दान, प्रतिग्रह तथा दोनों हाथों को दोनों जाँघों के बाहर रख कर जो कार्य किया जाता है, उस सबको राक्षसी-कृत्य समझना चाहिए ॥ ५६॥ एक पाँव को दूसरे पाँव पर रख कर अथवा पाँव को हाथ पर रख कर, चंचल मन से अथवा दूसरों को सुनाते हुए मन्त्र का जप साधक को नहीं करना चाहिए ॥ ५७॥ टहलते हुए, अथवा अगल-बगल देखते हुए जप नहीं करना चाहिए। क्रुद्ध काम करते हुए, बातचीत करते हुए तथा सिर को ढाँपे हुए भी जप नहीं करना चाहिए ॥ ५८॥

<u>अथ दिक्कादि दोष निवारण विधि</u> – पतितानामन्त्यजानां दर्शने भाषणे कृते। श्रुतेऽशौचानुगमने जृम्भणे जपमुत्सृजेत् ॥१॥ तथाचम्य च तत्पादौ प्राणायामं षडङ्गम् । कृत्वा-चम्य जपेच्छेषं पठ्ठा सूर्यादि दर्शनम् ॥२॥ (इति योगिनी हृदये) ॥ सकृदुच्चरिते शब्दे प्रणवं समुदीरयेत्। प्रोक्ष्य पामर शब्देषि प्रणवं सकृदुच्चरेत् ॥३॥ (इति तन्त्रान्तरे) ॥ व्याहरेद्वैष्णवं मन्त्रं स्मरेद्वा विष्णुमव्यय-म् ॥४॥ श्रुते तिष्ठीनने चैव दन्तोच्छिष्टे तथाक्षते। पतितानां च सम्भाषे कर्णं च दक्षिणं स्पृशेत् ॥५॥

टीका-अब अनुष्ठान के समय छींक आदि का दोष हटाने की विधि को बताया जाता है। 'योगिनी-हृदय' के अनुसार- 'पतितों तथा अन्त्यजों के दर्शन एवं उनसे वार्तालाप करने पर, छींक आने, अधोवायु के निकलने एवं जँभाई आने पर जप को छोड़ देना चाहिए ॥१॥ फिर आचमन करके षडङ्ग प्राणायाम करने के बाद अथवा सूर्य-दर्शन करने के बाद ही जप को पूरा करना चाहिए ॥२॥ अन्य तन्त्रों में कहा है- मन्त्र-जप के समय अचानक ही किसी अशुद्ध का उच्चारण हो जाए तो एकबार प्रणव (ॐ) का उच्चारण करना चाहिए' ॥३॥ 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में कहा गया है- 'वैष्णव मन्त्र (ॐ) का उच्चारण करे अथवा विष्णु का ध्यान करे ॥४॥ छींक आने, थूकने, दाँत की झूठन निकालने, असत्य बोलने तथा पतितों से बातचीत करने पर अपने दाँये कान का स्पर्श करना चाहिए ॥५॥ अग्नि, जल, वेद, चन्द्रमा, सूर्य तथा वायु- ये सभी ब्राह्मण के दाँये कान में निवास करते हैं ॥६॥

जपकाले यदा पश्येदशुचिं मन्त्रवित्तमः। प्राणायामं तदा कुर्यात्ततः शेषं समाचरेत् ॥७॥ यदा चैव पठेन्मन्त्री स्वप्नमध्ये शुचिः पुनः। आचम्य प्रयतो भूत्वा न्यासं पूर्ववदाचरेत् ॥८॥ (इति सनत्कुमार संहितायाम्)॥ अथ पुरश्चरणे सूतकनिर्णयः। विनियोगं समारभ्य यथाशक्ति समाचरेत् पुरश्चरण मध्ये तु सूतकं नैव विद्यते ॥९॥ अथ सूतक निवृत्तिः। जात सूतक मादौ स्यादन्ते वैमृत सूतकम्। सूतकद्वय निर्मुक्तः स मन्त्रः सर्व सिद्धिदः ॥१०॥ तस्माद्देवि प्रयत्नेन ध्रुवेण पुटितं ध्रुवम्। अष्टोत्तरशतं वापि सप्तवारं जपेदतः। जपान्ते च ततो जप्त्वा चतुर्वर्ग फलाप्तये ॥११॥ तत्रैवः ब्रह्म बीजं मनौ दत्त्वा

चाधनो च महेश्वरि ! सप्तवारं जपेन्मन्त्री सूतकद्वय मुक्तये ॥१२॥

टीका - 'सनत्कुमार संहिता' में कहा गया है - ' मन्त्र-विद् साधक यदि जप-काल में किसी अपवित्र-वस्तु को देखले तो प्राणायाम करने के बाद ही शेष जप को पुनः प्रारम्भ करे ॥७॥ यदि मन्त्र-साधक स्वयं ही अपवित्र-अवस्था में जप करना प्रारंभ कर दे तो उसे आचमन करना चाहिए तथा शान्त होकर पुनः पूर्ववत् न्यास करना चाहिए ॥८॥ अब पुरश्चरण में सूतक सम्बन्धी विचार कहते हैं - विनियोग प्रारंभ करके जो साधक यथाविधि विधि के अनुसार पुरश्चरण है, उसे सूतक नहीं लगता ॥९॥ पुरश्चरण के आदि में जात-सूतक तथा अन्त में मृत-सूतक लगता है, इन दोनों सूतकों से मुक्त मन्त्र ही सर्वसिद्धि दायक होता है ॥१०॥ हे देवि ! ध्रुव (ॐ) से पुटित ध्रुव (ॐ) का (ॐ ॐ का) एक सौ आठ अथवा केवल सात बार जप करने के बाद ही चतुर्वर्ग प्राप्ति के लिए मन्त्र-जप करना चाहिए ॥११॥ हे महेश्वरि ! अन्त-बीज (ॐ) को मन्त्र के आदि तथा अन्त में लगाकर, दोनों सूतकों की निवृत्ति के लिए सात बार जप करना चाहिए ॥१२॥

अथ गायत्री-जप विधानम् - सर्वे शाक्ता द्विजाः भोक्ता न शैवाः न च वैष्णवाः । आदिदेवी मुपासते गायत्रीं वेदमातरम् ॥ तस्मादादौ प्रयत्नेन गायत्री प्रयुतं जपेत् ॥१॥ (इति मन्त्र महोदधौ ;) ॥ यस्य कस्यापि मन्त्रस्य पुरश्चरणमारभेत् । व्याहृति त्रय संयुक्तां गायत्रीं त्रयुतं जपेत् । विना जप्त्वा तु गायत्रीं तत्सर्वं निष्फलं भवेत् ॥२॥ (इति तन्त्रान्तरे) ॥ हविष्येणैव भोक्तव्यं क्षौरं तथा देह विशोधनम् । प्रातः स्नात्वार्क सान्निध्ये जपेत्त्रीणि सहस्रकम् ॥३॥ त्रिसहस्रं सदा सन्ध्यं वा जपेदयुतं

-त्तरं शुचिः । ज्ञाताज्ञातस्य यागस्य क्षम्यर्थं पुरुषं ततः ॥ ४॥ (इति शाक्तानन्दतरङ्गिण्याम्) ॥
संकल्पो मानसो देवि चतुर्वर्ग फलप्रदः । अतएव महेशानि संकल्पो मानसः स्मृतः ॥ ५॥ स्थूलो
हि पार्थिवेशानि स्थूलत्वो व्यर्थ उच्यते । संकल्पेन विना देवि यत्किञ्चित् कुरुते सुधी ॥ ६॥ व्यर्थमेव
हि देवेशि तत्सर्वं मानसेन च ॥ ७॥ (इति बीजार्णवे तन्त्रे षोडश पटले:) ॥ अथ देवता पञ्चाङ्ग निर्णयः
पटलं पद्धतिर्वर्म तथा नाम सहस्रकम् । स्तोत्राणि चेति पञ्चाङ्गं देवताराधने स्मृतम् ॥ ८॥ कवचं
देवता गात्रं पटलं देवता शिरः । पद्धतिर्देवहस्तौ तु मुखं स्याद्देवकं स्मृतम् ॥ ९॥ (इति पुरश्चरण-चन्द्रि-
कायाम्) ॥ अथ पञ्चाङ्गोपासना निर्णयः ॥ जप्त्वा मन्त्री मन्त्रराजं हुत्वा देवे यथांशतः । तर्पयेत् दशांशेन
मार्जयेत् तद्दशांशतः ॥ १०॥ भोजयेत् तद्दशांशेन मन्त्रसिद्धिर्भवेद्ध्रुवम् । जीवहीनो यथा देहो सर्वकर्मसु न क्षमः ।
पुरश्चरण हीनोयं तथा मन्त्रः प्रकीर्तितः ॥ ११॥ (इति देवी रहस्ये ॥ अथ ग्रहणस्पर्शकाल निर्णयं ॥
चक्षुषा दर्शनं राहोर्यत्तद्ग्रहणमुच्यते । तत्र कर्माणि कुर्वीत गणना मात्रतो न हि ॥ १२॥

टीका - अब पुरश्चरण के प्रारंभ में गायत्री-जप की आवश्यकता के विषय में कहते हैं । 'मन्त्र महोदधि' में लिखा है - सभी शाक्त 'द्विज' हैं, परन्तु शैव और वैष्णव द्विज नहीं हैं; क्योंकि शाक्त ही आदि-देवी वेद-माता गायत्री की उपासना करते हैं, अतः पुरश्चरण के प्रारंभ में गायत्री-मन्त्र का दस लाख की संख्या में जप करना चाहिए ॥ १॥ अन्य तन्त्र में कहा है - साधक किसी भी मन्त्र का पुरश्चरण क्यों न करे, उसे तीन व्याहृतियों से युक्त गायत्री-मन्त्र का दस हजार की संख्या में जप करना चाहिए । बिना गायत्री-जप के सब कुछ निष्फल होजाता है ॥ २॥

"शाक्तानन्द तरंगिणी" में कहा है - शरीर को शुद्ध करके हविष्य का भोजन करे। प्रातः काल स्नान करने के बाद पाँच सहस्र गायत्री-मन्त्र का जप करे ॥३॥ तीन सहस्र अथवा एक सहस्र आठ की संख्या में गायत्री का जप करना चाहिए। इससे स्नान-अज्ञान पाप नष्ट हो जाते हैं ॥४॥ "ज्ञानार्णव तन्त्र" के सोलहवें पटल में कहा गया है - 'मानसिक सङ्कल्प हे देवि.' चारों फलों को देने वाला है, अतः हे महेशानि! मानस-सङ्कल्प को ही श्रेष्ठ माना गया है ॥५॥ हे परमेश्वरी! स्थूल-सङ्कल्प को व्यर्थ कहा गया है, हे देवि! सुधी-साधक सङ्कल्प के बिना जो भी प्रकट अथवा मानस-कर्म करता है वह सब व्यर्थ सिद्ध होता है ॥६-७॥

अब 'पुरश्चरण चन्द्रिका' के अनुसार देवता के पञ्चाङ्ग निर्णय के सम्बन्ध में बताते हैं - 'पटल, पद्धति, वर्म (कवच), सहस्रनाम तथा स्तोत्र - इन्हें देवोपासना का 'पञ्चाङ्ग' कहा जाता है ॥८॥ कवच देवता का शरीर तथा पटल शिर है। पद्धति को दोनों हाथ तथा सहस्रनाम को मुख कहा गया है ॥९॥ 'देवी-रहस्य तन्त्र' में पञ्चाङ्गोपासना के सम्बन्ध में कहा गया है - 'मन्त्रराज का जप करने के बाद मन्त्र-साधक को चाहिए कि वह जप-संख्या का दशांश होम करे, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन एवं मार्जन का दशांश ब्राह्मण-भोजन कराने से, निश्चित रूप से मन्त्र-सिद्धि होती है। जिस प्रकार जीव-हीन शरीर सभी कार्यों में असमर्थ होता है, उसी प्रकार पुरश्चरणहीन मन्त्र भी निष्फल होता है ॥१०-११॥ अब ग्रहण-स्पर्श-काल के समय कर्म करने के विषय में बताते हैं - जब राहु द्वारा चन्द्रमा अथवा सूर्य का ग्रहण आँखों से दिखाई दे, उस समय उच्चाटन, वश्यीकरण आदि कर्म करने चाहिए। गणना मात्र से नहीं ॥१२॥

अथ पुरश्चरण विधि: एकदा परमेशानि कामाख्यायां महेश्वरि।
दृष्ट्वोपरागं यत्कर्म तच्छृणुष्व वरानने ॥१॥ कुत: स्नानं कुत: सन्ध्या प्राणायाम: कुत: क्रिये।
अर्घशुद्धि कुतो भद्रे कुत: पूजा वरानने ॥२॥ कालातीतभयाद्देवि सर्वं सन्त्यज्य कामिनि। सङ्कल्पं
मानसं कृत्वा जपं कृत्वा वरानने ॥३॥ पञ्चाङ्ग; विधिना देवि सिद्धो भवति नान्यथा। मन्त्र विद्या
महेशानि कवचं स्तव एव च ॥४॥ ध्यानं वा परमेशानि न्यासो वा कमलानने। एकोच्चारेण देवेशि
भवन्ति दश कोटय: ॥५॥ असंख्य: स जपो देवि ग्रहणे सूर्य चन्द्रयो:। तत्कथं परमेशानि क्रियते जप
संख्यकम् ॥६॥ अतएव वरारोहे होमो नास्ति शुचि स्मिते। अभिषेकश्च देवेशि तथा च तर्पणा-
दिकम् ॥७॥ भोजनं च महेशानि नास्ति वै कमलानने। चन्द्र सूर्य ग्रहे देवि पञ्चाङ्ग; नास्ति कामि-
नि ॥८॥ पञ्चाङ्गेन विना देवि सिद्धो भवति नान्यथा॥ प्रथमे प्रहरे देवि चन्द्रग्रासो यदा भवेत्।
चन्द्रग्रहणकालेतु जपयज्ञादिकं चरेत् ॥९॥ दिवसे च यदा भद्रे भास्करग्रहणं भवेत्। रात्रौ भुक्त्वा
च पीत्वा च जपयज्ञादिकं चरेत् ॥१०॥ सर्वेषु विष्णु मन्त्रेषु शिव गणपयो स्तथा। शक्ति मन्त्रो
महेशानि प्रशस्त: सततं जपेत् ॥११॥ संकल्पो यस्तु देवेशि मानसे समुपास्थित:। तं संकल्पं विजानीयाद्
ग्रहणे चन्द्र सूर्ययो: ॥१२॥ तस्मात्तु चञ्चलापाङ्गे; संकल्पं नैव कारयेत्। इति बीजार्णवे तन्त्रे शिवे-
-नैव प्रकाशितम् ॥

टीका - अब पुरश्चरण की विधि कहते हैं। 'बीजार्णव तन्त्र' के सोलहवें पटल में भगवान् शिव ने देवी के प्रति जिस प्रकार कहा है, उसे यहाँ लिखते हैं — " एक बार कामाख्या में

शिवजी ने पार्वती से कहा - 'हे महेश्वरि! हे परमेशानि! हे वरानने! ग्रहण के समय जो कर्म करना चाहिए, उसे सुनो ॥ १॥ (ग्रहण के) समय क्या स्नान, क्या सन्ध्या, क्या प्राणायाम, क्या भूतशुद्धि और पूजा क्या (कैसी) हो। हे देवि! हे कामिनि! ग्रहण का समय बीत जाने के बाद सब कुछ त्याग कर मानस-सङ्कल्प करके, जप करके, पञ्चाङ्ग विधि से मन्त्र सिद्ध होता है, अन्यथा नहीं। हे महेशानि, मन्त्र-विद्या, कवच, स्तव, ध्यान तथा न्यास - एक बार उच्चारण करने से ही दस करोड़ गुने हो जाते हैं ॥ २-५॥ चन्द्रमा तथा सूर्य के ग्रहण के समय ये सब असंख्य हो जाते हैं। हे परमेशानि! तब जप की संख्या का निश्चय कैसे किया जा सकता है? ॥ ६॥ हे महेशानि! हे कमलानने! हे कामिनी! उस समय आसन, भोजन भी नहीं कराया जाता। उस समय होम, अभिषेक तथा तर्पण आदि कुछ नहीं करने पड़ते। उस समय हे देवि! पञ्चाङ्ग भी सम्भव नहीं होता तथा पञ्चाङ्ग के बिना ही सिद्धि होती होती है - इससे अन्यथा कुछ नहीं होता। हे देवि! प्रथम पहर में जब चन्द्र-ग्रहण लगे, उस समय जप तथा यज्ञ आदि करे ॥ ७-९॥ हे भद्रे! जब दिन में सूर्य-ग्रहण लगे, तब रात्रि में स्वा-धीकार जप, यज्ञादि करे ॥ १०॥ सब प्रकार के विष्णु, शिव तथा गणपति मन्त्रों से शक्ति का मन्त्र ही श्रेष्ठ होता है, अतः उसीका निरन्तर जप करना चाहिए ॥ ११॥ हे देवेशि! चन्द्र-सूर्य ग्रहण के समय मन में जो संकल्प मन में उपस्थित हो, उसी को सङ्कल्प समझना चाहिए ॥ १२॥ हे चंचलापांगी! अतः ऐसे समय कोई सङ्कल्प न करे ॥ 'बीजार्णव तन्त्र' में यह बात शिवजी द्वारा प्रकट की गई है ॥ १३॥

ग्रहणेऽर्कस्य चेन्दोर्वा शुचिः पूर्वमुखोऽथिनः। नद्यान्तस्थुड गतस्त्वन्यां नाभि-

मात्रोदके स्थितः ॥१४॥ ग्रहणान्मोक्षपर्यन्तं जपेत्मन्त्रं समाहितः। अनन्तरं दशांशेन क्रमाद्धोमादिकं चरेत्॥१५॥
तदन्ते महतीं पूजां कुर्याद्ब्राह्मणतर्पणम्। ततो मन्त्रप्रसिद्ध्यर्थं गुरुं सम्पूज्य तोषयेत्। एवं च मन्त्र-
सिद्धिः स्याद्देवता च प्रसीदति ॥१६॥ (इति पुरश्चरण चन्द्रिकायाम्)॥ अथ वान्यप्रकारेण पुरश्चर-
-णमिष्यते। अति शुद्धोदकैः स्नात्वा शुचौ देशे समाहितः ॥१७॥ ग्रहणान्मुक्ति पर्यन्तं जपेन्मन्त्रम-
-नन्यधीः। इति कृत्वा न सन्देहो जपस्य फलमाप्नुयात् ॥१८॥ (इति रुद्रयामले)॥ वस्तु ग्रहानुरोधेन
ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। न करोति पुरश्चर्यां नरके स विपच्यते ॥१९॥ (इति तन्त्रान्तरे)॥ अथ वान्यप्रकारेण
पुरश्चरणमिष्यते। सूर्योदयात्समारभ्य यावत्सूर्योदयान्तरम्। तावज्जप्त्वा निरातङ्को मन्त्रः कल्पद्रुमो भवेत्
॥२०॥ (इति देवीरहस्ये)॥ अथ वान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। कृष्णाष्टमीं समारभ्य यावत्
कृष्णाष्टमी भवेत्। सहस्रसंख्याजपेतु पुरश्चरणमिष्यते ॥२१॥ (इति मुण्डमालायाम्)॥ कृष्णां चतु-
र्दशीं प्राप्य नवम्यन्तं महोत्सवे। अष्टमी नवमीरात्रौ पूजां कुर्याद्विशेषतः ॥२२॥ दशम्यां पारणं कुर्यान्म-
त्स्यमांसादिभिर्युतम्। अष्टसहस्रं जपेन्नित्यं अधिकमाप्नुयात्फलम् ॥२३॥ (इति मुण्डमालायाम्)॥ अथवान्य
प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते। अष्टम्यान्च चतुर्दश्यां पक्षयोरुभयोरपि ॥२४॥ सूर्योदयात्समारभ्य यावत्सूर्यो-
-दयान्तरम्। तावज्जप्त्वा निरातङ्कः सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥२५॥ (इति कालीतन्त्रे)॥ अथवान्यप्रकारेण
पुरश्चरणमिष्यते। कुजे वा शनिवारे वा नरमुण्डं समाहृतम् ॥२६॥ पञ्चगव्येन मिलितं चन्दनाद्यैर्विलेख
नैः। निक्षिप्य भूमौ हस्तार्द्रमानतः कानतान्तरे ॥२७॥ तत्र तद्दिवसे रात्रौ सहस्रं यदि साधकः। एकाकी जपते-
न्मन्त्रं स भवेत् कल्पपादपः ॥२८॥

म.

टीका - 'पुरश्चरण चन्द्रिका' में लिखा है - 'सूर्य अथवा चन्द्र ग्रहण के समय पवित्र होकर समुद्र की ओर जाने वाली नदी के नाभि-पर्यन्त जल में खड़ा होकर ॥ १४ ॥ ग्रहण के मोक्ष पर्यन्त पूर्वाभिमुख खड़े रहकर शान्त-चित्त से मन्त्र-जप करे। तत्पश्चात् जप का दशांश होम आदि करना चाहिए ॥ १५ ॥ तदुपरान्त महा-पूजा करके तर्पण एवं ब्राह्मण-भोजन करे। फिर मन्त्र-सिद्धि के लिए गुरु का पूजन कर उन्हें सन्तुष्ट करे। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध होता है तथा देवता प्रसन्न होते हैं ॥ १६ ॥ 'रुद्रयामल' में कहा है - अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण का यह नियम है कि शुद्ध-जल से स्नान करने के उपरान्त पवित्र स्थान में बैठे ॥ १७ ॥ और ग्रहण की मुक्ति तक एकाग्रचित्त होकर मन्त्र-जप करे। ऐसा करने से जप का फल निस्सन्देह प्राप्त होता है ॥ १८ ॥ अन्य तन्त्र में कहा है - जो साधक चन्द्र-सूर्य ग्रहण के समय श्रद्धापूर्वक पुरश्चरण नहीं करता, वह नरक की अग्नि में जलता है ॥ १९ ॥ 'देवी रहस्य' में कहा है - 'अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण की यह विधि है कि सूर्योदय के प्रारम्भ का, अगले सूर्योदय तक निरन्तर जप किया गया मन्त्र कल्पद्रुम की भाँति इच्छित-फलदायक होता है ॥ 20 ॥ 'मुण्डमाला' के अनुसार - 'अन्य प्रकार से पुरश्चरण की विधि यह है कि कृष्णपक्ष की अष्टमी से प्रारंभ करके अगली कृष्णाष्टमी तक एक सहस्र की संख्या में नित्य जप करते रहने से पुरश्चरण सिद्ध होता है ॥ 21 ॥ 'मुण्डमाला' के अनुसार - 'कृष्णपक्ष की चतुर्दशी से आरंभ करके नवमी पर्यन्त जप करे। अष्टमी तथा नवमी की रात्रि में महोत्सव मनाते हुए विशेष पूजा करे। ॥ 22 ॥ फिर दशमी तिथि को मछली-मांस आदि से युक्त भोजन करे। प्रतिदिन शक्तिमाला से युक्त होकर

म.

६: हजार मन्त्रों का जप करना चाहिए ॥ २३॥ 'कालीतन्त्र' के अनुसार – 'अन्य प्रकार से पुरश्चरण की विधि बताते हैं – 'अष्टमीविधिअथवा चतुर्दशी को (किसी भी पक्ष की), एक सूर्योदय से दूसरे सूर्योदय तक निर्भय होकर जप करने से ही साधक सब प्रकार की सिद्धियों का स्वामी हो जाता है ॥ २४-२५॥ 'कालीतन्त्र' के अनुसार – 'अन्य प्रकार से पुरश्चरण की विधि यह है कि मंगलवार अथवा शनिवार को किसी नरमुण्ड को लाकर, उस पर पञ्चगव्य, चन्दन, कपूर आदि का विशेषरूप से लेप करे, फिर वन-भूमि में आधा हाथ गहरा गड्ढा खोद कर, उसमें उक्त नरमुण्ड को गाड़ दे, फिर उसदिन रात्रि के समय उसी स्थान पर अकेला बैठ कर एक हजार की संख्या में मन्त्र-जप करे तो साधक कल्पवृक्ष के समान अर्थात् सभी आकांक्षाओं की पूर्ति करने वाला बन जाता है ॥ २६-२८॥

कर्जे तपसि राधे वा शुक्लपक्षे तु वैष्णवे । एकादश्यान्तु मौने तु अनन्तः कालतुल्यमृतम् ॥ २९ ॥ अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । चतुर्दशीं समारभ्य यावदन्या चतुर्दशी ॥ ३० ॥ तावज्जपेन्मनेर्शानि पुरश्चरणमिष्यते । केवलं जपमात्रेण मन्त्राः सिद्धा भवन्ति हि ॥ ३१ ॥ बलि होमादिदानेन विशेषात्पीठ पूजनात् योगिपीठं महापीठं कामरूपं तथापरम् । तयोरेकतमं पूजं रुद्र देह स्वरूपः ॥ ३२ ॥ (इति चतुपीठ) ॥ अथवान्यप्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । भोगेपि विघ्नराजत्वं मोक्षमार्गो स्वयासरात् ॥ ३३ ॥ अन्येष्वपि च मन्त्रेषु पूर्वोक्तं नवरात्रकम् । जपो मातृकया प्रातः कालान्मध्यंदिनावधि ॥ ३४ ॥ रात्रौ यामसमितः कार्यः पयोमूल फलाशिना । चतुर्थयामे कर्तव्या माला मन्त्रे दशांशतः ॥ ३५ ॥ तिलांश्चाहुतिः दशांशाद्वा अन्येष्वपि हुतं मतम् । दक्षिणा च पयोक्ता च वित्तशाठ्यं न कारयेत् । एवं मन्त्रः प्रयोगार्हो

भवत्येव न संशयः ॥ ३६ ॥ (इति चतुपीठे) ॥ अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । महालक्ष्मीं समारभ्य आमहानवमीश्वरीम् । कृष्णामा नवमी चैव मध्यो ह्यामेर्मनौ स्मृते ॥ ३७ ॥ (इति चतुपीठे) ॥ शारत्काले चतुर्थ्यादिनवम्यन्तं विशेषतः । भक्तितः पूजयित्वा तु रात्रौ तावत्सहस्रकम् । जपेदेव तु विज्ञेयं केवलं निमिरालये ॥ ३८ ॥ अष्टम्यादिनवम्यन्तमुपवासपरो भवेत् । स भवेत्सर्वसिद्धीशो नात्र कार्या विचारणा ॥ ३९ ॥ (इति तन्त्रान्तरे) ॥ अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । पुत्रजन्मोत्सवदिने सूतिकाकुल मन्दिरे ॥ ४० ॥ मल्लिको मूलमन्त्रं स्वं जपेदृक्षादिनावधि । दशांश संस्कृतं मन्त्रं कुर्यात्सिद्धो भवेन्मनुः ॥ ४१ ॥ (इति देवीरहस्ये) ॥ अथवान्य प्रकारेण पुरश्चरणमिष्यते । मृतका शौच दिवसे प्रथमे साधको जपेत् ॥ ४२ ॥ मनुं दशादिनो रात्रौ चीरो भूत्वा यथार्थतः । एकादशाहानि सुधीः कुर्यान्मन्त्रं सुसंस्कृतम् । कर्मणा मनसा वाचा मंत्रः कल्पद्रुमो भवेत् ॥ ४३ ॥ (इति देवीरहस्ये) ॥

टीका - 'चतुपीठ तन्त्र' के अनुसार - 'कार्तिक, फाल्गुन तथा वैशाख मास के शुक्लपक्ष में प्रतिपदा से आरम्भ करके एकादशी तक ग्यारह दिन 'वैष्णव-मन्त्र' का पुरश्चरण करना चाहिए। फाल्गुन मास की प्रतिपदा से चतुर्दशी तक 'शैव-मन्त्र' का पुरश्चरण करना चाहिए ॥ ३६ ॥ अथवा अन्य प्रकार से पुरश्चरण का विधान यह है कि चतुर्दशी से आरंभ करके आगामी चतुर्दशी तक जप का पुरश्चरण करना चाहिए । हे महेशानि! इस विधि से मन्त्र जप मात्र से ही सिद्ध हो जाता है ॥ ३७-३९ ॥ बलि, होमादि दान तथा पीठ-पूजा से मन्त्र सिद्ध होते हैं । योगिपीठ, महापीठ तथा कामरूप पीठ - इनमें से प्रत्येक शिव-शरीर के समान पूज्य हैं ॥ ३२ ॥ 'चतुपीठ' के अनुसार - 'अन्य प्रकार से भी पुरश्चरण

म.

किया जा सकता है- आश्विन, माघ तथा मार्गशीर्ष के महीनों में गणेश जी के मन्त्र का पुरश्चरण इन महीनों की गणेश-चतुर्थी के दिन से आरंभ करना चाहिए ॥ ३३॥ अन्य मन्त्रों का पुरश्चरण नव-रात्रि में करना चाहिए। मातृका से जप करने का समय प्रातः काल से मध्याह्न तक है ॥ ३४॥ दूध तथा फल-मूल का आहार करते हुए रात्रि में चार घड़ी तक पुरश्चरण करे। चौथे प्रहर में, मालामन्त्र के पुरश्चरण में दशांश अथवा विंशांश होम करना चाहिए। अन्य पुरश्चरणों में दशांश होम ही पर्याप्त है। दक्षिणा यथोक्त देनी चाहिए। धन की शठता (कृपणता) न करे। इस प्रकार मन्त्र प्रयोग में लाने योग्य हो जाता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है ॥ ३५-३६॥ 'चतुष्पीठ' के अनुसार- 'अन्य प्रकार से भी पुरश्चरण करने का नियम यह है- 'महालक्ष्मी से लेकर महानवमीश्वरी (दुर्गा) तक चैत्रमास के कृष्ण पक्ष की अमावास्या तथा नवमी प्राप्ति-मन्त्र के लिए श्रेष्ठ कही गई है ॥ ३७॥ मन्त्रतन्त्र में कहा है- 'अन्य प्रकार से पुरश्चरण का विधान इस प्रकार है- शारद ऋतु में चतुर्थी से नवमी तक विशेष रूप से भक्ति पूर्वक पूजा कर, रात्रि के समय जितेन्द्रिय की तिथि की संख्या के आधार पर, उतने ही हजार की संख्या में मन्त्र का जप किसी एकान्त तथा अँधेरे घर में करे ॥ ३८॥ अष्टमी से नवमी तक उपवास रखे। जो साधक ऐसा करता है, वह सभी सिद्धियों का स्वामी बन जाता है- इसमें कोई अन्य विचार न करे ॥ ३९॥ 'देवी रहस्य' में पुत्रजन्मोत्सव के दिन पुरश्चरण करने के संबंध में लिखा है- 'अन्य प्रकार से भी पुरश्चरण किया जा सकता है। पुत्र-जन्मोत्सव के दिन सूतिका-गृह में बैठकर, साधक दस दिन तक मन्त्र का जप करे तो दशांश संस्कार करने पर मन्त्र सिद्ध हो जाता है ॥ ४०-४१॥ 'देवी रहस्य' में यह भी लिखा है- 'अन्य प्रकार से भी पुरश्चरण

म.

इस प्रकार किया जा सकता है - (मृतकाशौच के पहले दिन, रात्रि के समय, स्नान होकर, अर्घ-स्थित मन्त्र का जप करे ॥ ४२ ॥ ग्यारहवें दिन मन, वाणी तथा कर्म से मन्त्र के संस्कार करे) इस विधि से मन्त्र कल्पद्रुम के समान हो जाता है ॥ ४३ ॥

जप मन्त्र-सिद्धि चिह्नाः : चित्तः प्रसादो मनसश्च तुष्टिरल्पाशिता स्वप्नपराङ्मुखत्वम् । स्वप्ने प्रपाण्डवफलं भवति सिद्धरूप चिह्नानि भवन्ति सद्यः ॥ १ ॥ (इति वक्रतुण्ड कल्पे) ॥ ज्योतिः पश्यति सर्वत्र शरीरं वा प्रकाशयुक् । निजं शरीरमथवा देवतामयमेव हि ॥ २ ॥ (इति भैरवी तन्त्रे) ॥ नानाश्चर्यादिहृदय मन्त्रसिद्धिमयानि वै । अन्यानन्द प्रकाश्यानि जप्यक्षेण बहिस्तथा ॥ ३ ॥ जडधीस्तु क्षणे विद्वान् क्षणमस्ति प्रहर्षितः । क्षणं दुन्दुभिनिर्घोषं शृणोत्यन्तरिक्षतः ॥ ४ ॥ क्षणं च मधुरं वाद्यं नानागीत समन्वितम् । आजिघ्रति क्षणं गन्धान् कर्पूरमृगनाभिजात ॥ ५ ॥ उत्पतेन्नं क्षणं व्योम्नि पश्यत्यात्मानमात्मनि । चन्द्रार्क किरण कीर्णं क्षणमालोकयेन्नभः ॥ ६ ॥ गज गोवृषनादांश्च शृणुयाच्च क्षणं द्विज । निर्भराम्बुद संक्षोभं क्षणमाकर्णयन्त्यपि ॥ ७ ॥ तारकाणि विचित्राणि योगिनो नभसि स्थितान् । पश्यन्ति तु दात्मानं च क्षणं मन्त्रजपी सदा ॥ ८ ॥ क्षणं किलकिलारावं हंसबर्हिनदं तथा । क्षणमेवोदकं पश्येत् क्षणं रात्रिं दिनं स्मृति ॥ ९ ॥ रात्रौ दिवसवल्लोकं संपूर्णं क्षणमीक्षते । बलेन परिपूर्णश्च तेजसा भास्करोपमः ॥ १० ॥ पूर्णेन्दु सदृशः कान्त्या गमने विहगोपमः । समेन पुष्टः पीठेन गम्भीरेण मुखेन च ॥ ११ ॥ स्वल्पासेनासम्वृत्तो बहुनापि न बध्यते । विष्णुवद्योरनल्पत्वं भवेत्तन्द्राजयस्तथा ॥ १२ ॥ जप ध्यानगतो मन्त्री न खेदमधिगच्छति ॥ १३ ॥ विना भोजनपानाद्यं पक्षमासादिकं स्मृते । इत्येवमादि-

भिक्षिकैर्महाविस्मय कारिभिः ॥ ३४ ॥ स्वमादीति चिह्नानि यदा पश्यति मन्त्रवित् । सिद्धिं मन्त्रस्य जानीयाद्देवतायाः प्रसन्नताम् । ततो जपेऽधिकं यत्नं प्रकुर्याज्ज्ञानलब्धये ॥ ३५ ॥ (इति नारद पञ्चरात्रे)
मन्त्राराधनशक्तस्य प्रकाशं वत्सरत्रयम् । जायते यदि वा चिह्नं निधनं तस्य नारद ॥ ३६ ॥ नोद्वेगः साधके यावत् कर्मणा मनसा यदि । तृतीयवत्सरादूर्ध्वं स्वप्नं सिध्यति मन्त्रराट् ॥ ३७ ॥ (इति तन्त्रान्तरे) ॥

टीका :- अब मन्त्र-सिद्धि के लक्षणों को बताते हैं। 'वक्रतुण्ड कल्प' में कहा है- १. चित्त की प्रसन्नता, २. मन का संतोष, ३. अल्प भोजन, ४. निद्रा-नाश तथा ५. स्वप्न में जलाशय अथवा पके हुए फलों का दिखाई देना - ये सब मन्त्र के शीघ्र सिद्ध होने के लक्षण हैं ॥ १ ॥ 'भैरवी तन्त्र' में कहा है— मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर सर्वत्र प्रकाश दिखाई देता है अथवा साधक का शरीर ही प्रकाश युक्त हो जाता है अथवा अपना शरीर दैदीप्यमान हो जाता है ॥ २ ॥ 'नारद पञ्चरात्र' में कहा है— 'मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर अनेक प्रकार के आश्चर्यों के अनुभव होते हैं। अन्य आनन्दप्रद आश्चर्य भी कभी कभी बाह्य प्रत्यक्ष रूप में भी दिखाई देते हैं ॥ ३ ॥ क्षण भर में साधक स्वयं को जड़ रूप में अनुभव करता है तो दूसरे ही क्षण चैतन्य तथा प्रहृष्ट अनुभव करने लगता है। कभी अन्तरिक्ष से नगाड़े का शब्द सुनता है तो कभी मधुर-वाद्य एवं अनेक प्रकार के सङ्गीत सुनने लगता है। क्षण भर में कपूर तथा कस्तूरी की सुगन्ध आने लगती है ॥ ४-५ ॥ कभी स्वयं को आकाश में उड़ता हुआ अनुभव करता है तो कभी चन्द्रमा और सूर्य से भरा हुआ आकाश दिखाई देता है ॥ ६ ॥ कभी हाथी, गाय, बैल आदि के शब्द को सुनता है तो कभी जलशीतल बादलों को तेजी से घुमड़ते हुए देखने लगता है ॥ ७ ॥ क्षण भर में विचित्र तारों तथा

योगियों को आकाश में स्थित देखता है तो कभी तेज से जलते हुए सूर्य को देखता है ॥८॥ क्षण भर में मन्मथनी हंस तथा मोरों की मधुर ध्वनियों को सुनता है तो क्षण भर में घने बादलों को देखने लगता है। क्षण में दिन को रात तथा क्षण में रात को दिन की भाँति देखता है ॥९॥ मन्त्र सिद्ध हो जाने पर साधक स्वयं को शक्ति-सम्पन्न, सूर्य के समान तेजस्वी, चन्द्रमा के समान सुन्दर, गति में पक्षी पक्षी के समान तथा समर्थ, पौरुष एवं गम्भीर्य से परिपूर्ण अनुभव कर उठता है (तथा ऐसा ही प्रतीत भी होता है) ॥१०-११॥ वह कभी अन्धेरे उजाले के बंधन में नहीं रह पाता (उसे भय-शूल का वेग भी अधिक नहीं होता तथा उसके शरीर पर झुर्रियाँ भी नहीं पड़ती ॥१२॥ जप-ध्यान में लगे रहने वाले मन्त्रज्ञ को क्लेद की प्राप्ति भी नहीं होती ॥१३॥ हे मुने! वह बिना भोजन-पानी के पक्ष-मास तक रह सकता है। मन्त्र-सिद्धि के आपत्ति निरूपक काल के ये सब प्रारंभिक चिह्न हैं ॥१४॥ मन्त्रवेत्ता जब इस प्रकार के चिह्नों को देखे तो यह समझ ले कि उसे मन्त्र की सिद्धि हो गई है और देवता उस पर प्रसन्न हैं। अतः उसे ज्ञान-लाभ हेतु विशेष प्रयत्न पूर्वक जप करना चाहिए ॥१५॥ 'तन्त्रान्तर' में कहा है— 'हे नारद! मन्त्र-साधक के लिए पहले तीन वर्ष निश्चित रूप से बहुत से विघ्नों से युक्त होते हैं। यदि साधक मन, वचन तथा कर्म से उद्वेग-हीन बना रहे (अर्थात् अधीर न हो तो तीसरे वर्ष के बाद मन्त्रराज स्वयं सिद्ध हो जाता है ॥१६-१७॥

पुरश्चरण-नियम - आमध्याह्नं जपं कुर्यात् उपांशु स्वयं मानसम्। हविष्यं निशि भुञ्जीत निःस्नाय्यम्भः नर्जितः ॥१८॥ त्रयोदश लक्षाणि निष्ठीकृत्य यावद् उत्साहम्। अन्य भावां परेषां च

जपत्काले त्यजेत्सुधीः ॥२॥ स्त्री शूद्र भाषणं निन्दां ताम्बूलं शयनं दिवा। प्रतिग्रहं नृत्यगीते कौटिल्यं वर्जयेत्सदा ॥३॥ भूशय्यां फलचर्म च त्रिकालं देवतार्चनम्। नैमित्तिकार्चनं देवस्तुतिं विश्वास माश्रयेत् ॥४॥ प्रत्यहं प्रत्यहं तावन्नैव न्यूनाधिकं क्वचित्। एवं जपं समाप्यैतो दशांशं होममाचरेत् ॥५॥ (इति मन्त्रमहोदधौ:)॥

टीका - पुरश्चरण के नियमों का एक बार पुनः उल्लेख करते हैं। 'मन्त्र महोदधि' में कहा गया है — 'पुरश्चरण करने वाले व्यक्ति को प्रातःकाल से मध्याह्न काल तक उपांशु अथवा मानस-जप करना चाहिए। वात के समय हविष्यान्न का भोजन करे। तीनों समय स्नान करे, परन्तु अभ्यंग (तैल-मालिश) आदि का सेवन न करे। अशुद्धता, आलस्य, क्रोध, काँख बजाना, अन्यों से बोलना तथा अन्त्यजों को देखना — यह सब कार्य जप-काल में साधक के लिए वर्जित हैं। स्त्री तथा शूद्रों से वार्तालाप, किसी की निन्दा करना, ताम्बूल-भक्षण, दिवा-शयन, दान लेना, याचना, गाना तथा कुटिलता — यह सब साधकों के लिए त्याज्य हैं। प्रतिदिन समान-संख्या में जप करना चाहिए। किसी दिन कम और किसी दिन अधिक संख्या में न करे। इस भाँति निश्चित संख्या में जप की समाप्ति पर, जप का दशांश हवन करना चाहिए। ॥ १-५ ॥

अन्य विषय - मन्त्रों के पुरश्चरण के सम्बन्ध में ज्ञातव्य विषयों का उल्लेख पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। अब हम तन्त्र विषयक अन्य ज्ञातव्यों का सरल हिन्दी भाषा में उल्लेख कर रहे हैं। इन्हें जानने के बाद, इनके अनुसार साधन करने से तान्त्रिक-प्रयोगों की सिद्धि में शीघ्र सफलता प्राप्त होती है।

१. मन्त्र - जो मनन करने वाले व्यक्ति (साधक) की रक्षा करे, उसे 'मन्त्र' कहते हैं।

२. मन्त्र - देवता के चिन्मात्मक स्वरूप को 'मन्त्र' कहा जाता है।

३. तन्त्र - देव-साधन अथवा मन्त्र-प्रयोग के क्रियात्मक रूप को 'तन्त्र' कहते हैं।

४. मन्त्रों के देवता और देवियाँ - वैदिक-काल में ऋषियों ने देवी-देवताओं के दर्शन किये थे। देवताओं की सृष्टि भिन्न प्रकार की है तथा उनकी संख्या भी बड़ी है। देवी-देवताओं को परब्रह्म का अनिर्वचनीय माना जाता है तथा देवियों को उनकी शक्ति। मन्त्र-विद्या में देवियों का महत्त्व सर्वोपरि है, इसी कारण शक्ति की उपासना सर्वोपरि मानी गई है। स्मरणीय है कि देवी-देवताओं के साधन-मन्त्र ऋषियों के हृदय में आविर्भूत हुए थे। देवताओं में गणेश, विष्णु, शिव, राम, कृष्ण, पशुपति, नृसिंह, सूर्य, अघोर, भैरव, पशुपति, क्षेत्रपाल, हयग्रीव, वराह, पक्षिनायक, खेटक, अग्नि, गोपाल, प्रभाव, सुदर्शन, व आग्नेयास्त्र - ईहें कलियुग में शीघ्र सिद्धि दायक माना गया है। देवियों में 'दश महाविद्या' प्रमुख हैं। ये दो कुलों में विभाजित हैं - (१) काली-कुल और श्री-कुल। काली-कुल में - १ काली, २ तारा, ३ षोडशी और ४ - छिन्नमस्ता - इन चार महाविद्याओं की गणना की जाती है। श्री कुल में - १ त्रिपुरा सुन्दरी, २ त्रिपुर भैरवी, ३ बगलामुखी, ४ कमलात्मिका, ५ धूमावती तथा मातङ्गी - ये ६: महाविद्याएँ सम्मिलित हैं। इनके अतिरिक्त - १. रक्तकाली, २. महिषमर्दिनी, ३ त्रिपुरा, ४ दुर्गा तथा ५ प्रत्यङ्गिरा - इन पाँच विद्याओं को भी 'काली-कुल' में ही गिना जाता है तथा १ बाला, २. स्वप्नावती एवं ३ मधुमती - इन तीन विद्याओं की गणना श्री-कुल में की जाती है। लक्ष्मी, उमा, नील सरस्वती, कालरात्रि तथा कर्णपिशाचिनी - इन देवियों तथा

चौंसठ योगिनियों को भी विशिष्ट माना जाता है। दशमहाविद्याएँ आठों वर्णों के लिए सिद्धिदायक कही गई हैं। इस प्रकार दश महाविद्याएँ तथा आठ विद्याएँ — कुल मिलाकर १८ सिद्ध-विद्याएँ मानी गई हैं। इनके अतिरिक्त तन्त्र-ग्रंथों में १ महाभैरव, २ चण्डेश्वर, ३ शूलपाणि, ४ बटुक भैरव, ५ उच्छिष्ट गणपति, ६ बेताल, ७ श्मशान भैरवी, ८ मातंगि भैरव, ९ उन्मत्त भैरवी, १० चण्डिका तथा ११ वाग्मवा आदि को भी मनोभिलाषा पूरक तथा शीघ्र सिद्धिदायक माना गया है।

मन्त्र-ऋषि - जिन ऋषियों ने जिन मन्त्रों का अपनी आत्मा में सर्वप्रथम अनुभव किया, उन्हें उन मन्त्रों का ऋषि कहा जाता है। अधिकांश मन्त्रों के विनियोग में मन्त्र-द्रष्टा ऋषि के नाम का उल्लेख भी पाया जाता है।

मन्त्र-हृद-बीज-शक्ति - प्रत्येक मन्त्र का एक हृद, एक बीज तथा एक शक्ति होते हैं। बीज मन्त्र को विशेष बल प्रदान करता है तथा शक्ति मन्त्र-चैतन्य को धारण किये रहती है। बारम्बार जप करने से मन्त्र-चैतन्य, जोकि मन्त्र में छिपा हुआ रहता है, प्रकट हो जाता है, उस समय साधक को इष्टदेव के दर्शन प्राप्त होते हैं। जिस प्रकार अग्नि को वायु से शक्ति प्राप्त होती है, उसी प्रकार साधक को मन्त्र द्वारा शक्ति प्राप्त होती है। मन्त्र-साधन से साधक को गुप्त एवं प्रत्यक्ष शक्तियों की उपलब्धि होती है, जिनके फलस्वरूप वह अपनी मनोभिलाषाओं की पूर्ति करता है। मन्त्र द्वारा अनुष्ठान किये जाने पर देवता साधक की ओर आकृष्ट होता है तथा उसकी कामनाओं की पूर्ति करता है। मन्त्र के हृद, बीज तथा शक्ति का उल्लेख भी उसके विनियोग-वाक्य में पाया जाता है।

मन्त्र-सिद्ध न होने के कारण - अश्रद्धा और अविश्वास मन्त्र सिद्ध न होने के मुख्य कारण हैं। अन्य कारणों में - (१) विधि-विधान में त्रुटि रहना, (२) अनुचित-कमाई द्वारा उपलब्ध धन से मन्त्रानुष्ठान की सामग्री संचित करना, (३) अधिकारी-गुरु से दीक्षा न लेना तथा (४) पूर्व-जन्म के अशुभ-कर्म - ये सब भी मन्त्र-सिद्धि में बाधक बनते हैं।

मन्त्र की प्राप्ति - केवल पुस्तकीय-ज्ञान के आधार पर साधना करने से मन्त्र सफल नहीं होते। यह नियम सभी शास्त्रीय-मन्त्रों के लिए है। शाबर तथा अन्य मन्त्रों की साधना बिना गुरु-दीक्षा के भी की जा सकती है। तथापि सभी मन्त्रों की, विशेषतः देवी-देवतादि विषयक शास्त्रीय मंत्रों की प्राप्ति गुरु के माध्यम से ही करनी चाहिए। मन्त्र के अधिकारी गुरु तथा शिष्य के संबंध में इस प्रकरण के आरंभ में ही लिखा जा चुका है। मन्त्र-दीक्षा विषयक अन्य बातों का भी उल्लेख वहीं किया गया है। अतः केवल पुस्तकीय-ज्ञान पर मन्त्रानुष्ठान आरंभ न करके किसी सुयोग्य-गुरु से ही मन्त्र प्राप्त करना उचित एवं आवश्यक है। मन्त्र-दीक्षा लेने के बाद सर्वतोभद्र मण्डल, कूर्मचक्र आदि का विचार कर, मन्त्रों के दश-संस्कार (जनन, जीवन आदि) करने चाहिए। इन सबका उल्लेख भी किया जा चुका है। अक्षत-माला, जप, होम आदि के सम्बन्ध में भी पर्याप्त प्रकाश डाला जा चुका है। उनका यथाविधि पालन करना चाहिए।

षट्-कर्म - तान्त्रिक-साधना के ६ कर्म मुख्य माने गए हैं - (१) शान्तिकरण, (२) वश्यीकरण, (३) स्तम्भन, (४) विद्वेषण, (५) उच्चाटन तथा (६) मारण। जिस मन्त्र-प्रयोग से ग्रह-पीड़ा, रोग-पीड़ा, उपसर्ग, कृत्यादि दोषों का निवारण तथा अन्य आदि दोषों की शान्ति हो, उसे शान्ति-कर्म कहते हैं। धन-धान्य, सुख-सौभाग्य की

वृद्धि, यश-लाभ आदि को 'लौकिक-कर्म' कहा जाता है। इनकी गणना भी 'क्रान्ति-काल' के अन्तर्गत ही की जाती है। जिस मंत्र-प्रयोग से स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी आदि को वश में किया जा सके, उस कर्म को 'वशीकरण' कहते हैं। 'आकर्षण' तथा 'मोहन' के प्रयोग भी इसी के अन्तर्गत आते हैं। 'आकर्षण' द्वारा दूरस्थ स्त्री-पुरुष, पशु-पक्षी आदि को आकर्षित कर अपने समीप बुला लिया जाता है तथा 'मोहन' के द्वारा उन्हें सम्मोहित किया जाता है। 'स्तम्भन' के द्वारा मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदि की गतिविधियों को स्तम्भित कर दिया जाता है अर्थात् रोक दिया जाता है। 'वृम्भण' के प्रयोग भी इसी के अन्तर्गत आते हैं। वृम्भण-प्रयोगों द्वारा मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदि प्रयोगकर्ता के आदेशों, आकांक्षाओं का पालन करने को विवश हो जाते हैं। जिस प्रयोग द्वारा दो मित्र-भावापन्न स्त्री-पुरुषादि में मैत्री-भंग अथवा लड़ाई-झगड़े की स्थिति उत्पन्न कर दी जाय, उसे 'विद्वेषण' कहते हैं। जिस मन्त्र-साधन द्वारा मनुष्य अथवा कोई अन्य प्राणी अपना स्थान छोड़कर अन्यत्र चले जाने को विवश हो जाय, उसे 'उच्चाटन' कर्म कहते हैं। जिस प्रयोग द्वारा किसी मनुष्य अथवा अन्य प्राणी की मृत्यु हो जाय, उसे 'मारण' कर्म कहा जाता है। इन कर्मों के अनेक भेद-उपभेद भी हैं, परन्तु उनसबकी समाहृति इन्हीं ६ कर्मों के अन्तर्गत हो जाती है।

षट्कर्मों के देवता - प्रत्येक कार्यकारी-शक्ति का एक अधिष्ठातृ-देवता होता है, जैसे पृथ्वी का पृथ्वी, जल का वरुण आदि। इसी प्रकार प्रत्येक मन्त्र का भी एक देवता होता है। मन्त्र-वर्णों के क्रमबद्ध से उसका आकार बनता है। मन्त्र-साधन में त्रुटि होने पर वह देवता साधक को अभीष्ट-फल देने के स्थान पर हानि भी पहुँचाता है। तान्त्रिक षट्कर्मों की देवियाँ आगे लिखे अनुसार कही गई हैं—

(१) 'शान्ति-कर्म' की रति, (२) 'वशीकरण' की 'वाणी', (३) 'स्तम्भन' की 'रमा', (४) 'विद्वेषण' की 'ज्येष्ठा', (५) 'उच्चाटन' की 'दुर्गा' और (६) 'मारण' की 'भद्रकाली'। सम्बन्धित-कर्म के प्रारंभ में उस की अधिष्ठात्र-देवी की पूजा करना उचित रहता है।

कुलाकुलचक्र-इस चक्र द्वारा मन्त्र के संबंधमें विचार किया जाता है। यदि साधक के नाम का पहला अक्षर तथा मन्त्र का पहला अक्षर एक ही कोष्ठ में पड़ता हो तो उसे अपने कुल का साधक का ग्रहण करना उचित है। यदि मित्र के कोष्ठ में पड़ता हो तो भी ग्रहण करने योग्य होता है. परन्तु यदि 'शत्रु' कोष्ठ में पड़ता हो तो उसे ग्रहण नहीं करना चाहिए। और अन्त में उपस्थिति 'कुलाकुल चक्र' में उल्लेख अक्षरों के तत्त्व दिए गए हैं अर्थात् कौनसा अक्षर किस तत्त्व से सम्बन्धित है, यह बताया गया है। मन्त्र के आदि अक्षर तथा अपने नाम के आदि अक्षर के आधार पर विचार करना चाहिए। जल भूमि का तथा वायु अग्नि का मित्र है। वायु भूमि का तथा अग्नि जल एवं भूमि का शत्रु है। आकाश सब के लिए सम है।

॥ कुलाकुल चक्रम् ॥

वायु	अ	आ	ए	क	च	ट	त	प	य	ष
अग्नि	इ	ई	ऐ	ख	छ	ठ	थ	फ	र	क्ष
पृथ्वी	उ	ऊ	ओ	ग	ज	ड	द	ब	ल	त्र ळ
जल	ऋ	ॠ	औ	घ	झ	ढ	ध	भ	व	स
आकाश	ऌ	ॡ	अं	ङ	ञ	ण	न	म	श	ह

राशि-चक्र - 'कुलाकुल चक्र' के बाद राशि-चक्र द्वारा अपनी तथा मन्त्र की राशि का विचार करना चाहिए। अपने नाम के पहले अक्षर तथा मन्त्र के पहले अक्षर के आधार पर राशि निश्चित की जाती है। यदि अपनी राशि से मन्त्र की राशि पहली, पाँचवीं अथवा नवीं हो तो उसे 'मित्र' राशि समझना चाहिए। ऐसा मन्त्र ग्रहणीय है। यदि अपनी राशि से मन्त्र की राशि छठी, आठवीं अथवा बारहवीं हो तो मन्त्र 'शत्रु' राशि का होता है और वह ग्रहण करने योग्य नहीं होता। यदि अपनी राशि से मन्त्र की राशि तीसरी, सातवीं अथवा ग्यारहवीं हो तो मन्त्र कल्याणकारी अर्थात् पुष्टिकर होता है। परन्तु यदि अपनी राशि से मन्त्र की राशि चौथी आठवीं अथवा बारहवीं हो तो उसे 'घातक' समझना चाहिए।

नीचे अन्य प्रकार से राशि-चक्र के आधार पर अपनी तथा मन्त्र की राशि को दोनों के आदि अक्षरों के आधार पर ज्ञात किया जा सकता है।

॥ राशि-चक्रम् ॥

नाम का नाम	लग्न	धन	सिंह/मीन	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुंभ	मीन
राशि	मेष	वृष	मिथुन	कर्क	सिंह	कन्या	तुला	वृश्चिक	धनु	मकर	कुंभ	मीन	मेष	वृष
	अ आ इ ई	उ ऊ ऋ	ऋ ॠ ऌ ॡ	ए ऐ	ओ औ	अं श ष स ह क्ष त्र ज्ञ	क ख ग घ ङ	च छ ज झ ञ	ट ठ ड ढ ण	त थ द ध न	प फ ब भ म	य र ल व	श ष स ह	अ आ इ ई

नक्षत्र-चक्र – 'राशि-चक्र' के बाद 'नक्षत्र-चक्र' से अपने नाम तथा मन्त्र के आदि अक्षरों के आधार पर 'गण' का विचार करना चाहिए। 'नक्षत्र-चक्र' का स्वरूप नीचे प्रदर्शित है –

॥ नक्षत्र चक्रम् ॥

नक्षत्र	अश्विनी	भरणी	कृत्तिका	रोहिणी	मृगशिरा	आर्द्रा	पुनर्वसु	पुष्य	आश्लेषा
वर्ण	अ आ	इ	ई उ ऊ	ऋ ॠ ऌ ॡ	ए	ऐ	ओ औ	क	ख ग
गण	देव	नर	राक्षस	नर	देव	नर	देव	देव	राक्षस

नक्षत्र	मघा	पूर्वाफाल्गुनी	उत्तराफाल्गुनी	हस्त	चित्रा	स्वाति	विशाखा	अनुराधा	ज्येष्ठा
वर्ण	घ ङ	च	छ ज	झ ञ	ट	ठ	ड	ढ ण	त
गण	राक्षस	नर	नर	देव	राक्षस	देव	राक्षस	देव	राक्षस

नक्षत्र	मूल	पूर्वाषाढा	उत्तराषाढा	श्रवण	धनिष्ठा	शतभिषा	पूर्वाभाद्रपदा	उत्तराभाद्रपदा	रेवती
वर्ण	न	प फ	ब	भ	म	य र	ल	व श	ष स ह अ
गण	राक्षस	नर	नर	देव	राक्षस	राक्षस	नर	नर	देव

'नक्षत्र-चक्र' से विचार करने का नियम इस प्रकार है – यदि साधक के नाम का आदि-अक्षर 'मनुष्य' गण में हो तो उसके लिए 'मनुष्य गण' वाला मन्त्र 'सर्वश्रेष्ठ' तथा 'देवता गण' वाला 'उत्तम' रहेगा, जबकि 'राक्षस गण' वाला 'घातक' सिद्ध होगा। यदि साधक के नाम का प्रकाशाक्षर 'देवता गण' का हो तो उसके लिए 'देवता गण' वाला मन्त्र सर्वश्रेष्ठ, 'मनुष्य गण' वाला मध्यम तथा 'राक्षस गण' वाला मन्त्र अर्थात् हानिकर सिद्ध होगा। यदि साधक के नाम का प्रकाशाक्षर 'राक्षस गण' हो तो उसके लिए राक्षस गण वाला मन्त्र ही उचित रहेगा। देवता अथवा मनुष्य गण वाले मन्त्र अशुभ अर्थात् हानिकर सिद्ध होंगे।

उक्त चक्र द्वारा ही अपने तथा मन्त्र के नक्षत्र का निर्णय भी करें। कि अपने नक्षत्र से मन्त्र के नक्षत्र तक गिनें। जो संख्या आये उसका फल इस प्रकार समझें – १. जन्म, २. सम्पत्, ३. विपत्, ४. क्षेम, ५. प्रत्यरि, ६. साधक, ७. वध, ८. मित्र तथा ९. परम मित्र। यदि इनमें संख्याओं के भीतर मन्त्र न आये तो इसी क्रम से दुबारा-तिबारा गिनती करनी चाहिए।

अकडम-चक्र – इस चक्र के संबंध में पहले लिखा जा चुका है। इस चक्र के दक्षिणावर्ती क्रम में, अपने प्रथम नामाक्षर से पहले प्रकोष्ठ में मन्त्र का आद्य-अक्षर हो तो वह सिद्ध, दूसरे में 'साध्य', तीसरे में 'सुसिद्ध' तथा चौथे में हो तो 'अरि' होता है। 'सिद्ध' तथा 'सुसिद्ध' मन्त्र उत्तम, 'साध्य' मध्यम तथा 'अरि' हानिकर होते हैं। सिद्ध तथा सुसिद्ध मन्त्र सरलता से व 'साध्य' कठिनाई से सिद्ध होता है। 'अरि-मन्त्र' को सर्वथा त्याग देना चाहिए।

अकथह चक्र- मन्त्र का शुभाशुभ जानने के लिए 'अकडम' चक्र की भाँति ही 'अकथह' चक्र का भी उपयोग किया जाता है। अपने नाम के प्रथमाक्षर से मन्त्र के प्रथमाक्षर के आधार पर विचार करना चाहिए। इससे भी मन्त्र की सिद्ध, साध्य, सुसाध्य तथा अरि-स्थिति का ज्ञान प्राप्त किया जाता है तथा इस चक्र में भी 'अकडम' चक्र की भाँति ही दुबारा-तिबारा गणना करने का नियम है। 'अकथह चक्र' का स्वरूप नीचे दाँई ओर प्रदर्शित है—

॥अ क थ ह च क्र म्॥

१ अ क थ ह	२ उ ड़ ढ	३ आ ख द	४ ऊ च फ
५ ओ ड ब	६ ऋ ऋ म	७ औ ऊ श	८ ॠ ज य
९ ई ं न	१० ऋ ज भ	११ ई ग ष	१२ ऊ ढ व
१३ अं ल स	१४ ऐ ळ ल	१५ अं ण ब	१६ ए ट र

मणी-धनी चक्र- 'मणी-धनी-चक्र' द्वारा भी मन्त्र का विचार किया जाता है। इसका संक्षिप्त उल्लेख पहले किया जा चुका है। यहाँ कुछ विस्तार से लिखा जा रहा है। 'चक्र' का स्वरूप अगले पृष्ठ पर प्रदर्शित किया गया है। इस चक्र से विचार करने का नियम यह है कि मन्त्र के जितने अक्षर हों, उन्हें अलग-अलग कर लें तथा उन की जो मात्राएँ हों, उन्हें भी अलग-अलग कर लें। फिर इसी प्रकार अपने नाम के अक्षरों को भी अलग-अलग कर लें तथा मात्राओं को भी। फिर चक्र में देखें। चक्र में सबसे ऊपर की पंक्ति में मन्त्र वर्णों के तथा सबसे निचली पंक्ति में साधक के नाम-वर्णों के अङ्क दिये गए हैं तथा मध्य की पंक्तियों में स्वर एवं व्यंजन वर्ण हैं।

जिन कोष्ठकों में मन्त्र के सभी अक्षर-स्वर-व्यंजन-पड़ें, उनके ऊपर लिखी हुई संख्याओं को किसी कागज पर लिखते चले जाँय,

तथा उन सबको जोड़ का अलग रखलें / तत्पश्चात् अपने नाम के अक्षरों को विभिन्न कोष्ठकों में देखें तथा उन अक्षरों के नीचे वाली संख्याओं को जोड़ कर अलग रखलें / अब मन्त्राक्षरों की संख्या में ८ का भाग दें तथा नामाक्षरों की संख्या में अलग से ८ का भाग दें / भाग देने पर जो संख्याएँ प्राप्त हों, उन्हें अलग-अलग लिख कर रखलें / इसके बाद मन्त्राक्षरों का शेष तथा नामाक्षरों का शेष - इन दोनों में जो भी अधिक हो, उसका इस प्रकार विचार करें कि यदि मन्त्राक्षरों का शेष, साधक के नामाक्षरों के शेष से कम हो तो 'मन्त्र साधक का ऋणी है' और यदि साधक के नामाक्षरों का शेष मन्त्र के शेष से कम हो तो साधक मन्त्र का ऋणी है अर्थात् मन्त्र 'धनी' है / जो मन्त्र 'ऋणी' हो उसे ग्रहण करना चाहिए यदि दोनों के शेष अर्थात् एक समान हों तो भी मन्त्र ग्रहण करने के योग्य होता है, परन्तु यदि मन्त्र और नाम के अङ्कों में कुछ भी शेष न बचे तो उस मन्त्र को कभी भी ग्रहण न करें / ऋणी-मन्त्र शीघ्र सिद्धि-दायक, धनी-मन्त्र विलम्ब से सिद्धि दायक तथा शून्य शेष वाला मन्त्र मृत्यु-कारक होता है।

॥ ऋणी-धनी चक्र ॥

मन्त्राक्षरों के अङ्क	६	६	६	०	३	४	४	०	०	०	३
स्वर	अ आ	इ ई	उ ऊ	ऋ ॠ	ऌ ॡ	ए	ऐ	ओ	औ	अं	अः
व्यञ्जन	क	ख	ग	घ	ङ	च	छ	ज	झ	ञ	ट
व्यञ्जन	ठ	ड	ढ	ण	त	थ	द	ध	न	प	फ
व्यञ्जन	ब	भ	म	य	र	ल	व	श	ष	स	ह
साधक के नामाक्षरों के अङ्क	२	२	५	०	०	२	१	०	४	४	१

दीक्षा-ग्रहण-मुहूर्त - इस सम्बन्ध में पहले ही लिखा जा चुका है।

मन्त्रों के दस संस्कार - इस विषय का भी पहले ही उल्लेख किया जा चुका है।

पुरश्चरण - 'शाक्त' मन्त्रों के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार के मन्त्र 'पुरश्चरण' द्वारा ही सिद्ध होते हैं। पुरश्चरण के संबंध में सभी बातों का विस्तृत उल्लेख किया जा चुका है। म.

हवन, तर्पण आदि - पुरश्चरण (मन्त्र-जप) की समाप्ति पर जप का दशांश होम, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश 'अभिषेक' अर्थात् 'मार्जन' करना चाहिए तथा मार्जन का दशांश ब्राह्मण-भोजन कराने से ही पुरश्चरण पूरा होता है। इनके सम्बन्ध में भी पहले लिखा जा चुका है। पुरश्चरण की अनेक विधियाँ हैं, उनमें से किसी भी एक विधि से पुरश्चरण किया जा सकता है।

जप-माला - इस संबंध में पहले लिखा जा चुका है। यहाँ इतना और बताना है कि मारणादि-प्रयोग में कमण्डलों की माला, पाप-नाश हेतु कुश-मूल की माला, पुत्रकामनादि में स्वर्ण तथा रत्न की माला, धन की कामना में मूंगे की माला, वशीकरण के लिए मोती अथवा हीरे की माला, आकर्षण के लिए गजमोती की माला, विद्वेषण तथा उच्चाटन के लिए बहेड़े की माला, मारण के लिए अपने आप मरे हुए गधे के दाँतों की माला तथा धर्म-अर्थ सिद्धि के लिए शंख-मणि निर्मित माला का उपयोग प्रशस्त माना गया है। सब कामों की सिद्धि के लिए पद्माक्ष की माला, वाह्य-पूजा में भी यही माला, पुत्र-लाभ के लिए जिजापोता की माला तथा सभी कार्यों की सिद्धि के लिए रुद्राक्ष की माला प्रशस्त कही गई है। धूमावती के जप में श्मशान से उत्पन्न चारों के फल की माला, मुक्ति-मुक्ति के लिए लाल-चन्दन की माला, त्रिपुरा-मन्त्र के जप में भी यही

माला तथा समस्त कामनाओं की सिद्धि हेतु मनुष्य के दाँतों की माला श्रेष्ठ मानी गई है। ऐसी माला में मेरु के स्थान पर राज-दन्त (राजा का दाँत) स्थापित करना चाहिए।

मा.

माला-सूत्र - शान्ति तथा पुष्टि कर्म के लिए माला के दानों को कमल-तन्तु की डोरी में पिरोयें। आकर्षण तथा उच्चाटन कर्म के लिए माला के दानों को घोड़े की पूँछ के बाल में पिरोयें। मारण-कर्म में मनुष्य-शरीर की नसों के सूत्र में माला के दानों को पिरोयें। बहेड़े के दानों आदि को रुई निर्मित सूत्र में पिरोयें। रेशम का सूत्र सब मालाओं के लिए प्रशस्त माना गया है।

शान्ति-कर्म में श्वेत, वशीकरण में लाल व मारणादि में काले रंग के सूत्र का उपयोग करें। लाल रंग का सूत्र सब कर्मों के लिए प्रशस्त कहा गया है। स्वर्ण, ताम्र, रजत आदि के सूत्रों से भी माला के दाने पिरोये जाते हैं। एक माला में दो जाति के दानों (मनकों) का उपयोग नहीं करना चाहिए। जप के समय अँगुलियों को अलग-अलग नहीं करना चाहिए, अर्थात् सबको इकट्ठा रखते हुए जप करें।

देवता - शान्ति-कर्म की देवी 'रति', वशीकरण की 'वाणी', स्तम्भन की 'रमा' विद्वेषण की 'ज्येष्ठा', उच्चाटन की 'दुर्गा' तथा मारण-कर्म की देवी 'भद्रकाली' है।

दिशा - 'शान्ति-कर्म' ईशान दिशा में, 'वशीकरण' उत्तर दिशा में, 'स्तम्भन' पूर्व दिशा में, 'विद्वेषण' नैर्ऋत्य दिशा में, 'उच्चाटन' वायव्य दिशा में तथा 'मारण' कर्म आग्नेय दिशा की ओर मुँह करके करना चाहिए। मतान्तर से - स्तम्भन तथा उच्चाटन के लिए पूर्व दिशा, अभिचार-कर्म के लिए अग्नि कोण, विद्वेषण के लिए दक्षिण दिशा तथा नैर्ऋत्य कोण, शान्ति-कर्म के लिए पश्चिम दिशा तथा वायव्य कोण, कुलोच्चेदन के लिए वायु कोण तथा

कलह-विग्रह आदि के लिए नैर्ऋत्यकोण प्रशस्त है। जिन कर्मों के लिए कुछ कहा नहीं गया है, उनके लिए ईशानकोण की ओर मुँह करके बैठना चाहिए।

ऋतु - हेमन्त ऋतु में - शान्ति-कर्म, वसन्त में वश्यीकरण, शिशिर में स्तम्भन, ग्रीष्म में विद्वेषण, वर्षा में उच्चाटन तथा शरद् ऋतु में मारण कर्म करना चाहिए। सूर्योदय से आरंभ करके प्रत्येक घड़ी अर्थात् चार-चार घंटे बाद एक-एक ऋतु बदलती रहती है। सूर्योदय से पहले 4 घंटे तक वसन्त, तदुपरान्त क्रमशः ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमन्त तथा अन्तमें शिशिर ऋतु रहती है। मतान्तर से - दिन के पूर्वभाग में वसन्त, मध्याह्न में ग्रीष्म, अपराह्न में वर्षा, सन्ध्याकाल में शिशिर, अर्द्धरात्रि में शरद् तथा उषःकाल में हेमन्त ऋतु रहती है।

तिथि-वार - 'आकर्षण' के लिए दशमी, एकादशी, अमावास्या, नवमी तथा प्रतिपदा तिथि एवं रविवार तथा शुक्रवार - ये दिन प्रशस्त कहे गए हैं। विद्वेषण के लिए शनिवार अथवा रविवार युक्त पूर्णिमा तिथि प्रशस्त है। 'उच्चाटन' के लिए षष्ठी, चतुर्दशी एवं अष्टमी तिथि तथा शनिवार श्रेष्ठ कहे गए हैं। विशेषतः प्रदोष-काल इसके लिए प्रशस्त है। 'मारण' के लिए चतुर्दशी, अष्टमी तथा अमावास्या तिथि एवं शनिवार, मंगलवार तथा रविवार प्रशस्त कहे गए हैं। 'स्तम्भन' के लिए बुधवार अथवा सोमवार युक्त पंचमी, दशमी अथवा पूर्णिमा तिथि श्रेष्ठ है। शान्ति-कर्म किसी भी तिथि अथवा वार को किया जा सकता है, तथापि द्वितीया, तृतीया, पंचमी और सप्तमी - ये तिथियाँ तथा बुध, गुरु, शुक्र और सोमवार - ये दिन विशेष शुभ माने गए हैं। जय-धन आदि की वृद्धि हेतु किये जाने वाले पुष्टि-कर्म गुरुवार अथवा सोमवार से युक्त

षष्ठी, चतुर्थी, त्रयोदशी, नवमी, अष्टमी अथवा दशमी तिथि को किये जाने चाहिए।

तत्त्व- जलतत्त्व के उदय में शांति-कर्म, अग्नितत्त्व के उदय में वश्याकर्षण आकाशतत्त्व के उदय में विद्वेषण, वायुतत्त्व के उदय में उच्चाटन तथा पृथ्वी अथवा अग्नितत्त्व के उदयकाल में मारण-कर्म करने चाहिए। शत्रु-भय अथवा अन्य किसी उग्र कार्य का महाभय उपस्थित होने पर समय-असमय का विचार किए बिना, तत्काल ही उसकी शांति का उपाय करना चाहिए।

देवता का वर्ण-भेद- वश्याकर्षण, आकर्षण तथा क्षोभण में देवता को लालवर्ण के रूप में, शांति-कर्म, पुष्टि-कर्म तथा विद्वेषण-उच्चाटन में शुभ्र-वर्ण, स्तम्भन में पीत-वर्ण, उच्चाटन में धूम्र-वर्ण, उन्माद में लोहित-वर्ण तथा मारण-कर्म में कृष्ण वर्ण के रूप में ध्यान में लाना चाहिए।

मारण-कर्म में देवता को खड़ा हुआ, उच्चाटन में सोया हुआ, तथा अन्य कार्यों में बैठा हुआ जान कर ध्यान करना चाहिए। शांतिक-कर्म में देवता को समासीन तथा शुभ्रवर्ण; राजस-कर्म में पीत, लोहित अथवा श्याम वर्ण एवं तामस-कर्म में यान-मार्ग-स्थित कृष्णवर्ण में ध्यान करना चाहिए।

लग्न- 'स्तम्भन-कर्म' को सिंह अथवा वृश्चिक लग्न में, विद्वेषण तथा उच्चाटन कर्म को वृष अथवा तुला लग्न में एवं वश्याकर्षण, शांति-पुष्टि, उच्चाटन तथा शत्रु-निग्रहण आदि कर्म मेष, कन्या, धनु अथवा मीन लग्न में करने चाहिए।

वश्याकर्षण दिन के पूर्व भाग में, विद्वेषण तथा उच्चाटन मध्य भाग में एवं शांति-पुष्टि कर्म अन्तिम भाग में तथा मारण-कर्म सन्ध्या-काल में करना चाहिए।

हुं फडादि का प्रयोग - उच्चाटन, विद्वेषण, बन्धन तथा संकीर्ण कर्मों में 'हुं', छेदन में 'फट्', अरिष्ट-ग्रह-शान्ति में 'हुं फट्'; पुष्टिकर्म, आप्यायन, बोधन तथा मालिनी क्रम में 'वौषट्' होम-कर्म में 'स्वाहा' एवं पूजा-अर्चना में 'नमः' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। शान्ति तथा पुष्टि-कर्म में 'स्वाहा'; वशीकरण में 'स्वधा', विद्वेषण में 'वषट्', आकर्षण में 'हुं', उच्चाटन में 'वषट्' तथा मारण कर्म की पूजा में 'फट्' का प्रयोग करना चाहिए। तंत्रज्ञ-विद्वानों के अनुसार— वशीकरण, आकर्षण तथा ज्वर-दूरीकरण में भी 'स्वाहा' का प्रयोग प्रशस्त है। क्रोध-शान्ति, शान्ति-कर्म, तथा प्रीति-वर्द्धन में भी 'नमः' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। सम्मोहन, उद्दीपन, पुष्टि तथा दुःख-निवारण कर्म में 'वौषट्'; प्रीति-भंजन, छेदन तथा मारण-कर्म में 'हुं'; विद्वेषण में 'वौषट्' एवं अंधीकरण, मन्त्र-चैतन्य तथा लाभालाभादि-कर्मों में 'वषट्' का प्रयोग करना चाहिए।

आसन - पुष्टि-कर्म में पद्मासन; स्तम्भन में विकटासन; आकर्षण, पुष्टि तथा विद्वेषण में 'कुक्कुटासन'; शान्ति-कर्म में 'स्वस्तिकासन'; उच्चाटन में 'अर्द्धस्वस्तिकासन, मारण में 'अर्द्धस्वायत पार्ष्णिकासन' तथा वशीकरण में 'भद्रासन' से बैठना चाहिए। इन आसनों के संबंध में पूर्ण जानकारी किसी योगी अथवा योगासन संबंधी पुस्तकों के अध्ययन द्वारा प्राप्त कर लेनी चाहिए।

विद्वानों के आसनों के सम्बन्ध में इस प्रकार समझें— वशीकरण के लिए मेढ़े के चमड़े का आसन, विद्वेषण के लिए घोड़े के चमड़े का आसन, मारण के लिए भैंस के चमड़े का आसन, [illegible] के लिए हाथी के चमड़े का आसन प्रयोग में लेना चाहिए। लाल रंग के कम्बल का आसन

यज्ञ कर्मों के साधन के लिए उपादान कहा गया है। आसन स्वच्छ तथा पवित्र होना चाहिए। अपवित्र, कटा-फटा, जला हुआ अथवा जिसमें कोई अपवित्र या अस्वच्छ वस्तु लगी हो, (ऐसा आसन) प्रयोग में नहीं लाना चाहिए। म.

कूर्म-चक्र - 'आसन' को कूर्म-चक्र की विधि से बिछाना चाहिए। 'कूर्म-चक्र' के संबंध में पहले लिखा जा चुका है।

तिथि - तिथियाँ पाँच प्रकार की होती हैं - १ नन्दा, २ भद्रा, ३ जया, ४ रिक्ता तथा ५ पूर्णा। प्रतिपदा, षष्ठी तथा एकादशी को 'नन्दा'; द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशी को 'भद्रा'; तृतीया, अष्टमी तथा त्रयोदशी को 'जया'; चतुर्थी, नवमी तथा चतुर्दशी को 'रिक्ता' एवं पंचमी, दशमी, पूर्णिमा तथा अमावास्या को 'पूर्णा' संज्ञक तिथियाँ होती हैं। यदि शुक्रवार को नन्दा, बुध को भद्रा, मंगल को जया, शनि को रिक्ता तथा गुरुवार को पूर्णा तिथि हो तो 'सिद्धि-योग' होता है। इस योग में आरंभ किये गये सभी कार्यों में सफलता प्राप्त होती है। इससे भिन्न तिथि-वारों से 'मृत्यु-योग' होता है और उसमें आरंभ किये गये कार्य असफल अथवा दुःखदायी होते हैं।

चन्द्र-सूर्य का अधिकार - शुक्लपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी तथा पूर्णिमा, एवं कृष्ण-पक्ष की चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी तथा द्वादशी तिथि को 'चान्द्र-तिथि' कहा जाता है। इन तिथियों पर चन्द्रमा का विशेष अधिकार होता है। उसी प्रकार शुक्ल-पक्ष की चतुर्थी, पंचमी, षष्ठी, दशमी, एकादशी तथा द्वादशी और कृष्णपक्ष की प्रतिपदा, द्वितीया, तृतीया, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी एवं अमावास्या को 'सौर-तिथि' कहा जाता

है। इन तिथियों पर सूर्य का अधिकार माना गया है।

चन्द्र-स्थिति - राशियों की कुल संख्या १२ है। उनके नाम इस प्रकार हैं— १ मेष, २ वृष, ३ मिथुन, ४ कर्क, ५ सिंह, ६ कन्या, ७ तुला, ८ वृश्चिक, ९ धनु, १० मकर, ११ कुंभ और १२ मीन, मेष, सिंह तथा धनु लग्न में चन्द्रमा की स्थिति पूर्व दिशा में; मिथुन कुंभ तथा तुला में पश्चिम दिशा में; कर्क, मीन तथा वृश्चिक में उत्तर दिशा में तथा वृष, कन्या एवं मकर में दक्षिण दिशा में रहते हैं। अपनी राशि का चन्द्रमा कल्याणकारक, दूसरी राशि का सन्तोषदायक, तीसरी राशि का धन-दायक, चौथी राशि का कलह-कारक, पाँचवीं राशि का हानिकर्ता, छठी राशि का लाभप्रद, सातवीं राशि का राजसम्मान-दायक, आठवीं राशि का मारक, नवीं राशि का धर्म-प्रद, दसवीं राशि का मनोभिलाषा-पूरक, ग्यारहवीं राशि का सर्वार्थसिद्धि दायक तथा बारहवीं राशि का हानिकर होता है।

सिंह अथवा वृश्चिक राशि के चन्द्रमा के समान; कर्क अथवा तुला में विद्वेषण तथा उच्चाटन; मेष, कन्या, धनु तथा मीन में वशीकरण, शान्ति, तुष्टि, उच्चाटन तथा शत्रु-निवारण आदि कर्म करने चाहिए। चन्द्रमा जिस समय जिस राशि में भ्रमण कर रहा होता है, वही समय उसकी 'लग्न' कहा जाता है। चन्द्रमा किस समय किस राशि में भ्रमण करेगा, इसका ज्ञान पंचांग द्वारा प्राप्त किया जा सकता है।

मुद्रा - पूजनादि कर्मों में विभिन्न प्रकार की मुद्राओं का प्रदर्शन किया जाता है। किस कार्य के लिए किस मुद्रा का प्रदर्शन किया जाय, इसका उल्लेख प्रत्येक कर्म की विधि के साथ रहता

है। मुद्राएँ अनेक प्रकार की होती हैं — यथा: पद्म, पाश, गदा, अंकुश, मुसल, वज्र, खड्ग, धेनि, तत्त्व, महाधेनि, धेनु, सन्निरोधिनी, सन्निधापनी, आकर्षनी आदि। मुद्राओं के लक्षण एवं स्वरूप आदि का वर्णन विभिन्न तन्त्र-ग्रंथों में मिलता है, अतएव इन्हें किसी जानकार व्यक्ति से समझ लेना चाहिए। इस विषय की जानकारी के लिए हमारी पुस्तक "सचित्र मुद्रा विज्ञान" का अध्ययन भी उपयोगी रहेगा।

कलश - कलश का विस्तार डेढ़ हाथ का होना चाहिए। उसकी ऊँचाई १६ अंगुल, कण्ठ ४ अंगुल, मुख का विस्तार ६ अंगुल तथा तल का परिमाण ४ अंगुल होना चाहिए। सोने का कलश भोगप्रद, चाँदी का मोक्षप्रद, ताँबे का प्रीतिकर, काँसे का पुष्टिकर, काँच का वशकर, पत्थर का स्तम्भनोद्दीपक तथा मिट्टी का कलश सभी कर्मों के लिए शुभप्रद तथा श्रेष्ठ होता है। कलश छिद्र तथा टूट-फूट रहित होना चाहिए। शान्ति-कर्म के लिए अनेक रत्नों से विभूषित स्वर्ण-कलश, अभाव में दीप्त-कलश तथा उसके भी अभाव में मात्र-कलश प्रशस्त माना गया है। अभिचार-कर्म में लोहे का, उत्साह-कर्म में काँच का, मोहन-कर्म में पीतल का तथा उच्चाटन-कर्म में मिट्टी का कलश स्थापित करना चाहिए। सभी कर्मों के लिए ताँबे का कलश प्रशस्त तथा सिद्धिदायक माना गया है।

कुण्ड - होम के लिए कुण्ड-निर्माण के विषय में पहले लिखा जा चुका है। षट्कर्मों के लिए कुण्ड के विशेष स्वरूप का कथन इस प्रकार है —

'विद्वेषण: कर्म के लिए दो मेखला वाला कुण्ड तथा कोण, जिसका आकार एक हाथ के बराबर हो। उसका मुख नैर्ऋत्य-कोण में रखना चाहिए।

शत्रु-उच्चाटन के लिए नैर्ऋत्य-कोण में, देवोच्चाटन के लिए मण्डप के वायव्य कोण में, अरि-तापन के लिए मण्डप के अग्नि कोण में योनि-कुण्ड तथा शत्रु-मारण के लिए मण्डप के दाँये भाग में अर्द्धचन्द्राकार कुण्ड का निर्माण करना चाहिए। शत्रु-पीड़न-वृद्धि के लिए मण्डप के नैर्ऋत्यकोण में तथा विद्वेषण-कर्म के लिए अग्निकोण में पूर्णचन्द्राकार कुण्ड बनाना चाहिए। इसकार्य के लिए चतुष्कोण-कुण्ड का निर्माण भी किया जा सकता है।

वशीकरण-कर्म के लिए चतुष्कोण, स्तम्भन तथा उच्चाटन-कर्म के लिए त्रिकोण तथा मारण-कर्म के लिए षट्कोण-कुण्ड का निर्माण करना चाहिए। पुष्टि-साधन के लिए मण्डप की पश्चिम दिशा में, उच्चाटन के लिए वायव्य-कोण में, मारण-कर्म के लिए दक्षिण दिशा में कुण्ड बनाना चाहिए। अभिचार-कर्म में कुण्ड के परिमाण में न्यूनाधिकता का कोई दोष नहीं लगता।

होम- विवाह आदि कर्मों को 'शुभ' तथा मारण, स्तम्भन आदि कर्मों को क्रूर' कहा जाता है। शान्ति तथा पुष्टि आदि शुभ-कर्मों के लिए पूर्व अथवा उत्तर दिशा की ओर मुँह करके हवन करना चाहिए। आकर्षण-कर्म में उत्तर की ओर मुँह करके वायुकोणस्थ-कुण्ड में हवन करना उचित है। विद्वेषण-कर्म में नैर्ऋत्यकोण की ओर मुँह करके वायुकोणस्थ-कुण्ड में हवन करे। उच्चाटन कर्म में अग्निकोण की ओर मुँह करके वायुकोणस्थ-कुण्ड में हवन करे। मारण-कर्म में दक्षिण की ओर मुँह करके दक्षिण-दिशास्थित कुण्ड में हवन करे। ग्रहपूतादि के निवारणार्थ वायुकोण की ओर मुँह करके षट्कोण कुण्ड में हवन करे। वशीकरण-कर्म में वायव्यकोण की ओर मुँह करके त्रिकोण-कुण्ड में हवन करे।

तथा स्तम्भन-कर्म में पूर्व दिशा की ओर मुँह करके षट्कोण-कुण्ड में हवन करना चाहिए।

मूल-मन्त्र का जितनी संख्या में जप करे, उसका दशांश हवन करे। यहलीप-वस्तु के अभाव में केवल घृत से हवन करना चाहिए। यदि घृत के होम में असमर्थ हो तो होम की संख्या से दूनी संख्या में मन्त्र जप करे - यह आपत्कालीन व्यवस्था है। जहाँ होम तथा जप की संख्या का उल्लेख न हो, वहाँ आठ हजार जप तथा आठ हजार अथवा आठ सौ आहुतियों का होम करना चाहिए। होम-कर्म तथा बलिदान-मन्त्र के पीछे 'स्वाहा' शब्द का प्रयोग करना चाहिए। पूजा-काल के अन्त में "नमः" तथा तर्पण के अन्त में देवता का नाम जोड़ देना चाहिए।

होम-द्रव्य - शान्ति-कर्म में दूध, घी, पीपल आदि के वृक्ष के पत्ते तथा गिलोय से हवन करना चाहिए। पुष्टि-कर्म में बिल्वपत्र, घृत, सफेद सरसों, नमक तथा चमेली के पुष्पों से; कन्या की कामना हो तो खीलों से; स्त्री की इच्छा हो तो कमल-पुष्पों से; महासमृद्धि प्राप्त करने एवं दरिद्रता दूर करने की आकांक्षा से घृत, बिल्व तथा तिलों द्वारा हवन करना चाहिए। आकर्षण-कर्म में शिरीषपुष्प, बिल्व, चमेली के पुष्प, पलाश के फूल तथा सेंधा नमक से; उच्चाटन-कर्म में उच्चाटनीय-मनुष्य के केश (सिर के बाल) अथवा कपास के बीज तथा नीम के बीजों को मट्ठे में मिला कर हवन करना चाहिए। मोहन-कर्म में कौए के पंखों से तथा मारण-कर्म में धतूरे के बीज, रक्त-मिश्रित विष, बकरी का दूध, घृत, कपास के बीज, मनुष्य की हड्डी, मनुष्य का मांस तथा जिस मनुष्य को मारना अभीष्ट हो, उसके नख तथा केशों को मिलाकर हवन करना चाहिए। मारण-कर्म में सरसों का तेल, कौआ एवं उल्लू आदि क्रूर-पक्षियों

के पंचक, कुचला, भिलावा, मिर्च, सरसों, सिल्पय, सोंठ, कालीमिर्च, पीपल, कड़ुआ तेल एवं आक तथा सेंहुड़ के दूध से भी 'मारण-कर्म' में होम किया जाता है।

आयु-वृद्धि कारक कर्म में घृत, तिल, दूर्वा तथा आम के पत्तों से; ज्वर-दूरीकरण के लिए आम के पत्तों से, मृत्यु पर विजय पाने के लिए अथवा हाथी-घोड़ा जैसी वाहिका पाने के लिए गिलोय से, गायों की पीड़ा नष्ट करने के लिए सफेद सरसों से, वर्षा की कामना से बेल की समिधाओं से, वाक्पटुत्व-लाभ के लिए घृत तथा गुग्गुल से; वर्षा रोकने के लिए दूध तथा नमक से एवं सरस्वती-सिद्धि के लिए मल्लिका-पुष्प, जाती-पुष्प, नागकेशर के फल तथा पुन्नाग-पुष्प द्वारा हवन करना चाहिए। परन्तु जिस मंत्र के साथ होम की जिन वस्तुओं का उल्लेख हो, उनके साथ उन्हीं वस्तुओं को होम के लिए प्रयोग में लाना चाहिए।

होम-मुद्रा - होम करने में १ सृगी, २ हंसी तथा ३ शूकरी - इन तीन प्रकार की हस्त-मुद्राओं का प्रयोग किया जाता है। कनिष्ठा के अतिरिक्त अन्य अंगुलियों से 'हंस मुद्रा' तथा कनिष्ठा एवं तर्जनी के योग से 'सृगी मुद्रा बनती है। हाथों को सिकोड़ने से 'शूकरी मुद्रा' बनती है। इन तीन प्रकार की मुद्राओं से कुण्ड में आहुति डाली जाती है। मुद्रा के बिना आहुति देने से देवता उसे ग्रहण नहीं करते।

स्रुक और स्रुव - 'स्रुक' ३६ अंगुल प्रमाण का तथा 'स्रुव' २४ अंगुल प्रमाण का होना चाहिए। उनका मुख ७ अंगुल का, कण्ठ १ अंगुल का तथा वेदी ८ अंगुल की होनी चाहिए। दण्ड को

चौड़ाई तथा लम्बाई के अनुसार २० तथा ६ अंगुल का रखना चाहिए। स्रुक तथा स्रुव इन दोनों का कुण्ड-भाग ४ अथवा ३ अंगुल विस्तृत हो और उसमें ४ अंगुल गहरा गड्ढा रहना चाहिए। गड्ढा गोलाकार तथा ३ अंगुल प्रमाण का हो। गर्त्त के बाहर २ अंगुल मेरखला हो तथा उसके बाहर शोभा रहनी चाहिए।

स्रुक तथा स्रुव का निर्माण चाँदी, ताँबा, लोहा तथा कुचले की लकड़ी अथवा किसी काष्ठ द्वारा करना चाहिए। दोरे कार्य में नागेन्द्रलता द्वारा भी इसका निर्माण किया जा सकता है। काष्ठों में चन्दन, खैर, पीपल, जिलावन, आम, चम्पा, आँवला तथा ढाक प्रशस्त माने गये हैं।

जप - यह 'उपांशु' 'मानसिक' तथा 'वाचिक' - तीन प्रकार का होता है। इस संबंध में पहले लिखा जा चुका है। अभिचार (मारण आदि) कर्म में 'वाचिक'; शान्ति-पुष्टि-कर्म में 'उपांशु' तथा मोक्ष-साधन-कर्म में 'मानसिक' जप करना चाहिए। इस सम्बन्ध में पहले लिखा जा चुका है।

वशीकरण में पूर्व की ओर मुँह करके, अभिचारादि-कर्म में दक्षिण की ओर, धन की कामना में पश्चिम की ओर तथा शान्ति-पुष्टि कर्म में उत्तर दिशा की ओर मुँह करके जप करना चाहिए।

मारण — वशीकरण से स्तम्भन, स्तम्भन से मोहन, मोहन से विद्वेषण, विद्वेषण से उच्चाटन तथा उच्चाटन से मारण-कर्म को अधिक ऊँचा कहा गया है। दिन के मध्यान्ह में शान्ति तथा पुष्टि-कर्म एवं सन्ध्या काल में मारण-कर्म का अनुष्ठान किया जाता है। मारण-कर्म तभी करना चाहिए, जब शत्रु-भय दूर होने का कोई अन्य उपाय ही न रहे, क्योंकि किसी के प्राण लेना सबसे निकृष्ट कृत्य माना गया है।

मारण- कर्म की विधि इस प्रकार है— 'शत्रु के घर की दीपाग्नि अथवा चूल्हाग्नि लाकर, उसके द्वारा अभिचार- कर्म करना चाहिए। विद्वेषणादि अभिचार- कर्म में होम के समय ककारादेश का परित्याग नहीं किया जाता। अग्नि को यथाविधि स्थापित करने के बाद शर-तृण द्वारा अग्नि का परिस्तरण करे, फिर नीम के तेल में सने हुए कौए के तथा उल्लू के परखों से हवन करे। फिर जिसके नाश की कामना से कर्म करना प्रारंभ किया हो, उसे लक्ष्य करके 'सर्वं दारय दारय मारय'— इस प्रकार के वाक्यों का उच्चारण करके मानसिक- मन्त्र द्वारा १०८ बार हवन करना चाहिए। हवनोपरान्त अग्नि के समीप कुत्ता देवी का पूजन करके— 'दूर अथवा समीप में मेरा जो अमुक शत्रु है, तुम उसके मांस का भक्षण करो'— यह निवेदन करे। इस प्रकार नियम पूर्वक अग्नि की रक्षा करते हुए नौ रात्रियों तक जप, होम आदि कृत्य करके कर्म समाप्त करने से शत्रु का नाश हो जाता है। मारण- कर्म में वस्त्र तथा पगड़ी आदि लाल रंग के धारण करने चाहिए तथा जप आदि से पूर्व यथाविधि सङ्कल्प आदि करके ही कर्म आरंभ करना चाहिए।

<u>मन्त्र-उत्कीलन</u> — इसका उल्लेख पूर्व में किया जा चुका है।

<u>यन्त्र</u>- यन्त्र-लेखन हेतु भोजपत्र का प्रयोग किया जाता है, परन्तु स्वर्ण, रौप्य, ताम्रपत्र एवं कागज तथा अन्य पत्रों पर भी यन्त्र लिखे जाते हैं। प्रायः प्रत्येक यन्त्र के साथ उसकी लेखन- विधि का भी वर्णन रहता है। जिस विधि से यन्त्र- लेखन का निर्देश किया गया हो, उसी विधि से यन्त्र को लिखना चाहिए। जहाँ किसी विशेष-पत्र का उल्लेख न हो, वहाँ भोजपत्र के ऊपर ही यन्त्र लिखना

चाहिए। यन्त्र-लेखन कार्य के लिए जहाँ गन्ध का निर्देश न हो, वहाँ 'अष्टगन्ध' अर्थात् १ गोरोचन, २ कपूर, ३ हाथी का मद, ४ अगर, ५ कस्तूरी, ६ केसर, ७ लालचन्दन तथा ८ श्वेतचन्दन से अथवा इनमें से किसी एक वस्तु से यन्त्र-लेखन कार्य करना चाहिए। परन्तु यदि किसी यन्त्र की लेखन-विधि में लेखन-द्रव्य का उल्लेख हो तो उसी द्रव्य का प्रयोग करना उचित है।

यन्त्र की लेखनी- यन्त्र-लिखने के लिए उपयुक्त लेखनी का उल्लेख भी यन्त्र-विधि के साथ रहता है, परन्तु यदि कहीं लेखनी के संबंध में कोई उल्लेख न हो, वहाँ स्वर्ण की सलाई (लेखनी) से यन्त्र को लिखना चाहिए। सामान्यतः सभी कार्यों की सिद्धि के लिए चमेली की, आकर्षण-कर्म के लिए जामुन की, सम्मान के लिए बरगद की, वशीकरण के लिए कुश की तथा शुभकार्यों के लिए स्वर्ण अथवा चाँदी की लेखनी प्रशस्त मानी गई है।

यन्त्र-धारण- यन्त्र को किस विधि से धारण किया जाय, इसका उल्लेख भी प्रायः प्रत्येक यन्त्र के साथ रहता है, परन्तु यदि कहीं कोई उल्लेख न मिले तो त्रिलोह (स्वर्ण, रौप्य, ताम्र मिश्रित धातु) अथवा चाँदी या ताँबे के ताबीज में भरकर यन्त्र को धारण करना चाहिए। यन्त्र किस अङ्ग में धारण किया जाय, इसका कोई निर्देश न हो तो पुरुष को दाँई भुजा में और स्त्री को बाँई भुजा में धारण करना चाहिए। यन्त्र को स्त्री-पुरुष दोनों ही कण्ठ में भी धारण कर सकते हैं।

विशेष कर्तव्य (यन्त्र लेखन के समय)- यदि मैत्री-सम्पादन के लिए यन्त्र लिखना हो तो लेखन के समय मुँह में मिश्री अथवा गाय के घी को रख लेना चाहिए। साथ ही यन्त्र को अगर,

नगर, चन्दन-चूरा, गुग्गुल, मिश्री, गो-घृत, शहद, कपूर, दालचीनी तथा जायफल सहित सूखी मेवाओं सहित कूट-पीस कर चूरण तयार करके उसकी धूनी देनी चाहिए। मारण-उच्चाटन आदि के लिए मन्त्र लिखना हो तो हुँह में सेंधानमक एवं नीम के पत्ते दो-चार रखले तथा इन्हीं दोनों वस्तुओं की धूप दे। जिह्वा-स्तम्भन के लिए मन्त्र लिखना हो तो हुँह में मोम रखले तथा उसी की धूनी भी दे। भूमि स्खलन बन्द कराने के लिए मन्त्र लिखना हो तो लिखते समय हुँह में नमक रखले तथा उसी की धूनी दे।

हवन-सामग्री - जिस मन्त्र के साथ हवन-सामग्री की वस्तुओं का उल्लेख हो, उसके होम में उन्हीं वस्तुओं का प्रयोग करना चाहिए, परन्तु जहाँ हवन की वस्तुओं का उल्लेख न हो, वहाँ निम्न लिखित वस्तुओं का होम में प्रयोग करना उचित है—

'शान्ति-कर्म' में - दूध, घृत, तिल, सूखर अथवा पीपल की लकड़ी अथवा अमरबेल और खीर का प्रयोग करना चाहिए। पुष्टि-कर्म में घृत, बिल्वपत्र अथवा चमेली के फूलों से हवन करे। कन्याभिलाषी को खीर से हवन करना उचित है। लक्ष्मी-प्राप्ति के लिए कमलगट्टा, दही अथवा घृत युक्त अन्न का हवन करे। समृद्धि के लिए घृत, बिल्वपत्र तथा तिल से हवन करे। 'आकर्षण' के लिए चिरौंजी तथा बिल्व-फल (बेल) का हवन करे। उच्चाटन के लिए कौए के पंखों का हवन करे। 'वशीकरण' के लिए राई और नमक का तथा 'मोहन' के लिए धतूरे के बीजों का हवन करे। 'मारण' के लिए विष तथा रुधिर का हवन करना चाहिए।

षोडशोपचार - षोडश उपचार इस प्रकार हैं— १पाद्य, २ अर्घ्य, ३ आचमनीय,

४ स्नान, ५ वस्त्र, ६ आभूषण, ७ गन्ध, ८, पुष्प, ९ धूप, १० दीप, ११ नैवेद्य, १२ आचमन, १३ ताम्बूल, १४ अर्चन, १५ तर्पण और १६ नमस्कार। देवता के पूजन में इन सोलह उपचारों का उपयोग किया जाता है।

पञ्चोपचार— पाँच प्रकार के उपचार यह हैं— १. गन्ध, २ पुष्प, ३ धूप, ४ दीप और ५ नैवेद्य।

म.

समिधा— षट्कर्मों के लिए किये जाने वाले होम में किन समिधाओं का उपयोग उचित है - इसे निम्नानुसार समझना चाहिए—

शान्ति-कर्म में गाय का घृत मिला कर दूर्वा की समिधा, 'वशीकरण' में बकरी का घृत मिला कर अनार की समिधा. विद्वेषण में अलसी का तैल मिला कर धतूरे की समिधा, 'उच्चाटन' में सरसों का तैल मिला कर आम की समिधा तथा 'मारण-कर्म' में कटु-तैल मिला कर खैर की समिधा से होम करना प्रशस्त माना गया है।

अग्नि-प्रज्ज्वलित करने की लकड़ी— शुभ-कर्मों के लिए बेल, आक, ढाक तथा दूधवाले वृक्ष (वट, पीपल आदि) की लकड़ियों से तथा अशुभ-कर्मों के लिए कुचिला, बबेड़ा, नींबू, धतूरा तथा लिसोड़े की लकड़ियों से साधिनिक को अग्नि प्रज्ज्वलित करनी चाहिए।

ब्राह्मण-भोजन की संख्या शान्ति-कर्म तथा वशीकरण में होम के दशांश तुल्य ब्राह्मणों को भोजन कराना 'उत्तम' माना गया है। होम की संख्या के पच्चीसवें भाग के बराबर ब्राह्मणों को भोजन कराना 'मध्यम' तथा होम की संख्या के शतांश तुल्य ब्राह्मणों को भोजन कराना 'अधम' माना गया है।

'स्तम्भन-कर्म' में शान्ति-कर्म के ब्राह्मणों की संख्या से दोगुने ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। 'विद्वेषण' तथा 'उच्चाटन-कर्म' में शान्ति-कर्म के ब्राह्मणों की संख्या के तीन गुने ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। 'मारण-कर्म' में होम की संख्या के बराबर ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। 'मन्त्र महोदधि' में कहा है— 'अत्यन्त कुलीन वंश में उत्पन्न, षडङ्ग वेदों के जानकार, यज्ञिय तथा सदाचार-परायण ब्राह्मणों को विविध प्रकार के भोजन कराने चाहिए। सुन्दर वस्तुओं द्वारा उनका पूजन करें तथा देवता मान कर सत्कार प्रणाम करना चाहिए। फिर मधुर-वचन तथा स्वर्ण आदि से उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिए। ब्राह्मणों के आशीर्वाद प्राप्त करने पर अभिचार-जन्य पाप शीघ्र नष्ट हो जाता है तथा मनोवांछित-सिद्धि की शीघ्र प्राप्ति होती है।

भक्ष्य-वस्तुएँ— 'शान्ति' एवं 'वश्य-कर्म' करते समय हविष्यान्न, 'स्तम्भन' करते समय खीर, 'विद्वेषण' करते समय उड़द तथा मूँग, 'उच्चाटन' करते समय गेहूँ तथा 'मारण-कर्म' करते समय मान्त्रिक को मसूर एवं काली बकरी के दूध की खीर खानी चाहिए।

तर्पण की वस्तुएँ - 'शान्ति' तथा 'वशीकरण' में हल्दी मिला जल, स्तम्भन तथा मारण में मिर्च मिश्रित गुनगुना जल तथा विद्वेषण एवं उच्चाटन में भेड़ के रक्त मिश्रित जल को तर्पण-द्रव्य कहा गया है।

तर्पण का पात्र - 'शान्ति' एवं 'वशीकरण' में स्वर्ण के पात्र में, 'स्तम्भन' में मिट्टी के पात्र में, विद्वेषण में खैर के पात्र में, उच्चाटन में लोहे के पात्र में तथा 'मारण' में कुत्ते के अण्डे में

तर्पण करना चाहिए।

<u>पुरश्चरण के पूर्व भविष्य-विचार</u>- मन्त्रोपासना आरंभ करने से पूर्व भविष्य-विचार करना उचित है। इस हेतु स्नान-दानादि के उपरान्त श्रीविष्णु एवं शिव की प्रार्थना करते हुए कुश की शय्या पर निश्चिन्तता पूर्वक शयन करें। प्रातः काल उठने पर, रात्रि में देखे हुए स्वप्न का निम्नानुसार विचार करे--

विष्णु, चन्द्र-सूर्य के बिम्ब, सरस्वती, गंगा, गुरु, मुद्दे में विजय, अग्नि-पूजन, रक्त के सागर में तैरना; मोर, हंस अथवा चक्र वाले रथ पर बैठना, संभोग, सारस पर बैठना, भूमि-लाभ, आस्वाद, रथ, कमल, छत्र, कन्या, फलयुक्त वृक्ष, सर्प, दीपक, घोड़ा, पुष्प, वृषभ, पर्वत, मद्य, घड़ा, गुड़, तारागण, स्त्री, सूर्योदय, तथा अप्सराओं को देखना; महल, पर्वत एवं विमान में बैठना, आकाश में उड़ना, मांस तथा शराब का सेवन, शरीर पर विष्ठा लगाना, दही-स्नान, दही एवं चावल खाना, राज्याभिषेक, गाय, बैल, घोड़ा, सिंह तथा सियार-सन देखना; शंख, वाद्य, गोरोचन, दही, चन्दन तथा दर्पण - इन सबको स्वप्न में देखना शुभ होता है।

तैल अथवा उबटन लगाना, काला अथवा निर्वस्त्र व्यक्ति, गड्ढा, कौआ, सूखा तथा कँटीले वृक्ष, चाण्डाल, बड़े कंधों वाला मनुष्य तथा बिना छत का महल - इन सबको स्वप्न में देखना अशुभ होता है। शुभ-स्वप्न दिखाई दें तो पुरश्चरण सफल होता है एवं अशुभ स्वप्न दिखाई दें तो उनकी शान्ति करानी चाहिए, तत्पश्चात् एकाग्र-चित्त से मन्त्र-जप करना चाहिए। ऐसी स्थिति में जप आरंभ करने से 3 वर्ष तक विघ्न-बाधाओं की उपस्थिति संभव रहती है। उन्हें झेलते हुए साधक जप में तत्पर बना रहे तो चौथे वर्ष सिद्धि प्राप्त होती है॥ ॥इति वृहद् तन्त्र महार्णवे प्रथम खण्डस्समाप्तः॥

ॐ

इति वृहद् तन्त्र महार्णवम्

(भाषा-टीका सहित)

प्रथम खण्ड समाप्तम्

ॐ

अथ बृहद् तन्त्र महार्णवम्

(भाषा-टीका सहित)

द्वितीय खण्ड

विविध तान्त्रिक प्रयोग प्रकरण

अथ बृहद् तन्त्र महार्णव (द्वितीय खण्ड)

(भाषा-टीका)

विषय - सूची

क्रमाङ्क		पृष्ठाङ्क
१	अङ्कोल तन्त्र	१६५
२.	अर्क वृक्ष (श्वेत पलाश) तन्त्र	१७३
३.	वक्र-गुञ्जा तन्त्र	१७५
४.	श्वेत-गुञ्जा तन्त्र	१८१
५.	तिल - तन्त्र	१८३
६.	वृक्ष-मूल तन्त्र	१८४
	(क) श्वेतार्क मूल तन्त्र	१८४
	(ख) पुनर्नवा मूल तन्त्र, (ग) अपामार्ग मूल तन्त्र	१८५
	(घ) गुञ्जा मूल तन्त्र	१८६
	(ङ) श्वेत करवीर मूल तन्त्र, (च) धत्तूर मूल तन्त्र	१८७
	(छ) अष्टला मूल तन्त्र, (ज) विष्णुक्रान्ता मूल तन्त्र	१८८
	(झ) सुदर्शन (ञ) शटली, (ट) सिंही, (ठ) सिद्धार्थ मूलतंत्र	१८९
	(ड) वट, (ढ) उदुम्बर, (ण) सहदेवी मूल तन्त्र	१९०
	(त) कौमारी, (थ) कदली, (द) ताम्बूलवल्ली मूल तन्त्र	१९१
	(ध) आम्र, (न) पलाश, (प) शेरण्ड मूल तन्त्र	१९२
	(फ) वृद्धराज मूल तन्त्र	१९३
७.	बन्धक चमत्कार तन्त्र	१९३
	(क) पिप्पल बन्धक तन्त्र	१९४
	(ख) वट, (ग) निम्ब, (घ) आम्र बंधक तन्त्र	१९५
	(ङ) जम्बुक, (च) बिरस, (छ) बिल्व बंधक तन्त्र	१९६
	(ज) बदरी, (झ) प्याल, (ञ) शारवोटक बंधक तन्त्र	१९७
	(ट) करञ्ज, (ठ) शल्लानक, (ड) कचोरा बंधक तन्त्र	१९८

क्रमाङ्क		पृष्ठाङ्क
	(ढ) चमोड़ा, (ण) घोहर, (त) कपिल (थ) कुपाक्ष तंत्र	१९९
	(द) रोहितक, (ध) कार्पास (न) बन्धक अदृश्य तंत्र	२००
८.	मार्जारी-नाम तन्त्र	२०१
९.	बालक-नाम तन्त्र, १०. बालक दन्त तन्त्र	२०२
११.	स्याल-नामि तन्त्र	२०३
१२.	वाराटकी तन्त्र	२०४
१३.	इन्द्रजाल-कौतुक तन्त्र	२०६
	. प्रारंभिक मन्त्र, रक्षामन्त्र, इन्द्रजाल कौतुकमंत्र	२०६
	दृष्टि-स्तंभन तन्त्र २०८, नानारूप धारण कौतुक	२०८
	दुग्ध-कौतुक	२१२
१४.	रुक्षाक्षि नारिकेल तन्त्र	२१३
१५.	नाशकणादन्त्र मन्त्र प्रयोग	२१८
१६.	चौर निवारण तन्त्र	२२१
१७.	गृह-नाशक भूतेश्वर मन्त्र-तन्त्र	२२१

क्रमाङ्क		पृष्ठाङ्क
१८.	धनोपकुल-नाशक मन्त्र-तन्त्र	२२२
१९	शत्रुकिन्नाघातकारक मन्त्र-तन्त्र	२२३
२०.	प्रेतादि झाड़ने का मन्त्र, ज्वर-नाशन मन्त्र	२२६
२१.	विविध ज्वर-नाशक मन्त्र	२२६
२२.	सुरत-उत्पादन मन्त्र, सर्प-विष-नाशक मन्त्र-तन्त्र	२२७
२३	द्यूत-विजय तन्त्र	२२८
२४	गो-महिषीणां दुग्ध-वर्धक तन्त्र, कलह-नाशक तन्त्र	२३०
२५.	पक्षिराज घूक (उलूक) तन्त्र	२३१
२६.	उलूक-तन्त्र सम्बन्धी अन्य प्रयोग, अदृश्यीकरण	२३२
२७.	वशीकरण कारक उलूक-तन्त्र प्रयोग	२३४
२८.	विद्वेषण प्रयोग, उच्चाटन प्रयोग	२३६
२९.	मारण प्रयोग	२३९
३०.	तुष्टि-स्तम्भन; विविध कारक प्रयोग	२४०
३१	मनोभिलाषा कथन प्रयोग	२४१

म.

क्रमाङ्क		पृष्ठाङ्क
३२.	सप्तशक्तिमन्त्र	२४२
३३.	राशि-दर्शनि तन्त्र	२४३
३४.	यू-तिथि दर्शनि तन्त्र	२४४
३५.	ज्ञा-नामाक प्रयोग	२४५
३६.	मृत-बच्चा नामाक प्रयोग, सन्तानोपाय:	२४६
३७.	मृत-वत्सा-दोष नामाकोपाय	२४८
३८.	हीनमा-श्रवण विधान	२४९
३९.	वन्ध्यादि लक्षण प्रयोग, मृतवत्सा लक्षण यन्त्र	२५१
४०.	मृतवत्सा लक्षण एवं प्रयोग	२५२
४१.	काक-वन्ध्या लक्षण-यन्त्र, काक वन्ध्या लक्षणम्	२५४
४२.	चेटक तन्त्र, वट-यक्षिणी चेटक	२५८
४३	कर्णपर्व श्मशान यक्षिणी चेटक, करालिनी-चेटक	२५९
४४.	कालिका चेटक, काली-चेटक	२६०
४५.	मण्डूक युग्म चेटक	२६१
४६.	तिथि-दर्शनि अञ्जन तन्त्र, सर्वाञ्जन, सिद्धांजन	२६२
४७	सर्वाञ्जन (२) अन्य प्रयोग	२६३

कलौ नान्योदितो मार्गो सिद्धिमिच्छति यो नर:।
दूषितो जाह्नवीतीरे कूपं खनति दुर्मति:॥

कलौ तन्त्रोदिता मन्त्रा: सिद्धा: सूर्णफलप्रदा:।
शस्ता: कर्मसु सर्वेषु जप यज्ञ क्रियादिषु॥

नदीनां च यथा गंगा पर्वतानां हिमालय:।
तथा समस्तशास्त्राणां तन्त्र शास्त्रमनुत्तमम्॥

श्री गणेशाय नमः

अथ बृहद् तन्त्र महार्णवम् (द्वितीय खण्ड) प्रारम्भ

अङ्कोल-तन्त्र

अंकोल वृक्ष के बीज और उनका तैल विभिन्न तान्त्रिक-प्रयोगों में प्रयुक्त होते हैं। अंकोल के वृक्ष हरद्वार तथा उसके समीपवर्ती क्षेत्र में पाये जाते हैं। ऐन्द्रजालिक-कौतुकों में अंकोल के बीजों का विशेष महत्व है। अंकोल-बीज से संबंधित प्रयोगों का वर्णन आगे किया गया है।

किसी भी ऐन्द्रजालिक-प्रयोग की सिद्धि के लिए सर्वप्रथम निम्न लिखित मन्त्र को जप कर सिद्ध कर लेना चाहिए। इस मन्त्र को सिद्ध किये बिना कोई भी प्रयोग सफल नहीं होता। मन्त्र इस प्रकार है –

"ॐ नमो नारायणाय विश्वम्भराय इन्द्रजाल कौतुकानि दर्शय दर्शय सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।"

यह मन्त्र एक लाख (१,००,०००) की संख्या में जपने से सिद्ध होता है। मन्त्र का जप किसी भी शुभ-मुहूर्त (शुभ तिथि, वार एवं समय) में प्रारंभ किया जा सकता है। जप का श्रेष्ठ समय नित्य प्रातः ६ बजे से १० बजे के मध्य का है। शौच-स्नानादि से निवृत्त होने के बाद, स्वच्छ धौत वस्त्र धारण कर, कुश के आसन पर, पूर्व दिशा की ओर मुँह कर के बैठे। अपने सामने शिव, विष्णु, आदि इष्टदेव का चित्र भी रखा जा सकता है, अन्यथा बिना चित्र सामने रखे हुए भी मन्त्र-जप किया

जा सकता है। शुद्ध घृत का दीपक जलाकर सामने दाँई ओर रखना तथा बाँई ओर धूपबत्ती जलाकर रखना उचित रहता है।

मन्त्र-जप हेतु रुद्राक्ष के दानों की माला का प्रयोग श्रेष्ठ माना गया है। प्रतिदिन मः निश्चित समयावधि में तथा निश्चित संख्या में जप करना चाहिए। जितनी दिन एकलाख की संख्या में जप पूरा होजाय, उतनी दिन १००१ आहुतियों से होम (हवन) करना चाहिए। आहुतियाँ हवन-सामग्री तथा शुद्ध घृत की देनी चाहिए। होम की समाप्ति पर कम-से-कम पाँच विद्वान् ब्राह्मणों को भोजन कराना चाहिए। इस विधि से मन्त्र सिद्ध हो जाता है।

मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर प्रयोग आरंभ करें, परन्तु प्रयोग आरंभ करने से पूर्व एकबार सिद्ध-मन्त्र का १०८ बार पुनः जप करना आवश्यक रहेगा। यह विधि केवल अक्षोल-तन्त्र के प्रयोगों के लिए ही नहीं, अपितु सभी ऐन्द्रजालिक-प्रयोगों के लिए आवश्यक है। स्मरणीय है कि जिन प्रयोगों को देखकर लोग आश्चर्यचकित रह जाँय, उन्हें 'ऐन्द्रजालिक-प्रयोग' कहा जाता है।

अथ अक्षोल तन्त्रम्- गृहीत्वाक्षोल बीजानि रविवारे सुनिश्चितम्। शृणु सिद्ध महायोगिन् बीजानां कल्पमुत्तमम् ॥१॥ अक्षोल बीजं निक्षिप्तं गुरोर्गव्यमुखे शुभम्। मन्त्रेण सिञ्चेन्नित्यं तावद् बीजं फलोद्भवः ॥२॥ त्रिलोहं वेष्टितं कृत्वा एकं बीजं मुखे स्थितम्। मत्तमातङ्ग वीर्यस्तु वायुतुल्य पराक्रमः ॥३॥ हयमुखे च तद्बीजं रविवारे सुनिक्षिपेत्। जायते सफला वृक्षास्तद्बीजं ग्राहयेत्पुनः ॥४॥ त्रिलोहं वेष्टितं कृत्वा मुखमध्ये विधारितम्। महाबलो महातेजाः अनीक्ष्यश्च तुरङ्गमः ॥५॥ वृक्ष मुखेषु तद्बीजं

निक्षिपेद् भुवि निश्चितम् / तद्बीजं मुखमध्यस्थं त्रिलोहवेष्टितं कुरु ॥ ६॥ महाबलं महतेजो जायते वृषभस्य च / मृगमुखे च तद्बीजं निक्षिपेत् भूतले ध्रुवम् ॥ ७॥ त्रिलोहवेष्टितं बीजं मृगराजसमो भवेत् / तद्बीजं सिंहवदने निक्षिप्तं च महीतले ॥ ८॥ त्रिलोहवेष्टितं बीजं मुखमध्ये च धारितम् / महाबलो महातेजा जायते सिंहसूनकः ॥ ९॥ शुनो मुखे तु तद्बीजं निक्षिपेद् भूतले ध्रुवम् / त्रिलोहवेष्टितं कृत्वा मुखे क्षिप्त्वा तु श्वानकम् ॥ १०॥ समूलं मुखमध्यस्थं तद्बीजं भुवि निक्षिपेत् / त्रिलोहवेष्टितं कृत्वा समूलो दृश्यते जनैः ॥ ११॥ यानि कानि च बीजानि जङ्गमस्थलमेव च / अङ्कोलं बीजनिक्षिप्तं मुखे भूमितले ध्रुवम् ॥ १२॥ तद्बीजं मुखमध्यस्थं त्रिलोहवेष्टितं कुरु / तद्भूपस्य भवेत्सर्वं नान्यथा शङ्करोदितम् ॥ १३॥

टीका – हे सिद्ध महायोगिन् ! अङ्कोल के बीजों का उत्तम कल्प सुनो –

(१) रविवार के दिन अङ्कोल के बीजों को लाये तथा वृहस्पति वार के दिन उन्हें स्त्री-हाथी के मुँह में डाल कर, भूमि में गाड़ दे तथा उसे प्रतिदिन मन्त्रोच्चारण करते हुए तब तक सींचता रहे, जबतक कि उसमें वृक्ष उत्पन्न होकर, फल न लगें / फल आजाने पर, उसके एक बीज को 'त्रिलोह' (सोना, चाँदी तथा ताँबा – इन तीन धातुओं के मिश्रण को 'त्रिलोह' कहते हैं) के ताबीज में भर कर, अपने मुख में रखने वाला साधक उन्मत्त-हाथी के समान बल-वीर्यवान् तथा वायु के समान पराक्रमी बन जाता है ॥ १-३॥

(२) रविवार के दिन घोड़े के मुख में अंकोल बीज को पूर्वोक्त विधि से बोदे,

जब उसमें के वृक्ष उत्पन्न होकर फल लगने लगें, तब उन्हें एकत्र करे तथा उनमें से एक बीज को त्रिलोह के ताबीज में भर कर मुँह में रखने वाला मनुष्य घोड़े के समान बलवान, अत्यन्त तेजस्वी तथा शक्तिशाली हो जाता है ॥ ४-५ ॥

(३) अंकोल के बीज को बैल के मुख में भर कर भूमि में पूर्वोक्त विधि से गाड़ कर, मन्त्रोच्चारण करते हुए पानी से सींचता रहे। जब उसमें से वृक्ष निकल आये, तब उसके फल को त्रिलोह के ताबीज में भर कर मुख में धारण करने वाला मनुष्य बैल के समान बलशाली तथा अत्यन्त तेजस्वी हो जाता है ॥ ६ ॥

(४) अंकोल के बीज को पूर्वोक्त विधि से हरिण (मृग) के मुख में बो दे और उसे भूमि में गाड़ कर, मन्त्रोच्चारण करते हुए जल से सींचता रहे। वृक्ष उग आने तथा फल लगने पर उसके एक फल को त्रिलोह के ताबीज में भर कर मुख में रखने वाला साधक मृग के समान हो जाता है ॥ ७ ॥

(५) अंकोल के बीज को सिंह के मुँह में भर कर पूर्वोक्त विधि से जमीन में गाड़ दे और सींचता रहे। वृक्ष उग आने तथा फल लगने पर, उसके एक बीज को त्रिलोह के ताबीज में भर कर मुँह में रखने वाला साधक सिंह के समान महा तेजस्वी तथा महाबलवान हो जाता है ॥ ८ ॥

(६) कुत्ते के मुँह में अंकोल का बीज रख कर भूमि में गाड़ दे। पूर्वोक्त विधि से उसे सींचता रहे तथा वृक्ष उग आने तथा उसमें फल लगने पर, एक बीज को त्रिलोह के ताबीज में भर कर

मुख में रखने वाला मनुष्य कुत्ते जैसा दिखाई देता है ॥१०॥

(७) मोर के मुँह में अंकोल का बीज भूल कर ज़मीन में गाड़ देने तथा उसे प्रतिदिन मन्त्रोच्चारण के साथ सींचता रहे। वृक्षउग आने तथा फल लगने पर, उसके एक बीज को त्रिलोह के ताबीज में भर कर मुँह में रखने वाला साधक लोगों को मोर जैसा दिखाई देता है ॥११॥

(८) किसी भी जङ्गम-प्राणी के मुख के अंकोल का बीज भूल कर पृथ्वी में गाड़ देने तथा उससे उत्पन्न वृक्ष के फल के बीज को त्रिलोह के ताबीज में भर कर, अपने मुख में रखने वाला साधक उसी जीव जैसा दिखाई देता है। शङ्कर द्वारा कथित यह वचन सत्य सिद्ध है ॥१२-१३॥

अथ अङ्कोल बीजानि तैल प्रयोगः - अङ्कोलस्य तु बीजानि तत्तैलं ग्राह्यमेव तु।
चूर्णं कृत्वा तु तत्तैलं सर्वसिद्धि प्रदायकम् ॥१॥ यद्यत् बीजे लिप्ते तैलं निक्षिपेच्च तडागके। तत्तत्प्राणाज्जायन्ते
ये चिह्ने तत्प्राणात्मका मनोद्भवाः ॥२॥ तत्तैलं चूतबीजे तु निक्षिपेद् बिन्दुमात्रतः। जायन्ते सकला
वृक्षा नान्यथा शङ्करोदितम् ॥३॥ यानि कानि च बीजानि अङ्कोलतैल लेपयेत्। जायन्ते सकला वृक्षाः
सिद्धयोग उदाहृतः ॥४॥ शबानने बिन्दुमात्रं तत्तैलं निक्षिपेन्नरः। एकयामे सजीवः स्यान्नान्यथा
शङ्करोदितम् ॥५॥ यत्र तु श्वेतगुञ्जाया प्रथमं भक्षयेन्नरः। अङ्कोलतैल लिप्ताङ्गो दृश्यते राक्षसा
कृतिः ॥६॥ पलायनो नराः सर्वे पशुपक्षि मृगादयः। अङ्कोलस्य तु तैलेन दीपं प्रज्वालयेन्नरः ॥७॥ रात्रौ
पशवो भूतानि खेचराणि महीतले ॥ अङ्कोल तैल लिप्तं च शस्त्रं याति च कार्तिच ॥८॥ भवन्ति मूर्च्छिता
ता दृष्ट्वा तत्रैव च महीतले। रणे दारुण शस्त्रौघं दृष्ट्वैव ति पलायेत ॥९॥ नरादि जीवजातं वै नान्यथा
शङ्करोदितम् ॥१०॥

टीका - अब अंकोल के फल के तैल से सिद्ध होने वाले प्रयोगों के विषय में बताते हैं — अंकोल के बीजों को रगड़ कर, चूर्ण दे ; फिर उनका तैल निकाले। यह तैल समस्त सिद्धियों को देने वाला होता है ॥ १॥ इस तैल के प्रयोग निम्न लिखित हैं —

(१) कमल के बीजों (कमलगट्टा) को अंकोल के तैल में भिगो कर किसी तालाब में डाल देने से तत्काल ही एक अद्भुत दृश्य प्रकट होता है अर्थात् उन बीजों से तत्काल ही वृक्ष निकल कर, उनमें कमल के फूल लग जाते हैं ॥ २॥

(२) अंकोल के तैल की एक बूंद मात्र आम के बीज पर डाल देने से फलोंसहित आम का वृक्ष उत्पन्न हो जाता है ॥ ३॥

(३) इसी भाँति जिस बीज को भी अंकोल के तैल से लिप्त करके बोया जाता है, उसका फलदार वृक्ष उत्पन्न हो जाता है। यह सिद्ध योग बताया गया है ॥ ४॥

(४) 'शव' अर्थात् मृत-शरीर के मुख में एक बूँद अंकोल का तैल डाल देने मात्र से ही वह दो घड़ी के लिए जीवित हो जाता है। शङ्कर का यह वचन अन्यथा नहीं हो सकता ॥ ५॥

(५) पहले श्वेत गुंजा (सफेद घुंघची) की पत्तियों को खा कर, अपने शरीर पर अंकोल के बीजों का तैल लगाने वाला मनुष्य राक्षस जैसा दिखाई देता है तथा उस पर दृष्टि पड़ते ही अन्य मनुष्य तथा पशु-पक्षी आदि इधर-उधर भाग जाते हैं ॥ ६॥

(६) अंकोल के तैल को दीपक में भर कर, जलाने से, उसके प्रकाश में

आकाशगामी भूत, उस रात के समान पृथ्वी पर ही दिखाई देते हैं ॥७॥

(५) किसी भी शस्त्र पर अंकोल के तैल का लेप करके युद्ध-स्थल में पहुँचा जाय तो उस शस्त्र को देखते ही अन्य सभी प्राणी (शत्रु आदि) मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ते हैं। भीषण युद्ध के समय ऐसे शस्त्रों को देखते ही मनुष्यादि सभी जीव भाग जाते हैं। शंका का यह कथन अप्रमाण नहीं है ॥८-१०॥

अङ्कोल तैल संसिक्ता वचा सप्तदिनावधि। त्रिलोहे वेष्टिता तस्या गुटिकां कारयेत्ततः ॥१॥ अदृश्यकारिणी रक्षाया मुखस्था नात्र संशयः। तत्तैलैः सर्षपाद्यैर्वा तां त्रिलोहेन च वेष्टितान् ॥२॥ गुटिका मुखमध्यस्था रक्षणा दृश्यत्वकारिणी। चूर्णपक्वक पत्राणां मुखिपत्र स्यपुनाम् ॥३॥ धत्तूर स्वरसे पिष्ट्वा गुटिकां कारयेद् दृढाम्। सालिपर्णी कुलित्थैलेन मुखस्थाऽदृश्यकारिणी ॥४॥ काकोलूकस्य पक्षांश्च निजकेशांस्तथैव च। अन्तर्धूमगतं दग्ध्वा सूक्ष्म चूर्णं तु कारयेत् ॥५॥ अङ्कोल तैलाक्त गुटिकां कृत्वा विरसि धारयेत्। अदृश्यो जायते क्षिप्रं देवैरपि न दृश्यते ॥६॥ तालकं कृष्णसर्पस्य क्षीरमङ्कोल तैलकम्। तत्लिप्ताक्षो नरोऽदृश्यो जायते शस्त्र रोधितम् ॥७॥ अङ्कोल तैल संसिक्तां मूलं पारवतोद्भवम्। ललाटे तिलकं तेन कृत्वादृश्यो भवेन्नरः ॥८॥

टीका- (१) अङ्कोल के तैल में वचा को सात दिनों तक भिंगोये रखने के बाद त्रिलोह के ताबीज में भर कर, मुँह में रखने वाला मनुष्य अदृश्य हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥१॥

(२) अंकोल के तैल में सफेद सरसों को डुबोकर त्रिलोह के ताबीज

में भूले, फिर उसे मुँह में रखे तो मनुष्य अदृश्य हो जाता है ॥ २॥

(३) पचास के चूर्ण को सुरभि पत्र के साथ मिला कर, चावल के रस में पीस कर कड़ी गोली बनाले। फिर उस गोली को अंकोल के तैल में भिंगोकर, मुख में रखने वाला मनुष्य अदृश्य हो जाता है॥ ३-४॥

(४) कौवे तथा उल्लू के पंखों को तथा अपने सिर के बालों (केशों) को अन्तर्धूम विधि से जलाकर महीन चूर्ण बनाले। फिर अंकोल के तैल के साथ इस चूर्ण की गुटिका बनाये। उस गुटिका को अपने सिर पर रखने वाला मनुष्य तत्काल अदृश्य हो जाता है। उसे देखता भी नहीं देख पाते हैं ॥ ५-६॥

(५) हरताल, काली भैंस का दूध तथा अंकोल का तैल - इन सबको मिला कर शरीर में लगाने वाला मनुष्य अदृश्य हो जाता है - यह ब्रह्मा का कथन है ॥ ७॥

(६) कछुए की बीट को अंकोल के तैल में भिंगो कर, उसका अपने ललाट पर तिलक लगाने वाला मनुष्य अदृश्य हो जाता है॥ ८॥

टिप्पणी - अंकोल के बीजों का तैल निकालने की तीन विधियाँ बताई गई हैं -

१ - छिलका-रहित अंकोल के बीजों को थोड़ा सा घिस कर, किसी कांसे के बर्तन में रखदें, फिर उन पर चने के चूर्ण का लेप करके, उनके (बीजों के) मुँह पर थोड़ा-थोड़ा सुहागे का लेप करके, उन्हें चूल्हे में रख देने से तैल आसानी से निकल आता है।

2- अंकोल के बीजों के चूर्ण को इन्द्रायण के कोढ़ का घुट देकर तेल निकाला जाता है।

3- अंकोल के बीजों का चूर्ण करके, उसमें आक (मदार) के पत्तों के रस की सात भावना दे, तत्पश्चात् उस चूर्ण को घूप देने से तेल निकल आता है।

श्वेत वृक्ष (श्वेत पलाश) तन्त्र

नीले-लाल रंग के फूलों वाले पलाश के वृक्ष तो सर्वत्र उपलब्ध होते हैं, परन्तु श्वेत पुष्पों वाला पलाश-वृक्ष कम ही मिलता है। श्वेत-पलाश के वृक्ष को ही 'श्वेत वृक्ष' भी कहते हैं। श्वेत-पलाश वृक्ष के तान्त्रिक-प्रयोगों का उल्लेख आगे किया जा रहा है—

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि श्वेतवृक्षस्य कल्पनम्। शृणुवत्स विधिं तस्य श्वेतवृक्ष-स्य यत्फलम् ॥१॥ दारिद्र्य दुःखनिर्यासे नराणां बुद्धिवर्द्धनम्। तस्य पुष्पाणि संगृह्य सूक्ष्म चूर्णं तु कार-येत् ॥२॥ अजाक्षीरेण तद्भाव्यं त्रिवारं च पुनः पुनः। वङ्गस्य षोडशांशेन भस्मतापं तु कारयेत् ॥३॥ तद्भस्मं शोधयेन्नागेन पुनस्तेनैव चार्यते। जायते शोभनं तारं शालिकुन्दसमप्रभम् ॥४॥ तस्य वृक्षस्य पुष्पाणि तदुसे भाव्य तारकम्। त्रिवारं वेधयेद्धेमं तेन तारं च नान्यथा ॥५॥ हिमकुन्देन्दु सदृशमष्ट-दोष विवर्जितम्। जायते नान्यथा वत्स भक्तिमुक्तास्य तच्च तु ॥६॥ श्वेतवृक्षफलं दृष्ट्वा गन्धकं भाव्य यत्नतः। शुक्लपत्र प्रलेपेन पुटनैकेन काञ्चनम् ॥७॥ तस्य वृक्षस्य तैलेन भावयेद्रस गन्धकम्। नाम हेम

भवत्यायु द्वात्रिंशेन तु वेधयेत् ॥८॥ सद्म भवन मध्येतु कर्तव्यं तु यथोचितम् । तत्कालस्य रसेनैव स्वर्णं भवति निश्चितम् ॥९॥ पत्रमेकं पलाशस्य गर्भिणीपयसान्वितम् । कृत्वन्ते तानि पीतानि वन्ध्या भवति गर्भिणी ॥१०॥

टीका- अब 'अजल-वृक्ष-कल्प' कहता हूँ, हे वत्स! उस अजल-वृक्ष की विधि तथा फल को सुनो॥ १॥ वह मनुष्यों के दारिद्र्य तथा दुःख को दूर करने वाला एवं बुद्धि को बढ़ाने वाला है। उसके पुष्पों को लेकर सूक्ष्म चूर्ण करे तदुपरान्त उसमें बकरी के दूध की तीन बार भावनायें दे। फिर सोलहवाँ भाग रांगा (उसका) बारम करके, उसे सीसा (धातु) से शुद्ध करे, फिर उसमें पूर्वोक्त चूर्ण को मिला देने से वह रांगा कुन्द पुष्प तथा शंख के समान वर्ण वाला उत्तम चाँदी बन जाता है॥ हे वत्स! ऐसी चाँदी आठ दोषों से रहित होती है। यह सिद्धि अधिकारयुक्त मनुष्य को ही मिलती है॥ २-६॥

(२) अजवृक्ष के फल को लेकर, उसे यत्नपूर्वक गन्धक से भावित करे, फिर उसे चाँदी के पत्र पर लेप करके अग्नि में तपाये तो केवल एक फुट से ही वह चाँदी सोना बन जाती है॥७॥

(३) अजवृक्ष के तैल से (यह अजवृक्ष के बीजों से निकाला जाता है) पारा तथा गन्धक को भावित करके बत्तीस बार वेधन करने से सोना (स्वर्ण) बन जाता है॥८॥

स्वर्ण बनाने का कार्य घर के बाँये भाग में यथोचित विधि से करना चाहिए, श्वेत पलाश के रस से निश्चित रूपेण सोना बनता है॥९॥

(४) अर्कवृक्ष (श्वेत पलाश) के रक्तपत्तो को गर्भवती स्त्री के दूध के साथ पीसकर, ऋतु के अन्त में पीने वाली बन्ध्या-स्त्री भी गर्भ-धारण कर लेती है ॥ १०॥

रक्त गुञ्जा तन्त्र

अब रक्त गुंजा (लाल रंग की घुंघची) से सम्बन्धित तन्त्र को बताते हैं।

शिव-उवाच॥ गुञ्जा कल्पं प्रवक्ष्यामि गिरिजे शृणु यत्नतः। कल्पानां सारभूतोयं नाना कौतुक रूपवान् ॥ १॥ भूत प्रेत पिशाचादि डाकिनी शाकिनी गणः। यक्ष भैरव वेताला गुंजा-कल्पे निगद्यते ॥ २॥ बहु-चरितं वदामि त्वां कल्पानां सम्मुदाधिकम्। क्रियते साधकेंद्रेण तत्तासिद्धं भवेद्ध्रुवम् ॥ ३॥ शिवानन्द करी विद्या रक्तगुञ्जाति गुप्तदः। गुणां भेद संग्राह्य साधयेत्कल्प-मुत्तमम् ॥ ४॥ उपदेशं प्रवक्ष्यामि यथा साधन कर्मणि। क्वचिन्न चोनं भवति तदा सिद्धयति नान्यथा ॥ ५॥ (इति प्राकृत ग्रंथे)॥

टीका - 'प्राकृत ग्रंथ' के अनुसार - शिवजी ने कहा - हे पार्वती! अब मैं गुंजा कल्प के विषय में बताता हूँ, सावधान होकर सुनो। यह समस्त कल्पों का सारभूत तथा अनेक प्रकार के कौतुकों से युक्त है ॥ १॥ गुंजा-कल्प में भूत, प्रेत, पिशाच आदि, डाकिनी, शाकिनी गण, यक्ष, भैरव तथा वैताल का वर्णन है ॥ २॥ मैं तुमसे इस कल्प के अनेक चरित्रों को कहता हूँ, जिन्हें करने से साधक को निश्चित रूप से सिद्धि प्राप्त होती है ॥ ३॥ यह रक्तगुंजा-विद्या कल्याण तथा आनन्द करने

है। यह युक्ति-विद्या है। गुरु से इसका ज्ञान प्राप्त करके इसका उत्तम कल्प सिद्ध करना चाहिए ॥४॥
मैं तुमसे इसके साधन-कर्म के कर्तव्यों को कहता हूँ। यदि तनिक भी त्रुटि हो तो सिद्धि नहीं मिलती ॥५॥

रवौ शुक्लेकजे शुक्ले अनुकूले गृहे सति। कृष्णाष्टम्यां हस्तऋक्षे चतुर्दश्यां तु स्वातिभे ॥६॥ पूर्णा शालमिका युक्ता निम्बीये मूलमुद्धरेत्। गृहीत्वा गृहमागत्य निस्सन्देहमनाः शुचिः ॥७॥ दुग्धेन स्नापयेत्पश्चाद् धूपदीपादिकं ततः। सिद्धं भवति तन्मूलं काम्यकर्मणि योजयेत् ॥८॥ नारीनराणां सर्वादि विभञ्जनकारणम्। पीत्वा सुखतरं यान्ति नात्रकार्या विचारणा ॥९॥ तेनैव चर्चितं भाले तिलकं यः समाचरेत्। सभायां मानमाप्नोति बहुश्लाघा भवेत्तदा ॥१०॥ मन्यन्ते तद्वचः सत्यं सभायां संस्थिता नराः। गुञ्जाकल्प प्रभावेन नरं नारीं च नर्तयेत् ॥११॥ सकज्जलेन वै पिष्ट्वा नरेण किमतेऽञ्जनम्। जगन्मोहनमाप्नोति दृष्ट्वा साधक मुत्तमम् ॥१२॥ अपव्ययं प्रयोगेण न त्यजन्ति नराः क्वचित्। यस्मैकस्मैन दातव्यं सिद्धयोग उदाहृतः ॥१३॥ बिल्वपत्रस्थे पृष्ट्वा नयने तेन चाञ्जयेत्। दृष्टिप्रसारणेऽचत्र तत्र भूतं च पश्यति ॥१४॥ बिल्वाक्षैर्यस्तु तिलकं कुर्यात्साधकसत्तमः। भूत प्रेत पिशाचादि द्रुतं नश्यन्ति दर्शनात् ॥१५॥ शिवलिङ्गीरसे पिष्ट्वा लेपं कुर्यात्तु यो नरः। भूत प्रेत पिशाचादि दृष्ट्वा रूपं पलायते ॥१६॥ अजामूत्रेण पिष्ट्वा वै करलेपं तु कारयेत्। दूरवार्त्ता वदेत्तस्य यक्षिणी सहचारिणी ॥१७॥ मधुना योजनं कुर्यादैलालं पश्यति ध्रुवम्। यं यं प्रार्थयते कामं वेतालेऽस्मै प्रयच्छति ॥१८॥ दुग्धसंगेन पृष्ट्वा च लेपनं कुरुते बुधः। भूत प्रेत पिशाचाश्च यक्षाश्च योगिनीगणाः ॥१९॥ तत्सङ्गं नैव त्यजन्ति न तत्सांनिध्यिको भवेत्। साधकाला पालयन्ति यावज्जीवं न संशयः ॥२०॥

म.

टीका ॥ रविवार के दिन पुष्य नक्षत्र हो अथवा शुक्रवार के दिन रोहिणी नक्षत्र में ग्रहों के अनुकूल होने पर अथवा कृष्णपक्ष की अष्टमी को हस्त नक्षत्र या चतुर्दशी को स्वाति नक्षत्र अथवा पूर्णिमा को ज्ञातभिषा नक्षत्र होने पर रक्त-गुंजा की जड़ लें। सन्देह-रहित होकर सुखी व्यक्ति उस जड़ को लेकर सर्वप्रथम दूध से स्नान करावे तदुपरान्त उसे धूपादि दें। इस विधि से वह जड़ सिद्ध हो जाएगी, तत्पश्चात् उसे अन्य कार्य-कर्मों में उपयोग में लाया जा सकता है ॥ ६-८ ॥ सिद्ध-जड़ स्त्री-पुरुषों के लिए सर्पादि-विष-नाशक होती है। वे इसे पीकर सुखी होते हैं, इसमें विचार न करें ॥ ९ ॥ इस जड़ से अपने ललाट पर तिलक लगाने वाला व्यक्ति सभा में यथेष्ट सम्मान तथा प्रतिष्ठा प्राप्त करता है ॥ १० ॥ सभा में उपस्थित सभी लोग ऐसे व्यक्ति के वचनों को सत्य मानते हैं। गुंजा-कल्प के प्रभाव से साधक स्त्री-पुरुषों को अपने प्रभाव से नचाता है ॥ ११ ॥ काजल के स्थान पर पीस कर आँख में अंजन करने वाला साधक दृष्टि-निक्षेप मात्र से ही संसार को मोहित कर लेता है। यहाँ तक कि अपराध करने पर भी लोग उसे नहीं छोड़ते। इस सिद्ध-योग को चाहे जिस व्यक्ति को नहीं देना चाहिए ॥ १२-१३ ॥ इस जड़ को बिल्वपत्र के रस में घिस कर आँखों में अंजन की भाँति लगाने वाले व्यक्ति को, चाहे छिप कर देखने पर, भूत दिखाई देते हैं ॥ १४ ॥ तेल तथा मदार के रस में घिस का तिलक लगाने वाले व्यक्ति को देखते ही भूत, प्रेत, पिशाच आदि तुरन्त भाग जाते हैं ॥ १५ ॥ जो मनुष्य इसे शिवलिङ्गी के रस में पीस कर, अपने शरीर पर लेप करता है, उसके स्वरूप को देखते ही भूत, प्रेत तथा पिशाच आदि दूर भाग जाते हैं ॥ १६ ॥ बकरी के मूत्र में

म.

इसे पीस कर हाथ में लेप करने वाले साधक के पास यक्षिणी रहती है. दूर-दूर की बातें बताती है ॥१७॥ शहद के साथ घिस कर इसका आँखों में अंजन करने वाला साधक निश्चित रूप से वेताल को देखता है और वह वेताल साधक को इच्छित वस्तुएँ लाकर देता रहता है ॥१८॥ जो सुधी साधक इस जड़ को दूध के साथ घिस कर लेप करता है, उसे भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष तथा योगिनियाँ आदि कभी छोड़ते नहीं हैं तथा जीवन पर्यन्त उसकी आज्ञा का पालन करते रहते हैं - इसमें संदेह नहीं है ॥१९-२०॥

शर्करा सहितां पिष्ट्वा लिप्त्वा पादतले नरः। नेत्रोन्मीलन मात्रेण सहस्रं क्रोशगो भवेत् ॥२१॥ स्थल कमलेन यः पिष्ट्वा नाभिं लेपयते नरः। चतुष्कलामृतो यश्च जीवो जागृति-तामियात् ॥२२॥ अपामार्गस्य तैलेन पिष्ट्वा नेत्राञ्जनं चरेत्। आपातालं घनं लक्ष्यं दृष्टिगं दिव्यचक्षुषः ॥२३॥ कस्तूर्यैकाक्षि नेत्रेभ्यो ह्यञ्जनं कुरुते नरः। तृतीयं दृश्यते विश्वरूपं कालरूपी भवेत्तदा ॥२४॥ गंगाजलेन घृष्ट्वा च ह्यंजनं कुरुते नरः॥ दुष्टनर्वा दृश्यन्ति आश्चर्यं जायते नरः॥२५॥ निजरक्तेन सहसा घृष्ट्वा नेत्रे तु चाञ्जयेत्। तेन पश्यति त्रैलोक्यं निजनेत्रेण मानवः ॥२६॥ ऋतुमत्या रजोनिलेन अञ्जनं कुरुते नरः। पलायन्ते नराः सर्वे दृष्ट्वा रूपं भयानकम् ॥२७॥ तिल तैलेन यः पिष्ट्वा मर्दयेच्च शरीरकम्। स दर्शयति सर्वेषां वीर्यं चैर्यं नृणां नरः ॥२८॥ सिहिनी दुग्ध युक्तं वै शरीरे लेपयेन्नरः। शस्त्रबाधा न जायन्ते साहसेन जयेद्रणम् ॥२९॥ गोरोचन तलङ्गेन लक्ष्यं नाम लिखेन्नरः। वैरिणः स्तम्भनं सूयात्तन्न नाशाति निश्चितम् ॥३०॥ पिष्ट्वा कार्पास वर्त्तिं तु कृत्वा तैलेन दीपकम्। आश्चर्यं जायते तत्र मूर्च्छिता वै सभा भवेत् ॥३१॥ मानं शूलं

नुतिं स्तुत्या सर्वे कुर्वन्ति ये नराः दीपकांतिः प्रकर्तव्या सर्वाश्चर्यं विनश्यति ॥३२॥ कट्यां बध्वा नाग्र-
यन्त्रे नारी पुत्रमवाप्नुयात् । बलाक्षामोग्रः पलाशेतो गुञ्जामूल प्रभावतः ॥३३॥ घृतेन सह पिष्ट्वा वै लिङ्ग
लेपं तु कारयेत् । सु मुञ्चति न तो वीर्यमेकरात्रौ न संशयः ॥३४॥ मुखरूप लालया पिष्ट्वा ह्यंजनं क्रियते
नरैः । बन्ध मोक्षो भवेत्तेषां विनायत्नेन गच्छेत ॥३५॥ अलर्कतैल युक्तेन मधुकूटेन लेपयेत् । स्वर्णवर्णा
तनुस्तस्य कुष्ठरोगो विनश्यति ॥३६॥ निम्ब गर्भेण तं पिष्ट्वा भक्षयेच्चः प्रयत्नतः । तस्य कुष्ठं विनश्येत्तु नात्र
कार्या विचारणा ॥३७॥ कुक्कुटस्य च विष्ठायामञ्जनं क्रियते नरैः । सप्तरात्रेणान्ध दृष्टिस्तस्यात्तुर्यं गुणी भवेत्
॥३८॥ गव्यकेन घृतं पृष्ट्वा लेपयेन्नरलिंशतिम् । कुमार्यपि च तं दृष्ट्वा सद्यः प्राप्नोति वश्यताम् ॥३९॥
स्वमूत्रेणाञ्जनं कृत्वा स्वरो मधुरतामियात् । गान विद्या प्रवीणश्च भवत्येव न संशयः ॥४०॥ अनेन विधिना
वामे नरो मानवतां वरः । गुञ्जाकल्प प्रभावेन सर्वे सिद्ध्यन्ति हृच्छयाः ॥४१॥ गुञ्जाकल्प मिदं गोप्यं
त्वयाग्रे कथितं मया । त्वया कुत्रापि नो वाच्यं देवानामपि दुर्लभम् ॥४२॥ इति ॥

टीका - वाकरा (बाकला, चीनी) के साथ इस जड़ को पीस कर जो साधक अपने पाँवों में लगालेता है, वह सहस्र (हजार) कोस तक चल सकता है ॥ जो मनुष्य इसे स्याल-कमाल के साथ पीस कर अपनी नाभि पर लेप करता है, वह चारों कलामृत से युक्त हो, जागृति को पाता है ॥२१-२२॥ इसे अपामार्ग के तैल में पीस कर अंजन करने वाला मनुष्य दिव्य-दृष्टि वाला हो जाता है तथा पाताल में गये हुए धन को देख लेता है ॥२३॥ जो व्यक्ति प्रातःकाल के समय कस्तूरी के साथ घिस कर अंजन करता है, वह सम्पूर्ण संसार के तृण को देखता है तथा स्वयं कालरूप हो जाता है ॥ २४॥ जो मनुष्य इसे गोमूत्र में घिस

का अंजन कराता है, वह पुत्र-वर्षा को दिखाने में समर्थ होता है. जिसे देखकर अन्य लोग आश्चर्य-चकित रह जाते हैं ॥ २५॥ जो व्यक्ति इसे अपने ही वस्त्र में घिस कर आँखों में अंजन लगाता है, वह तीनों लोकों को अपनी आँखों से देखने में समर्थ हो जाता है ॥ २६॥ जो व्यक्ति इसे रजस्वला के वक्ष में पीस कर, अपनी आँखों में लगाता है, उसके अद्भुत स्वरूप को देखकर अन्य सभी लोग भाग खड़े होते हैं ॥ २७॥ जो व्यक्ति इसे तिल के तेल में पीस कर अपने शरीर पर लगाता है, वह सब लोगों के समक्ष अपनी शक्ति तथा चर्म को प्रदर्शित करने में समर्थ हो जाता है ॥ २८॥ जो व्यक्ति इसे हिंहिनी के दूध में घिस कर अपने शरीर पर लगाता है, उसे शस्त्रों की चोट नहीं लगती तथा वह अपने साहस से विजय प्राप्त कराता है ॥ २९॥ गोरोचन तथा लौंग के साथ इसे मिला कर जिस वस्तु का नाम लिखता है, वह कहीं भी क्यों न हो, स्तंभित हो जाता है और वह साधक के पास तक नहीं आ पाता ॥ ३०॥ इसे पीस कर, कपास की रुई के साथ बत्ती बनाये तथा उस बत्ती को तेल के दीपक में डाल कर जलाये तो उसके प्रकाश में सारी सम्पदा परिलक्षित हो जाती है ॥ ३१॥ जब सभा के सभी लोग साधक की स्तुति, मान, प्रशंसा तथा प्रणाम करते हैं, तब दीपक को बुझा देने पर सभी आश्चर्य समाप्त हो जाते हैं ॥ ३२॥ इस जड़ को ताँबे के ताबीज में भर कर, अपनी कमर में बाँध लेने वाली स्त्री को पुत्र-लाभ होता है ॥ ३३॥ यदि इसे घृत में पीस कर लिंग पर लेप कर लिया जाय तो साधक पूरी रात भर वीर्य-त्याग नहीं करता अर्थात् सहवास के समय रात भर वीर्य स्खलित नहीं होता - इसमें सन्देह नहीं है ॥ ३४॥ जो मनुष्य इसे अपने ही मुँह की लार में पीस कर आँखों में आँजता है, वह बिना प्रयत्न किए ही बन्धन से छूट जाता है ॥ ३५॥ आमली के तेल तथा मधुकूट के साथ पीस कर लेप करने से साधक का

शरीर स्वर्ण-वर्ण का हो जाता है तथा कुष्ठ रोग नष्ट हो जाता है ॥३६॥ नीम की निंबौली की मींगी के साथ इसे पीस कर सेवन करने वाला मनुष्य कुष्ठ रोग से छुटकारा पा लेता है - इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥३७॥ जो मनुष्य मुर्गे की बीठ के साथ इसे मिलाकर आँखों में अंजन करता है, वह सात दिनों के भीतर ही, यदि अन्धा हो तो भी, चौगुना देख उठता है ॥३८॥ गंधक के साथ इसे पीकर अपने बीसों नाखों पर लगाने वाला साधक कुमार्गगामी को भी अपने वश में कर लेता है ॥३९॥ अपने मूत्र के साथ इसे मिलाकर अंजन करने वाले साधक का स्वर मधुर हो जाता है। ऐसा व्यक्ति गान-विद्या में प्रवीण हो जाता है, इसमें सन्देह नहीं है ॥४०॥ हे वामे! इस विधि से मनुष्य श्रेष्ठता प्राप्त कर लेता है। गुंजा-कल्प के प्रभाव से सभी इच्छाएँ पूरी होती हैं ॥४१॥ मैंने तुमसे इस परम गोपनीय 'गुञ्जा-कल्प' को कहा है। तुम इसे किसी को मत बताना, क्योंकि यह देवताओं के लिए भी दुर्लभ है ॥४२॥ इतिरक्त गुञ्जा कल्पः ॥

अथ श्वेत-गुञ्जा मन्त्र

अब श्वेत-गुञ्जा (सफेद घुंघची) का कल्प कहते हैं ॥ सर्वप्रथम कृष्ण पक्ष की अष्टमी अथवा चतुर्दशी के दिन श्वेतागुंजा के फल को मिट्टी सहित ला कर निम्न लिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए किसी स्वच्छ-स्थान में बो दे। मन्त्र निम्नानुसार है -

"ॐ श्वेत वर्णे सितापर्वत वासिनि अणतिहते मम कार्यं कुरु कुरु ठः ठः स्वाहा ॥"

फिर निम्न लिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसे प्रतिदिन जल से सींचा करे—

"ॐ श्वेतवर्णे सितवर्णे श्वेतपर्वतवासिनि सर्वकार्याणि कुरु कुरु अप्रतिहते नमोनमः॥"

जब वृक्ष लग्गा हो जाय, तब उसके नीचे बैठकर निम्न लिखित मन्त्रों का उच्चारण करे— म.

"ॐ श्वेतवर्णे हृदयाय नमः।
ॐ पद्ममुखे शिरसे स्वाहा।
ॐ सर्वज्ञानमये शिखायै वषट्।
ॐ सर्वशक्तिमति कवचाय हुं।
सितपर्वतवासिनि नेत्रत्रयाय वौषट्।
भगवति ह्रीं मम कार्यं कुरु कुरु ठः ठः नमः स्वाहा इत्यस्त्राय फट्॥"

उक्त मन्त्रों से न्यास करने के बाद श्वेत गुञ्जा वृक्ष की पंचोपचार से पूजा करे, फिर निम्न लिखित मन्त्र का १० हजार की संख्या में जप करे—

"ॐ श्वेतवर्णे पद्ममुखे सर्वज्ञानमये सर्वशक्तिमति सितपर्वतवासिनि भगवति ह्रीं मम कार्यं कुरु कुरु ठः ठः नमः स्वाहा।"

मन्त्र-जप पूरा होजाने पर पुष्य-नक्षत्र वाले दिन उक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए उस वृक्ष को उखाड़ कर, छाया में सुखा कर रखले। तदुपरान्त उसे सफेद चन्दन के साथ घिस कर, आगे लिखे मन्त्र से अभिमंत्रित कर, मस्तक पर तिलक लगाने से देखने वाला वशीभूत होगा।

मन्त्र निम्न लिखित है -

"ॐ नमः श्वेत गात्रे सर्वलोकवशङ्करि दुष्टान् वक्षं कुरु कुरु अमुकं मे वशमानय स्वाहा।"

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकं' शब्द आया है, वहाँ साध्य-व्यक्ति के नाम का उच्चारण करना चाहिए।

अथवा सफेद सरसों एवं शिवंगु के साथ श्वेतगुंजा वृक्ष को पीस कर, उक्त मन्त्र से अभिमंत्रित करके, जिस साध्य-स्त्री-पुरुष के मस्तक पर डाल दिया जाएगा, वह वशीभूत होकर साधक के साथ ही चला आयेगा तथा जीवन भर दास (सेवक) बना रहेगा, इसमें सन्देह नहीं है॥ इति श्वेतगुञ्जा तन्त्रम्॥

अथ तिल तन्त्रम्

पारावतशीर्षमादाय कृष्णमृत्तिकया पूरयित्वा तिलबीजानि वापयेत् क्षीरोदकेन सिञ्चेद्यदा पुष्पिता भवति तदा मुखे संस्थाप्य अदृश्यो भवति ॥१॥ तेषां फलानां चूर्णं कृत्वा तेन चूर्णेन यं स्पृशति स किङ्करो भवति सर्वस्वं ददाति॥२॥ तानि तिलानि संगृह्य नेत्राञ्जनेन सह पिष्ट्वा कपिला दुग्धेन गुटिकां कारयेत् सप्तरात्रं पाचयेत् तां गुटिकां मुखे निक्षिप्य अदृश्यो भवति देवैरपि न दृश्यते मनुष्याणां का कथा उद्गीर्णे पुरुषो दृश्यो भवति जीवेद्वर्षशतं स्त्रियः सर्वे जनाश्च वशगा भवन्ति॥३॥ इति॥

टीका - पारावत अर्थात् कबूतर का सिर लाकर उसमें काली मिट्टी भरे, फिर उसमें तिल

के बीज को दे। तदनन्तर उसे दूध तथा पानी से सींचता रहे। जब उसमें फूल आ जाय, तब उस फूल को मुँह में रखने वाला साधक अदृश्य हो जाता है॥१॥

(२) उक्त पौधे में बीज लगने पर उन बीजों का चूर्ण बना कर, उस चूर्ण द्वारा जिसे स्पर्श किया जाता है, वह साधक का दास बन जाता है तथा अपना सर्वस्व समर्पित कर देता है॥२॥

(३) उक्त तिलों को रुकत्त करके नेत्राञ्जन (सुरमा) के साथ घीसे, फिर कपिला गाय के दूध के साथ गुटिका बना कर, उसे सात दिनों तक पकाये। ऐसी गुटिका को मुँह में रखने वाला साधक ऐसा अदृश्य हो जाता है कि उसे देवता भी नहीं देख पाते, फिर मनुष्यों की तो बात ही क्या है। गुटिका को मुँह से निकाल लेने के बाद पुनः दिखाई दे उठता है। इस गुटिका के प्रभाव से साधक सौ वर्षों तक जीवित रहता है, तथा सभी लोग उसके वशीभूत बने रहते हैं॥३॥

अथ वृक्ष-मूल तन्त्रम्

अब विविध प्रकार के वृक्षों की जड़ों के तन्त्र का वर्णन करते हैं—

अथ श्वेतार्क मूल तन्त्र – श्वेतार्क मूलमादाय श्वेतचन्दन संयुतम्। अनेन तिलकं माले कृत्वा मोहं नयेज्जगत॥१॥ पुष्यार्के च गृहीत्वा तु श्वेतार्कस्य हि मूलकम्। धारयेद्दक्षिणे हस्ते सिद्धं बाधा

टीका- सर्व प्रथम श्वेतार्क (सफेद फूलों वाला मदार) तन्त्र के विषय में बताते हैं—
(१) श्वेत मदार की जड़ को लाकर श्वेत चन्दन के साथ मिला कर घिसे। फिर उसका तिलक लगाये तो संसार मोहित हो जाता है।
(२) पुष्य नक्षत्र में श्वेत मदार की जड़ को खोद कर लाये। उस जड़को जो साधक अपने दाँये हाथ में बाँधता है, उसे सिंह का भय नहीं रहता।

अथ पुनर्नवा मूल तन्त्र- पुष्ये पुनर्नवा मूलं करे सप्ताभिमन्त्रितम्। बद्ध्वा सर्वत्र पूज्यः स्यान्मन्त्रस्तत्त्वैः प्रजायते ॥१॥

टीका- पुष्य नक्षत्र में पुनर्नवा (गदहपूर्णा) की जड़ को सात बार अभिमंत्रित करके हाथ में बाँधने वाला साधक सर्वत्र पूजनीय बना रहता है ॥१॥

अथ अपामार्ग मूल तन्त्र- गृहीत्वा पुष्य नक्षत्रे अपामार्गस्य मूलकम्। लेपमात्राच्छरीराणां सर्व शस्त्र निवारणम् ॥१॥ अपामार्गस्य मूलं तु कपिला दुग्ध पेषितम्। ललाटे तिलकं कृत्वा नरीकुर्याज्जगत्त्रयम् ॥२॥ गृहीत्वा पुष्य नक्षत्रे अपामार्गस्य मूलकम्। धारयेद्दक्षिणे कर्णे न वृश्चिक भयं भवेत् ॥३॥ रक्तापामार्ग मूलं तु सोमवारेऽभिमन्त्रितम्। भौमे प्राप्तः समुद्दिष्टं कण्ठां बद्धं तु वीर्य धृक् ॥४॥

टीका- पुष्य-नक्षत्र में अपामार्ग (ओगा या चिचिड़ा) की जड़ लाकर, शरीर पर लेप

करने मात्र से ही सभी शत्रुओं के प्रहार व्यर्थ होजाते हैं ॥१॥

(२) अपामार्ग की जड़ को कपिला गाय के दूध के साथ पीस कर, उसका ललाट पर तिलक लगाने वाला मनुष्य तीनों लोकों को अपने वश में कर लेता है ॥२॥

(३) अपामार्ग की जड़ को शुभ-नक्षत्र में लाकर, अपने दाँये कान पर धारण करने वाले को बिच्छू का भय नहीं रहता ॥३॥

(४) लाल रंग वाले अपामार्ग की जड़ को सोमवार के दिन अभिमंत्रित करके, मंगलवार के दिन उखाड़ कर घर ले आये। उसे कमर में बाँध कर मैथुन करने से वीर्य का स्तंभन होता है ॥४॥

अथ गुञ्जा मूल तन्त्र - पुष्यार्के श्वेत गुञ्जायां मूलमुद्धृत्य धारयेत्। हस्ते कण्ठे भयं नास्ति संग्रामे तु कदाचन ॥१॥ गृहीत्वा श्वेत गुञ्जायाश्छागया शुल्कं तु कारयेत्। कपिला पयसा घृत्वा तिलकं मोहयेज्जगत् ॥२॥ गृहीत्वा पुष्य नक्षत्रे श्वेत गुञ्जा मूलकं। धारये दक्षिणे हस्ते द्यूतकार्ये जयो भवेत् ॥३॥

टीका - अब गुञ्जा-मूल (घुंघची) की जड़ का तन्त्र कहते हैं -

(१) पुष्य नक्षत्र में श्वेत गुंजा की जड़ को उखाड़ कर हाथ में धारण करने से युद्ध में करने का भय नहीं रहता ॥१॥

(२) श्वेत गुंजा की जड़ को छागा से मुरवा कर, कपिला गाय के दूध में घिसे कि उसका तिलक लगाने वाला मनुष्य संसार को मोहित कर लेता है ॥२॥

(३) पुष्य नक्षत्र में श्वेत गुंजा की जड़ को दाँये हाथ में बांधकर जुआ खेलने वाला मनुष्य द्यूत-क्रीड़ा में विजयी होता है ॥३॥

अथ श्वेतकरवीर मूल तन्त्र – गृहीत्वा रविवारे तु श्वेतकरवीर मूलकम् । धारयेद्दक्षिणे हस्ते अग्निबाधा भयं न हि ॥१॥

टीका – सफेद कनेर की जड़ को रविवार को उखाड़ कर अपने दाँये हाथ में बाँधने से अग्नि-बाधा का भय नहीं रहता ॥१॥

अथ चत्तूर मूल तन्त्र – गृहीत्वा शुभ नक्षत्रे चत्तूर मूलकं तथा । धारयेद्दक्षिणे बाहौ व्याघ्र बाधा भयं न हि ॥१॥ चत्तूरमूलं कटि बद्धं गर्भ स्तम्भन कारकम् । चत्तूर मूल चूर्णं तु योनि स्थं गर्भ स्तम्भनम् ॥२॥

टीका – धतूरे की जड़ को शुभ नक्षत्र में लाकर दाँये हाथ में धारण करने से व्याघ्र (बाघ) की बाधा नहीं होती ॥१॥

(२) धतूरे की जड़ को कमर में बाँधने से अथवा उसके चूर्ण को योनि में रखने से गर्भ का स्तम्भन होता है अर्थात् गर्भ नहीं गिरता ॥२॥

अथ अमृता मूल तन्त्र - नरो हि पुष्य नक्षत्रे अमृता मूलकं हरेत्। तन्मालां धारयेत् कण्ठे सर्पबाधा भयं न हि ॥१॥

टीका - पुष्य नक्षत्र में अमृता (गिलोय) की जड़ लाकर, उसकी माला बना कर कंठ में धारण करने से सर्प की बाधा (भय) नहीं रहती ॥१॥

अथ विष्णुक्रान्ता मूल तन्त्र - पुष्यार्के तु समुद्धृत्य विष्णुक्रान्ता सुमूलकम्। वक्त्रे शिरसि धार्यं वै शस्त्र संहारणं नृणाम् ॥१॥ बन्ध्यास्तु व्याघ्र भूपाल चौर शत्रुभयं जयेत् ॥२॥ विष्णुक्रान्ता सुमूलं तु पिष्ट्वा माहिष दुग्धके। महिषी नवनीतेन ऋतुकालं तु भोजयेत्। एवं सप्तदिनं कुर्यात्पुनर्गर्भं समाप्नुयात् ॥३॥

टीका - अब विष्णुक्रान्ता मूल संबंधी तन्त्रों को कहते हैं -

(१) रविवार के दिन पुष्य नक्षत्र में विष्णुक्रान्ता की जड़ को उखाड़ कर मुख में अथवा मस्तक पर धारण करने से शस्त्रों का प्रभाव नहीं होता ॥१॥

(२) उक्त प्रकार का प्रयोग बन्ध्यत्व एवं जल, व्याघ्र, चोर तथा शत्रु के भय को भी नष्ट कर देता है ॥२॥

(३) विष्णुक्रान्ता की जड़ को भैंस के दूध में पीस कर, भैंस के मक्खन के साथ ही स्त्री को ऋतु काल में सात दिनों तक खिलाते रहने से वह पुनः गर्भ धारण कर लेती है ॥३॥

अथ सुदर्शनि मूल तन्त्र - करे सुदर्शना मूलं वैरिस्तम्भ करं परम्। करे सुदर्शना मूलं बध्वा राजप्रियो भवेत् ॥१॥

टीका - सुदर्शनि की जड़ को हाथ में बाँधने से शत्रु का परम स्तम्भन होता है ॥१॥ सुदर्शन की जड़ को हाथ में बाँधने वाला मनुष्य राजा को प्रिय होता है ॥२॥

अथ बृहती मूल तन्त्र- मूलं बृहत्या मधुकं पिष्ट्वा नस्यं समाचरेत्। निद्रास्तम्भनमेत-द्धि मूलं देवेन भाषितम् ॥१॥

टीका - बृहती की जड़ को शहद में पीस कर नस्य लेने से निद्रा (नींद) का स्तम्भन होता है अर्थात् नींद नहीं आती- ऐसा देव ने कहा है ॥१॥

अथ सिंही मूल तन्त्र - सिंही मूल हरेत् पुष्ये कण्ठां बध्वा नृपप्रिय: ॥१॥
टीका - सिंही की जड़ को पुष्य नक्षत्र में लाकर कण्ठ में बाँधने वाला मनुष्य राजा को प्रिय होता है।

अथ सिद्धार्थ मूल तन्त्र - सिद्धार्थ मूलं बध्वा के कान्तेन रमते नु या। न गर्भं धारयेत्सा-स्त्री मुक्तो भुलभते पुन: ॥१॥

टीका - सिद्धार्थ (श्वेत सरसों) की जड़ को सिर में बाँधकर जो स्त्री पति के साथ रमण

म.

करती है, वह गर्भ धारण नहीं करती। परन्तु उसे बंधोल देने पर पुनः गर्भ-धारण कर सकती है॥१॥

अथ वट मूल तन्त्र- गृहीत्वा वटमूलं च जलेन सह पर्वयेत्। विभीत्वा संयुतं भाले कृत्वा लोकान्वशे नयेत्॥१॥ म.

टीका- बरगद की जड़ लाकर उसे पानी में घिसे, फिर उसे बहेड़े के साथ मिला कर घिसे। इस लेप का तिलक ललाट पर लगाने वाला मनुष्य सब लोगों को वश में कर लेता है॥१॥

अथ उदुम्बर मूल तन्त्र- गृहीत्वोदुम्बरं मूलं ललाटे तिलके कृते। यिषो भवति सर्वेषां दृष्टिमात्रान्न संशयः॥१॥ ताम्बूलेन प्रदातव्यं सर्वलोकवशङ्करम्॥२॥

टीका- उदुम्बर (गूलर) की जड़ को घिस कर, उसका ललाट पर तिलक लगाने वाला मनुष्य दर्शन मात्र से ही सब का प्रिय बन जाता है॥१॥

उदुम्बर की जड़ को पान में रख कर खिलादेने से सब लोग वश में हो जाते हैं॥२॥

अथ सहदेवी मूल तन्त्र- गृहीत्वा सहदेव्याश्च धात्रा शुक्लेन सूत्रतः। ताम्बूलेन तन्त्रयुक्तं सर्वलोक वशंकरम्॥१॥

टीका- सहदेवी की जड़ लाकर धात्री में सूतों से उसके चूर्ण को पान में रख कर खिलादेने से

सब लोग वश में हो जाते हैं ॥ १ ॥

अथ कौमारीमूल तन्त्र - कौमारी कन्दमादाय विजयाबीज संयुतम् । तिलकं कुरुते भालेऽने- म.
-न लोकवशंकरः ॥ १ ॥

टीका - कुमारी (घृतकुमारी, घीकुँआर या ग्वारपाठा) की जड़ लाकर, उसमें विजया (भाँग) के बीज मिला कर पीसे, फिर उससे मस्तक (ललाट) पर तिलक लगाने वाला मनुष्य सब लोगों को वश में कर लेता है ॥ १ ॥

अथ कदलीमूल तन्त्र - सिन्दूर कदलीकन्दं पेषयेद्भौमवासरे । अनेन तिलकं कृत्वा सप्तं नारी वशा भवेत् ॥ १ ॥

टीका - केले की जड़ को सिन्दूर के साथ, मंगलवार के दिन पीस कर तिलक लगायें तो साधक - स्त्री वशीभूत होती है — यह सत्य है ॥ १ ॥

अथ ताम्बूल वल्ली जाति मूल तन्त्र - कृतस्तु मूल ताम्बूलया तिलको लोकमोहनः । जाती-
मूलं मुखे क्षिप्तं वाहनं स्तम्भकरं परम् ॥ १ ॥

टीका - ताम्बूल (पान) की बेल की जड़ से किया हुआ तिलक संसार को मोहित करने

वाला होता है ॥१॥ तामूल की बेल की जड़ को मुख में दबाये रखने से 'शास्त्र-सम्मान' होता है ॥२॥

अथ आम्र मूल तन्त्र - अनुराधा युक्तेर्कवारे आम्रवृक्ष मूलं गृहीत्वा स्वनिकटे स्थापयेत् गतवस्तु लाभः ॥१॥ विशाखायुक्तेर्कवारे आम्रवृक्ष मूलं गृहीत्वा धान्यराशौ स्थापयेत् धान्यवृद्धिः ॥२॥

टीका - अनुराधानक्षत्र युक्त रविवार को आम के वृक्ष की जड़ को लाकर अपने समीप रखने से खोई हुई वस्तु मिल जाती है ॥१॥

(२) विशाखा नक्षत्र युक्त रविवार को आम की जड़ लाकर अन्न की राशि (ढेर) में रखने से अन्न की वृद्धि होती है ॥२॥

अथ पलाश मूल तन्त्र - हस्तार्कवारे पलाश मूलं गृहीत्वा निकटे स्थापयेत् अदृश्यो भवति ॥१॥

टीका - हस्तनक्षत्र युक्तरविवार को पलाश (ढाक) की जड़ लाकर अपने पास रखने वाला साधक अदृश्य हो जाता है ॥१॥

अथ रेरण्ड मूल तन्त्र - धनिष्ठार्कवारे रेरण्ड मूलं गृहीत्वा हस्ते बध्नीयाच्चि-
-न्तित कार्य सिद्धिः ॥१॥

टीका- धनिष्ठा नक्षत्र युक्त शनिवार को रण्ड (अण्डी, रेंड़ी) की जड़ लाकर हाथ में बाँधने से सोचा हुआ काम सिद्ध होता है ॥१॥

अथ शृङ्गराज मूल तन्त्र- अश्विन्यार्किवारे शृङ्गराज मूलं गृहीत्वा हस्ते बद्धनीयात्सर्वजना वश्या भवेयुः ॥१॥

टीका- अश्विनी नक्षत्र युक्त शनिवार को शृङ्गराज (भाँगरा) की जड़ को हाथ में बाँधने से सभी मनुष्य वशीभूत होते हैं ॥१॥

अथ बध्यक चमत्कार तन्त्रम्

बध्यक लक्षणम् ॥ बध्यकं नाम वृक्षोपरि अन्य वृक्ष रोपणं वा उत्पद्यते तत्र बध्यकमिति संज्ञा ॥

टीका - अब 'बध्यक तन्त्र' के विषय में बताते हैं। सर्वप्रथम 'बध्यक' (बाँदा) के लक्षण बताते हैं, जो इस प्रकार है - किसी वृक्ष पर किसी अन्य वृक्ष की शाखा उत्पन्न हो जाय तो उस शाखा को 'बध्यक' अर्थात् 'बाँदा' कहा जाता है।

[टिप्पणी- कुछ लोग 'बाँदा' को एक स्वतन्त्र वनस्पति मानते हैं, जो किसी भी अन्य वृक्ष के ऊपर उत्पन्न

हो जाती है, परन्तु तन्त्र-शास्त्र में किसी विशेष किस्म की वनस्पति को ही 'बन्धक' (बाँदा) न मान कर, उन सभी पर-जीवी पौधों की शाखा को ही 'बन्धक' माना जाता है, जो अपने से भिन्न वृक्ष पर उग आती है।]

अथ पिप्पलबन्धक तन्त्र- अश्विनर्क्षे वारे पिप्पल बन्धकं गृहीत्वा गोमूत्रेण संघृष्य वन्ध्यापाने क्षरेत्ति तस्याः पुत्रो भवेत् ॥१॥ भरण्यार्किवारे पिप्पलबंधकं गृहीत्वा धान्यराशौ स्थापितं चेद्धान्यवृद्धि र्भवति ॥२॥ कर्णे बन्धितं चेत्पीड़ानाशः ॥३॥ हस्ते बन्धितं चेन्नेत्ररोगो नश्यति, भूतबाधाः नश्यन्ति ॥ ४॥ रेवत्यार्किवारे पिप्पलबन्धकं गृहीत्वा स्त्रियः हस्ते बध्नीयात्पुत्रो भवति ॥५॥

टीका- अब पीपल के बाँदे के तन्त्रों को बताते हैं—

(१) अश्विनी नक्षत्र युक्त शनिवार को पीपल के वृक्ष पर उत्पन्न बाँदे को लाकर, गोमूत्र के साथ पीसे तथा वन्ध्या-स्त्री को पिलाये तो वह पुत्र को जन्म देती है ॥१॥

(२) भरणी नक्षत्र युक्त शनिवार को पीपल का बाँदा लाकर, उसे अन्न की राशि में रख देने से अन्न की वृद्धि होती है ॥२॥

(३) पीपल के बाँदे को कान में बाँधने से कान की पीड़ा दूर होती है ॥३॥

(४) हाथ में पीपल का बाँदा बाँधने से आँख के रोग दूर होते हैं तथा भूत-बाधा भी नष्ट हो जाती है ॥ ४॥ [संख्या ३ तथा ४ के प्रयोगों में भरणी नक्षत्र युक्त शनिवार के दिन लाये गये बाँदा का ही उपयोग करें।]

(५) रेवती नक्षत्र युक्त शनिवार को पीपल का बाँदा लाकर स्त्री के हाथ में बाँध देने से

वह पुत्र को जन्म देती है ॥५॥

अथ वट बन्धक तन्त्र- अश्विन्यार्कवारे वट बन्धकं गृहीत्वा मस्तके स्थापितं चेद्दृश्यो भवति॥१॥ मघार्कवारे वटबन्धकमानीय गृहे स्थापितं चेद्दृश्यसा सिद्धिर्भवति॥२॥

टीका- (१) अश्विनी नक्षत्र युक्त रविवार को बरगद का बाँदा लाकर मस्तक पर धारण करने वाला मनुष्य अदृश्य हो जाता है॥१॥

(२) मघा नक्षत्र वाले रविवार को बरगद का बाँदा लाकर घर में स्थापित करने से आठवीं सिद्धि (वशित्व) प्राप्त होती है॥२॥

अथ निम्ब बन्धक तन्त्र- श्रवणार्कवारे निम्बबन्धकं गृहीत्वा स्वनिकटे स्थापयेत् तस्योपरि कस्यापि अन्यं न चलति॥१॥

टीका- श्रवण नक्षत्र वाले रविवार को नीम के वृक्ष का बाँदा लाकर अपने पास रखने वाले व्यक्ति के ऊपर किसी अन्य का वश नहीं चलता॥१॥

अथ आम्रबन्धक तन्त्र- रोहिण्यार्कवारे आम्रबन्धकं गृहीत्वा हस्ते बध्वा सर्वकार्याणि सिद्धयन्ति॥१॥

टीका- रोहिणी नक्षत्र वाले रविवार को आम का बाँदा लाकर हाथ में बाँध लेने से सभी कार्य सिद्ध होते हैं॥१॥

अथ जम्बुक बन्धन तन्त्र - श्रवणार्किवारे जम्बुवृक्षस्य बन्धकं गृहीत्वा हस्ते लेपं कृत्वा स्त्रियाः हस्ते धृता वश्या भवति ॥१॥

टीका - श्रवण नक्षत्र वाले शनिवार को जामुन के वृक्ष का बाँदा लाकर, उसका हाथ में लेप करके, जिस साध्य-स्त्री का हाथ पकड़ा जाय, वह साधक के वशीभूत हो जाती है ॥१॥

अथ शिरस बन्धक तन्त्र - उत्तराभार्किवारे शिरसवृक्ष बन्धकं गृहीत्वा दरिद्रस्य हस्ते बद्धनीयाद्धनवान् भवेत् ॥१॥

टीका - तीनों उत्ता (उत्तराभाद्र, उत्ताषाढ़ा एवं उत्राफाल्गुनी) नक्षत्रों में से किसी भी एक नक्षत्र से युक्त शनिवार को शिरस-वृक्ष का बाँदा लाकर किसी दरिद्र-व्यक्ति के हाथ में बाँध देने से वह धनवान् हो जाता है ॥१॥

अथ बिल्व बन्धक तन्त्र - मूलार्किवारे बिल्ववृक्ष बन्धकं गृहीत्वा हस्ते बद्धवा वैरी वश्यो भवति ॥१॥

टीका - मूल नक्षत्र वाले शनिवार को बिल्व-वृक्ष का बाँदा लाकर हाथ में बाँधने से शत्रु वशी भूत हो जाता है ॥१॥

अथ बदरी बन्धक तन्त्र - अनुराधार्किवारे बदरीबन्धकं गृहीत्वा हस्ते बध्वा जगदुशं भवति ॥१॥ स्वात्यार्किवारे बदरी बन्धकं गृहीत्वा हस्ते बध्वा सर्वकामनासिद्धो भवति ॥२॥

टीका - अनुराधा नक्षत्र युक्त शनिवार को बेर का बाँदा ले कर हाथ में बाँधने से संसार वश में हो जाता है ॥१॥ म०

(२) स्वाति नक्षत्र वाले शनिवार को बेर का बाँदा हाथ में बाँधने से सभी काम-नाएँ सिद्ध होती हैं ॥२॥

अथ शाल बन्धक तन्त्र - चित्रार्किवारे शालवृक्षबन्धकं गृहीत्वा निकटे स्थापितं चेदृश्यो भवति ॥१॥

टीका - चित्रा नक्षत्र वाले शनिवार को शाल वृक्ष का बाँदा लाकर अपने पास रखने वाला मनुष्य अदृश्य हो जाता है ॥१॥

अथ शारखोटक बन्धक तन्त्र - शारखोटस्य बन्धकं नक्षत्रे मृगशीर्षके। गृहीत्वा पान मात्रेण अदृश्यो जायते नरः ॥१॥

टीका - शारखोटक - वृक्ष के बाँदा को मृगशिरा नक्षत्र में लाकर, उसे पीने मात्र से ही मनुष्य अदृश्य हो जाता है ॥१॥

अथ करञ्ज बन्धक तन्त्र - चित्रार्किवारे करञ्ज बन्धकं गृहीत्वा मस्तके बध्वा अदृश्यो भवति ॥१॥

टीका - चित्रानक्षत्र वाले रविवार को करञ्ज-वृक्ष का बाँदा लाकर, उसे मस्तक पर बाँधने से मनुष्य अदृश्य हो जाता है ॥१॥ म.

अथ भल्लातक बन्धक तन्त्र - अश्विन्यार्किवारे भल्लातक बन्धकं गृहीत्वा दिन-त्रयसेवनं क्रियते दद्रुकुष्ठपामा नश्यन्ति ॥१॥

टीका - अश्विनी नक्षत्रवाले रविवार को भल्लातक (भिलावा) के वृक्ष का बाँदा लाकर उसे तीन दिनों तक सेवन करने से दाद, कोढ़ तथा खुजली-ये रोग नष्ट हो जाते हैं ॥१॥

अथ कचोरा बन्धक तन्त्र - विश्वार्किवारे महाराष्ट्र भाषोक्त चोरा बन्धकं गृहीत्वा धान्यमध्ये स्थापितं चेद्धान्यवृद्धिर्भवेत् ॥१॥ तदैव गोनकेण संवृष्य हस्ते लिप्त्वा स्त्रियः हस्तो धृते द्राविणं भवति ॥२॥

टीका - मिलाला नक्षत्र वाले रविवार को मराठी भाषा में जिस वृक्ष को 'कचोरा' कहा जाता है, उसके बाँदा को लाकर अन्न की राशि में रख देने से अन्न की वृद्धि होती है ॥१॥

(२) मिलाला नक्षत्र वाले रविवार को लाये गये 'कचोरा' वृक्ष के बाँदा को गाय के मट्ठे में घिसकर अपने हाथ में लेपकरे, फिर उस हाथ से स्त्री का हाथ पकड़ने पर उसका द्रावण होता है ॥२॥

अथ चमोडा बन्धक तन्त्र- अश्विन्यार्किवारे महाराष्ट्र भाषोक्त चमोडा बंधकं गृहीत्वा चूर्णं कृत्वा अजादुग्धेन पानं कुर्यात्पुष्टिर्भवति ॥ १॥

टीका - अश्विनी नक्षत्र वाले रविवार को मराठी भाषा में जिसे 'चमोडा' कहते हैं, उसका बाँदा लाकर चूर्ण बनावे। उस चूर्ण को बकरी के दूध के साथ पीने से पुष्टि होती है ॥ १॥

अथ घोहर बन्धक तन्त्र- कृत्तिकायां स्नुही वृक्ष बन्धकं धारयेत्करे। वाक्य सिद्धि-र्भवेत्सत्य महाश्चर्य मिदं जगत ॥ १॥

टीका- कृत्तिका नक्षत्र में स्नुही (घोहर या थूहर) का बाँदा लाकर हाथ में धारण करने वाले को वाक्-सिद्धि प्राप्त होती है। यह संसार के आश्चर्य जैसा महान् उपयोग है ॥ १॥

अथ कपित्थ बन्धक तन्त्र- कृत्तिका नक्षत्रे कपित्थ बन्धकं गृहीत्वा मुखे स्थापि-तं शास्त्राघातो न भवति ॥ १॥

टीका- कृत्तिका नक्षत्र में कैथ का बाँदा लाकर मुँह में रखने वाले को शास्त्र से चोट नहीं लगती ॥ १॥

अथ कुशा बन्धक तन्त्र- अश्विन्यां कुशा बन्धकं तु पूजां कृत्वा समाहरेत्। त्रिलोहे वेष्टितं कृत्वा वक्त्रस्थो हरणकारकः ॥ १॥

टीका - अश्विनी नक्षत्र में कुश के जाँदे को प्रज्वलित करके धूम्र ले आये। फिर उसे 'त्रिलोट' (सोना, चाँदी और ताँबा को सम्मिलित रूप में 'त्रिलोट' कहते हैं) के नाकीब में भर कर अपने मुख में रखने वाला मनुष्य अदृश्य होजाता है - इसमें सन्देह नहीं है ॥१॥

अथ रोहितक बन्धक तन्त्र - अक्षे चैवानुराधायां बन्धं राक्षस वृक्षजम्। मुखेंप्रक्षिप्य च नरोदृश्यः स्यान्नात्र संशयः ॥१॥

टीका - अक्ष तथा अनुराधा नक्षत्र में रोहितक (राक्षस) वृक्ष के जाँदा को लाकर मुँह में रखने वाला मनुष्य अदृश्य होजाता है - इसमें सन्देह नहीं ॥१॥

अथ कार्पास बन्धक तन्त्र - भरण्यान्तु समाहृत्य बन्धं कार्पास सम्भवम्। हस्तेंबध्वा अदृश्यः स्यात् स्वातौं वा निम्ब वृक्षजम् ॥१॥

टीका - भरणी नक्षत्र में कपास का जाँदा लाकर हाथ में बाँधने से अदृश्य होजाता है।
(२) स्वाति नक्षत्र में नीम का जाँदा भी वैसा ही फलदायक होता है ॥२॥

अथ बन्धक अदृश्यकारक तन्त्र - पिबेदुत्तराषाढायामशोक वृक्ष सम्भवम्। बन्धं तदा अदृश्यः स्यादश्वित्थां क्लिन्न वृक्षजम् ॥ बन्धकं ना को रे धृत्वा अदृश्यो जायते नरः ॥१॥ इति बन्धक तन्त्रम् ॥

टीका- उत्तराषाढा नक्षत्र में अशोक वृक्ष का बाँदा लाकर, उसे पीस कर पीने से मनुष्य अदृश्य हो जाता है ॥ १॥ अश्विनी नक्षत्र में लाल गया बेल का बाँदा भी यही फल देता है ॥२॥ म.
॥ बाँदातन्त्र समाप्त हुआ ॥

अथ मार्जारी-नाल तन्त्रम्

अब बिल्ली की नाल (जेर) के तन्त्र का उल्लेख करते हैं। 'दत्तात्रेय तन्त्र' के अनुसार-

रविवारे गृहीत्वा तु मार्जारीनालमादरात्। निक्षिपेच्चत्र लङ्कस्तु नर्धमानं भवेत्सदा ॥
॥१॥ श्वेतमार्जारीः जारं प्रसूतिजं गृहीत्वा निकटे स्थापनीयम्। ततः कृष्णचतुर्दश्यां सुवर्णरौप्यताम्राणाम-न्यतम धातुप्रमुद्रिकामध्ये जारं संस्थाप्य हस्ते धारणीयं अदृश्यो भवति ॥इति मार्जारीनाल तन्त्रम् ॥

टीका- रविवार के दिन बिल्ली की नाल (जेर) को आदर पूर्वक लेकर, उसे जिस वस्तु में रख दिया जाता है, वह निरन्तर बढ़ती रहती है ॥ १॥

(२) सफेद रंग की बिल्ली जब बच्चे को जन्म दे, तब उसकी गर्भ-नाल (जेर) को अपने पास रखले। तत्पश्चात् कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को सोना, चाँदी अथवा ताँबा में से किसी एक धातु की अँगूठी के बीच उस जरायु (जेर) का एक टुकड़ा मढ़वा कर हाथ में धारण करने वाला मनुष्य अदृश्य हो जाता है ॥२॥ 'मार्जारी-नाल तन्त्र' समाप्त हुआ ॥

अथ बालक-नाल तन्त्र

अब बालक की नाल का तन्त्र कहते हैं—

वन्ध्यानारी गृहीत्वा तु बालनालं प्रयत्नतः। भक्षयेत्तेन तस्यास्तु पुत्रो भवति निश्चितम् ॥इति॥ म.

टीका - वन्ध्या-स्त्री बालक की नाल को प्रयत्नपूर्वक ले कर खा जाय तो उसे निश्चित रूप से पुत्र प्राप्त होता है ॥इति बालक-नाल तन्त्र॥

अथ बालक-दन्त तन्त्र

अब बालक के दाँत का तन्त्र कहते हैं—

बालकस्य तु दन्तानां प्रथमं खण्डितो भवेत्। नखुन्धरामसंपृष्ठस्तं लब्ध्वा तु वन्ध्यावधूः ॥१॥ तद्क्षणात्प्रयत्नेन पुत्रं विन्दति निश्चितम्। बालदन्त प्रभावेन मनीषा पूर्यते स्त्रियः॥२॥ गर्भेच्छा न भवेद्यस्याः सा यस्तं कटि भागके। बध्वा गर्भं न लभते नान्यथा परिकीर्तितम् ॥३॥ राजकार्यं करो धीरो च्युत बालक दंशनिः। सर्वकार्याणि तस्यैव सिद्धिमेष्यन्ति निश्चयम् ॥४॥ शत्रूणां मुखबन्धादिस्व-च्छा वार्ता प्रवर्तते। सभायां स्थिरतां याति श्रेयभाक् स नरः सदा ॥५॥ इति बालक दन्त तन्त्रम्॥

टीका- बालक (शिशु) के दाँतों में से जो पहला दाँत टूटे, उसे इस प्रकार से ग्रहण करे कि वह पृथ्वी से स्पर्श न कर सके। उस दाँत को वन्ध्या-स्त्री प्रयत्न पूर्वक अपने पास रखले तो उसे निश्चित रूप से पुत्र प्राप्त होता है एवं बालक के उस दाँत के प्रभाव से उसकी इच्छा पूर्ण होती है॥

(२) जिस स्त्री को गर्भ की इच्छा न हो, वह उस दाँत को अपनी कमर से बाँध ले तो उसे गर्भ नहीं ठहरता, यह अन्यथा नहीं हो सकता ॥३॥

(३) राज काज करने वाला जो चीरे हुए ऐसे दाँत को धारण करता है, उसके सभी कार्य अनायास ही सिद्ध हो जाते हैं तथा शत्रुओं के मुख का स्तम्भन होता है ॥४॥ ऐसा साधक सभा में स्थान प्राप्त करता है तथा सदैव श्रेय (कल्याण) का भागी बनता है ॥५॥ इति ॥ म.

अथ स्याल-नाभि तन्त्रम्

अब 'स्याल-नाभि' अर्थात् 'काक गुदा' तन्त्र के विषय में बतलाते हैं —

सुगोला पुष्पनद्धारा धासोत्पत्ति वनेषु च। करील मूल देशे तु क्वचित् कण्ट समीपतः ॥१॥ स्यालनाभीति विख्याता केचित्काक गुदां जगुः। विधिं तस्या ध्रुवक्ष्यामि सत्यं वै ब्रूमतां वरम् ॥२॥ कुडवार्द्ध घृते पाच्यं नाभीमेकां प्रयत्नतः। अस्मी भवति सा नाभी आयसेन तु घर्षयेत् ॥३॥ एक जीवस्तु कर्तव्य स्ततः सिद्धो भविष्यति। घृते नानेन संगाह्य काम्य कर्मणि योजयेत् ॥४॥ यदा दंष्ट्राः कृमिभिर्व्याप्ता स्तत्कर्णे बिन्दु मात्रकः द्विपत्याग्रे द्वितीये च कर्णे बिन्दुं क्षिपेद् बुधः ॥५॥ कीट दुःखं लभं याति म्रियते कृमि जालयः। अवश्यं नात्र सन्देह सर्व कृमि विनाशकृत् ॥६॥ नाभि तेनैव संघृष्य कर्त्रितं पत्र कारयेत्। गुटिका चतुष्टयं कृत्वा गुड योगेन वै पुनः ॥७॥ भक्षयेद् गुटिका मेकां सुष्णवीर्यनुपानतः। यदि शूलं न नश्येत घटिका द्वयतः परम् ॥८॥ द्वितीयां गुटिका दद्यात्क्रम एव पुनर्दिशेत्। सर्वे शूला विनश्यन्ति महाघोरतरा अपि ॥९॥ इति ॥

टीका:- स्थाल-नाभि' सर्वथा गोल, पुष्प के समान, घास वाले जंगलों में, करील की जड़ में और कटीं काँटों के समीप उत्पन्न होती है ॥१॥ कुछ लोग इसे 'काक गुदा' भी कहते हैं। मैं उसकी श्रेष्ठ तथा सरल-सत्य विधि बताता हूँ, सुनो ॥२॥ उसको कुडव घी में एक स्थाल-नाभि को प्रयत्न पूर्वक पकाये। जब वह जल जाय, तब लोहे से उसे रगड़ दे। रगड़ने से जब वह सर्वथा एक जीव हो जाय, तब सिद्ध समझना चाहिए। तदुपरान्त उस घृत को संग्रह करके रखले तथा काम्य-कर्मों में प्रयुक्त करे ॥३-४॥ जिस ओर के दाँत में कीड़ा लगा हो, उस ओर के कान में इस घृत की एक बूँद डाले तथा दो घण्टे बाद दूसरे कान में भी घृत की एक बूँद डाल दे। इस प्रयोग से कीड़ों का कष्ट दूर हो जाता है। और सभी कीड़े मर जाते हैं। यह सभी कीड़ों को अवश्य नष्ट कर देता है—इसमें सन्देह नहीं है ॥५-६॥

(२) उक्त घृत में नाभि को घिस कर, पतले-पतले टुकड़े करके, गुड़ के साथ चार गोलियाँ तय्यार करले। पेट में किसी भी प्रकार का शूल होने पर एक गोली गरम पानी के साथ खाने से लाभ होता है। यदि शूल (दर्द) दूर न हो तो दो घड़ी बाद एक गोली और खा लेनी चाहिए। इस विधि से सब प्रकार के महाघोर उदर-शूल भी दूर हो जाते हैं ॥ इति ॥

अथ वाराटकी तन्त्रम्

अब वाराटकी अर्थात् कौड़ी-तन्त्र का वर्णन करते हैं।

हंसी वराटकी ख्याता लघुभारा श्वेत रङ्गिणी। उज्ज्वला कोमला छेदा जलोत्तीर्णा

तु सा शुभा ॥१॥ हंस पद्मा रसे पिष्ट्वा तारपारेण संयुता / अनेन पूरयेद्हंसीं मुखमुद्रां तु कारयेत् ॥२॥ स्वे मुखे करणे तस्याः सर्वसिद्ध्यागमस्ततः / रोगो न जायते तस्य सर्वबाधा विनश्यति ॥३॥ सर्पदष्टोऽपि विषं वर्द्धते तस्य न क्वचित् / हंस्या गुटि प्रभावेन काचिद्धानिर्न जायते ॥४॥ बिरः पृष्ठमुखे पीता मृगी सा वै वराटिका / उरः पीत समायुक्ता तद्विधानं वदामि ते ॥५॥ मृगमूत्र मृदा ग्राह्या रसयुक्ता मृगक्षिकी / मृगी पूरयितानेन मुखे कृत्वा तु वै नरः ॥६॥ राजादिवशगतां याति स्त्रीमायां प्राप्यते यदि / नारीसङ्गम काले वै बहुकामं प्रपद्यते ॥७॥ धूम्रवर्णा व्याघ्रि नाम्नी व्याघ्रं कुर्यात्तु सा नरम् / विधिं तस्याः प्रवक्ष्यामि शृणु यत्नेन वै पुनः ॥८॥ व्याघ्रोऽपधा रसे पिष्ट्वा पारदं सप्रयत्नतः / व्याघ्रीं परयते तेन मुखमुद्रां तु कारयेत् ॥९॥ गुग्गुलं चूर्णयेत्तस्या मुखे धृत्वा तु यो नरः / व्याघ्रवज्जायते रूपं तं दृष्ट्वान्यः पलायते ॥१०॥ सिंहिनी लक्षणं वक्ष्ये स्वर्णवर्णा तु सा भवेत् / तामानयेत्प्रयत्नेन तस्याः कर्म नरश्चरेत् ॥११॥ सिंहीरसरसे र्युक्तां सिंहिनीं पूरयेत्ततः / माक्षिकेण मुखं तस्य रुद्ध्वा गुग्गुल चूर्णितम् ॥१२॥ मुखे धृत्वा तु तां यो वै युद्धे दि जयमाप्नुयात् / सिंहरूपं भवेत्तस्य नरो दृष्ट्वा पलायते ॥१३॥ करे बध्वा तु यो चीरो द्यूतं कुर्याज्जयस्ततः / राजमानो यशः प्राप्ति: सिंही कल्पेन लभ्यते ॥१४॥ इति ॥

टीका - अल्पभार वाली, श्वेत रंग की, उज्ज्वला, कोमल तथा पानी में तैरने वाली शुभ कौड़ी 'हंसी' संज्ञक होती है ॥१॥ हंसपदी के रस में ताँबा तथा पारा को पीसकर, 'हंसी' कौड़ी के मुख में भर कर बन्द करदे / ऐसी कौड़ी को जो मनुष्य अपने मुँह में रखता है, उसे सब प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं / उसे कोई रोग नहीं होता तथा सभी बाधाएँ नष्ट हो जाती हैं ॥२-३॥ यदि

कभी सर्प काटले तो शरीर में विष नहीं चढ़ता। 'हंसी गुटिका' के प्रभाव से कोई हानि नहीं होती ॥४॥

जो कौड़ी भिन्न, पीठ तथा मुँह पर पीले रंग की होती है, उसे 'मृगी' कहते हैं। जो अपने वक्ष पर भी पीली हो, उस कौड़ी का विधान कहता हूँ ॥५॥ मृगशिरा नक्षत्र में मृग (हरिण) के मूत्र से मुक्त मिट्टी को लेकर, उसमें पारा मिला कर, 'मृगी कौड़ी' के मुँह में भर दे, फिर उसे लेकर राजसभा में जाय तो राजा आदि वशीभूत हो जाते हैं। स्त्री-सहवास के समय ऐसी कौड़ी को धारण करके बहुत समय तक काम-मग्न रहा जा सकता है ॥६-७॥

जो कौड़ी चूर्ण वर्ण की हो, उसे 'व्याघ्री' कहते हैं; वह मनुष्य को व्याघ्र जैसा बना देती है। उसकी विधि बताता हूँ, यत्नपूर्वक सुनो ॥८॥ 'व्याघ्रपदी' नामक औषधि के रस में पारे को पीस कर, उसे 'व्याघ्री कौड़ी' के मुँह में भर कर मुँह बन्द कर दे ॥९॥ फिर उसे गुग्गुल की धूप देकर जो मनुष्य गुह्य में धारण कर लेता है, उसका स्वरूप व्याघ्र जैसा हो जाता है तथा उसके स्वरूप को देखते ही अन्य लोग भाग जाते हैं ॥१०॥

जो कौड़ी स्वर्ण (सुनहरे) वर्ण की हो, उसे 'सिंहिनी' कहते हैं। उसे यत्न पूर्वक ला कर उसका कल्प सिद्ध करना चाहिए ॥११॥ 'सिंही कौड़ी' के मुँह में 'सिंही' नामक बूटी का रस भर कर, उसे बन्द करदे, फिर गुग्गुल की धूप देकर, उस कौड़ी को अपने मुँह में रख कर युद्ध में जाने वाला मनुष्य विजयी होता है। उसके सिंह जैसे स्वरूप को देख कर अन्य लोग भाग जाते हैं ॥१२-१३॥ ऐसी कौड़ी को हाथ में बाँध कर जो व्यक्ति जुआ खेलता है, वह जीतता रहता है। सिंही-कल्प से राजसम्मान तथा वशी की शक्ति होती है ॥१४॥

अथ इन्द्रजाल-कौतुक तन्त्रम्

प्रारंभिक-मन्त्र - ऐन्द्रजालिक-कौतुकों की सिद्धि के लिए सर्व प्रथम निम्नलिखित मंत्र का जप करें। म.

"ॐ परब्रह्म परमात्मने नमः, उत्पत्ति स्थिति प्रलय कराय ब्रह्म हरिहराय त्रिगुणात्मने सर्वकौतुकानि दर्शय दर्शय दत्तात्रेयाय नमः। तन्त्राणि सिद्धानि कुरु कुरु स्वाहा।"

उक्त मन्त्र १०८ बार जपने से सिद्ध होजाता है। मन्त्र सिद्ध करने के बाद अन्य कार्यको।

रक्षा-मन्त्र - अपनी रक्षा की व्यवस्था किये बिनाभी इन्द्रजाल के कौतुकों का प्रदर्शन नहीं करना चाहिए। रक्षा मन्त्र को 'महामन्त्र' कहा गया है। यह समस्त सिद्धियों को देताहै। 'रक्षा-मन्त्र' निम्नानुसार है—

"ॐ परब्रह्म परमात्मन् मम शरीरं पाहिपाहि रक्षां कुरु कुरु स्वाहा।"

यह मन्त्र कौतुकों का प्रदर्शन आरंभ करने के पूर्व १०८ बार जपना चाहिए।

इन्द्रजाल कौतुक करणोपयोगी मन्त्र - इन्द्रजाल के कौतुक करने में उपयोगी मन्त्र निम्नलिखित है—

"ॐ नमो नारायणाय विश्वम्भराय इन्द्रजाल कौतुकानि दर्शय दर्शय सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।"

उक्त मन्त्र १०८ बार जपने से सिद्ध होताहै। इस मन्त्र को सिद्ध करलेने के बाद ही इन्द्रजाल के सभी कौतुकों का प्रदर्शन करना चाहिए।

दृष्टि-स्तम्भन तन्त्र - ऐन्द्रजालिक प्रदर्शन में सफलता पाने के लिए दर्शकों की दृष्टि को स्तंभित

करना आवश्यक है। दृष्टि-स्तंभन हेतु तन्त्र इस प्रकार है—(१) घृणा तालक के पञ्चांग को सोने के ताबीज में भर कर अपने पास रखे, तदुपरान्त दर्शकों की ओर देखने मात्र से ही, उनका 'दृष्टि-स्तंभन' हो जाता है।

(२) वराहक्रान्तिका मूल को सरसों से लिपा कर, मुँह में रख जाने से दर्शकों का 'दृष्टि-बन्ध' हो जाता है।

(३) कदुए को एक सप्ताह तक हरताल पिलाये, तदुपरान्त उसकी विष्ठा का अपने हाथ पर लेप करने से दर्शकों का दृष्टि बन्ध तो होता ही है, वे कौतुक वश नाचने भी लगते हैं।

(४) मोर को सात दिनों तक हरताल एवं मैनसिल खिलाये, तदुपरान्त उसकी विष्ठा को हाथ में लेप करने वाला ऐन्द्रजालिक अन्य लोगों की दृष्टि से ओझल (अदृश्य) हो जाता है।

उक्त सन्दर्भों के श्लोक निम्नानुसार हैं—

"घृणा तालक पञ्चाङ्गं वेष्टितं कनकेन वा। दृष्टिमान्नं दृष्टिबन्धे नान्यथा नाऽत्र संशयः ॥१॥
वराह क्रान्तिका मूलं सिद्धार्थैः स्नेह लेपितम्। मुखे प्रक्षिप्य लोकानां दृष्टिबन्धं करोत्यलम् ॥२॥
कूर्म मुखं हरीतालं सप्ताहं भोजयेद् ध्रुवम्। तद्विष्ठा कर लेपेन नरा नृत्यन्ति कौतुकम् ॥३॥
मयूरं च शिलालालं भोजयेदीदृक् सप्तकम्। तद्विष्ठां लेपयेद् दृस्ते अदृश्यो भवति ध्रुवम् ॥४॥

अथ नाना रूप धारण कौतुकम्

अब अनेक प्रकार के रूप धारण करने के कौतुकों को 'दत्तात्रेय तन्त्र' के अनुसार कहते हैं—

भौमवारे सर्पमुखे क्षिप्त्वा कार्पासबीजकम्। उद्भवं बीजकार्पासं ज्वालयेरण्डतैलके। तद्वर्ति ज्वालयेद्रात्रौ सर्पवत् दृश्यते ध्रुवम् ॥१॥ ऐरण्डतैलजं दीपं सर्पपुच्छाद्विकंचुकम्। मण्डूक वसया दीपे सर्वैर्दृश्योहि सर्पवत् ॥२॥ वृश्चिकमुरवमध्यस्थं कार्पासं बीज निक्षिपेत्। तद्वर्त्ति ज्वालयेद्रात्रौ वृश्चिको भवति ध्रुवम्॥ वर्तिं तु शीतलां कृत्वा महाकौतुकनाशनम् ॥३॥

टीका - (१) मंगलवार को साँप के मुँह में कपास के बीज बोदे। जब उसमें से कोंपल निकल आवे तथा कपास लगे, तब उस कपास से बत्ती तय्यार करके अरण्डी के तैल वाले दीपक में डालकर रात के समय जलावे तो वह मनुष्य सर्प जैसा दिखाई देता है ॥१॥

(२) सर्प की केंचुल (शरीर के छिलके वाली) को अरण्डी के तैल तथा मेंढक की चर्बी वाले दीपक में डालकर जलाने से भी साधक सबको सर्पवत् दिखाई देता है ॥२॥

(३) बिच्छू के मुंह में कपास का बीज बोदे। जब उससे कोंपल उत्पन्न होकर और उसमें कपास की घुंडियाँ लग जाँय, तब उसकी रूई की बत्ती बनाकर अरण्डी के तैल वाले दीपक में डालकर जलावे तो चारों ओर बिच्छू-ही-बिच्छू दिखाई देंगे, परन्तु दीपक से बत्ती निकाल लेने पर वह कौतुक दिखाई देना बन्द हो जाएगा ॥३॥

कार्पासाति च बीजानि नकुलस्य मुखे क्षिपेत्। रवौवारे कृते योगे नान्यथा ब्रह्मरोदितम्। तद्वर्ति ज्वालयेत्तस्यां नकुलो दृश्यते ध्रुवम् ॥४॥ चक्रवारे विनिक्षिप्य मार्जारस्य मुखे रवम्। जायते बीजमैरण्डं मुखे धृत्वा बिडालकः ॥५॥

टीका - कपास के बीजों को रविवार के दिन नेवले के मुख में बोदे। जब पौधा उग आये, तब उसकी बत्ती को अरण्डी के तैल वाले दीपक में डाल कर जलाने से नेवला दिखाई देता है - शंकर का यह वचन अन्यथा नहीं होता ॥५॥ सोमवार के दिन बिल्ली के मुँह में अरण्डी के बीज बोदे। जब उसमें से वृक्ष उग आये तथा फल लगें तो उनमें से एक एरण्ड-फल को मुँह में रखने से सर्वत्र बिल्लियाँ ही बिल्लियाँ दिखाई देती हैं ॥६॥

वर्षाकाले मयूरस्य दापयेत्कीट भोजनम्। तद्विष्ठां गोमयं मुलां मृत्तिका संयुतं तथा॥ गृहीत्वालेपयेद्देहं खण्डखण्डं प्रदृश्यते। लोके भवति चाश्चर्यं महाकौतुक कौतुकम् ॥६॥ शिग्रुबीजो त्थितं तैलं पारावतपुरीषकम्। वराहस्य वसायुक्तं हरितालं मनःशिलाम्। सर्वमिस्तु तिलकं कृत्वा पश्यालङ्केश्वरो नृप ॥७॥

टीका - वर्षाऋतु में मोर को कीड़ों का भोजन कराये। फिर उसकी विष्ठा में मिट्टी तथा गोबर मिला कर लेप लगाओ। उस लेप को शरीर में लगाने से साधक का शरीर खण्ड-खण्ड (टुकड़ों में बँटा हुआ) दिखाई देता है। इस महाकौतुक को देखकर लोग आश्चर्य चकित रह जाते हैं ॥६॥

(२) शिग्रु बीज का तैल, कबूतर की बीट तथा सुअर की चर्बी — इन तीनों को समभाग लें। फिर उसमें गधे की चर्बी, हरताल तथा मैनसिल मिला कर पीस लें तथा लेप तथा तिलक करें। इस लेपा का तिलक अपने ललाट पर लगाने वाला मनुष्य लङ्केश्वर रावण जैसा दिखाई देता है ॥७॥

बिल्वपत्रं गृहीत्वा तु कृष्ण सर्पविषासमम्। वृषकेशं गृहीत्वा तु गन्धकं च

मन: शिलाम् । सर्वमिस्तु तिलकं कृत्वा यथा साक्षात्सदाशिव: । यस्मै कस्मै न दातव्यं गोपनीयं प्रयत्नत: ॥ ८॥
बिल्ववृक्षस्य पुष्पं तु श्वेतं ग्राह्यं प्रयत्नत: । तेषामेन्नवनीतेन चारुगन्धां मन: शिलाम् । सर्वमिस्तु तिलकं कृत्वा यथा साक्षात् पितामह: ॥ ९॥ चमरिवनी मूले बाले पत्र तन्निरवेन्नर: । हरिद्रा गंधि संयुक्तामजादुग्धेन सेचयेत् । मानवृक्षस्तु सफलस्तं हरिद्रा सम हरेत् । श्वेत दूर्वारिनालैश्च हरिद्रात: प्रदापयेत् ॥ तल्लिप्तदेह पुरुष: पञ्चचा दृश्यते नर: ॥ १०॥ यस्य नामाङ्कितं तन्त्रे नृकपालो लिखेत्सति । भौमे चितायां निशिको पिशाचो दृश्यते दृश्यते नर: ॥ ११॥ सिन्दूर गन्धकं तालं सम पिण्डा मन: शिलाम् । तल्लिप्तावस्त्र: शिरसि अग्निवत् दृश्यते ध्रुवम् ॥ १२॥

टीका- काले सर्प की चर्बी के बराबर बेलपत्र लेकर, उसमें बैल का केश (बाल) गन्धक तथा मैनसिल मिलाकर, एकत्र करें। फिर सबको एक साथ पीस कर, उसका तिलक लगाने से साक्षात् शिव-दुर्गा जैसा दिखाई देगा। यह प्रयोग चाहे जिसे न देकर, प्रयत्न पूर्वक गुप्त रखना चाहिए ॥ ८॥

बिल्व-वृक्ष के सफेद फूलों को प्रयत्न पूर्वक लाकर (बिल्व-वृक्ष चारूरे को भी कहते हैं) फिर उसमें अगरगंध, मैनसिल तथा मक्खन मिला कर पीसे और ललाट पर तिलक लगाने से मनुष्य साक्षात् ब्रह्मा जैसा हो जाता है ॥ ९॥

गाय के घृत बघड़े को जहाँ गाड़ा गया हो, उस जगह हल्दी की एक गाँठ बोये तथा उस स्थान को बकरी के दूध से सींचता रहे। जब उसमें पौधा उग आये, तब उसमें से हल्दी की एक गाँठ लेकर, उसके साथ सफेद दूर्वा तथा अरिनाल को मिलाकर पीसे और लेप तैयार करे। उस लेप को अपने

शरीर पर लगाने वाला साध्यक पाँच तरह का दिखाई देता है ॥१०॥

उक्त हल्दी से, रविवार के दिन, मनुष्य की खोपड़ी में, जिस व्यक्ति का नाम लिख कर, खोपड़ी को चिता में डाल दिया जाता है, वह मनुष्य पिशाच जैसा दिखाई देता है ॥११॥

सिन्दूर, गंधक, हरताल तथा मैनसिल - इन्हें समभाग लेकर पीस लें। फिर उसे एक वस्त्र पर लेप कर के रखले। ऐसे वस्त्र को सिर पर रखने वाला व्यक्ति (रात के समय) अन्य लोगों को निश्चित रूप से अग्नि जैसा दिखाई देता है ॥१२॥

निर्दिनं भोजनं कृत्वा तिल सर्षप संयुतम्। तन्मूत्रज्वालितोदीपान्महा कौतुक कौतुकम् ॥१३॥ अर्कक्षीरं वटक्षीरं तथादोन्दुर सम्भवम्। गृहीत्वा पात्रके लिप्तं जलपूर्णं करोति चेत्। दुग्धं सज्जायते तत्र महाकौतुक कौतुकम् ॥१४॥ मल्लात तैलं मत्स्यस्य गात्रे सर्वत्र लेपयेत्। निक्षिप्य जल मध्येतु मीनो जीवति तत्क्षणात् ॥१५॥ कुकलाष समादाय छिद्रेण पारदं क्षिपेत्। भास्करामिषुलं कृत्वा आकाशं गच्छति ध्रुवम् ॥१६॥

दुग्ध-कौतुक

टीका - सरसों और तिल को मिलाकर तीन दिनों तक खाये, तदुपरान्त अपने मूत्र में बत्ती डालकर दीपक को जलाये तो वह जलने लगता है तथा देखने वाले लोग आश्चर्य करते हैं ॥१३॥

अर्क (मदार) का दूध, बरगद का दूध तथा गूलर का दूध मिला कर किसी पात्र में लेप करदे। कौतुक दिखाते समय उसी पात्र में पानी भर देने पर वह पानी दूध जैसा दिखाई देगा तथा सब लोग उस महाकौतुक को देख कर आश्चर्य चकित रह जाएँगे ॥१४॥

मिलाये का तैल मरी हुई मछली के बारीक लेप करके, फिर उसे पानी में डाले तो वह उसी समय जीवित के समान पानी में तैरने लगती है ॥ ४५॥

अण्डे को लेकर उसमें छेद करे, फिर उसमें पारा भरकर छेद का मुँह मोम आदि से बन्द करदे। तदुपरान्त उसे सूर्य की धूप में रखदे तो वह आकाश में उड़ जाता है ॥ ४६॥ म.

अथ एकाक्षिनारिकेल तन्त्रम्

प्रत्येक नारियल में ऊपर की ओर दो गोल बन्द छिद्र होते हैं, जिन्हें नारियल की आँख (नेत्र) कहा जाता है। ऐसे दो आँखों वाले नारियल सर्वत्र पाये जाते हैं तथा उनका कोई तान्त्रिक-उपयोग नहीं होता। परन्तु तीनों में एक कोई नारियल एक आँख (छिद्र) वाला भी मिलता है। उसी को 'एकाक्षि-नारिकेल' कहते हैं। ऐसा नारियल सौभाग्यवर्द्धक माना जाता है तथा उसे तान्त्रिक-प्रयोग में ग्रहण किया जाता है। ऐसे एकाक्षी नारियल के तान्त्रिक-कार्य का वर्णन आगे किया जा रहा है -

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नारिकेलं विधानतः। शृणुष्वैकाक्षिकं चैतत् सर्वसिद्धि प्रदायकम् ॥ १॥ छिद्रद्वयं तु रेखाभ्यामुद्भासयेत् स्वतन्त्रतः। दृष्टिगोचरमात्रेण स स्वरूपं प्रकाशयेत् ॥ २॥ आधिभूता-दि आध्यात्मिकं रोगादि समहारिणम्। विधिवत् क्रियते पूजा सम्पत्ति सिद्धिदायकम् ॥ ३॥ नत्वा तं श्रीफलं च श्रीं ह्रीं क्लीं मन्त्रेण संयुतम्। महाप्राण युक्तं च नाम्ना श्रमणोच्यते ॥ ४॥ शुक्ल भेद प्रकाशं में किञ्चित्

सद्गुरु भाषितम् । तद् यथा लिखित्वा ऽसौ सर्वसिद्धिदायकः ॥५॥ प्रभावात् पूज्यते देवी रणराज्य भयं तथा । पुष्पार्के नाशयेत् सर्वं कार्यसिद्धिं करोति च ॥६॥ पञ्चामृतं समायिलप्त गङ्गोदकेन स्नापयेत् । घृत सिन्दूरलेपित्वा नागसूत्रं च वेष्टयेत् ॥७॥ ततश्च क्रियते पूजा नैवेद्यं विधिनाऽर्पयेत् । गुग्गुलधूपं घृतदीपं पूजयेत् श्रीफलं तथा ॥८॥ लिखामात्रां च गायत्रीं मूलमन्त्रं महाद्युतिम् । अष्टबीजाक्षरं ध्यात्वा सर्वेषा सिद्धिमवाप्नुयात् ॥९॥ मा श्रीः स्वर्ग सुकृतिनां भुवनेष्व लक्ष्मीः, पापात्मनां कृतधियां हृदयेषु बुद्धिः । पृहासतां कुलजन प्रभवस्य लज्जा, तां त्वां नताः स्म परिपालय देवि विश्वम् ॥१०॥

टीका - अब मैं सर्वसिद्धि दायक शुद्ध एकाक्षी-नारियल का विधान कहता हूँ ॥१॥ सामान्यतः वह अपने स्वरूप में दो छिलकाली रेखाओं का होता है, परन्तु ध्यान से देखने पर वह अपने प्रकार्य स्वरूप (एकाक्षी) को प्रकट कर देता है ॥२॥ आधि व्याधि तथा रोगों को हरने वाला एकाक्षी-नारियल विधिवत् पूजा करने पर सम्पत्ति तथा सिद्धि को देता है ॥३॥ ऐसे श्रीफल (नारियल) को नमस्कार करके उसके ऊपर ॐ कार सहित श्रीं ह्रीं क्लीं - इन तीन बीजों को (ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं) लिखे। यह महाप्रमाण मुद्रा है। हे श्रमण! इसे अन्यथा न समझे ॥४॥ सद्गुरु द्वारा वर्णित गुह्य भेदों को मैं प्रकट करता हूँ। उपर्युक्त बीज-मन्त्रों के लिखने पर ही वह नारियल सिद्धि दायक होता है ॥५॥ उस श्रीफल के प्रभाव से पुष्य नक्षत्र वाले रविवार को देवी की पूजा सम्पन्न की जाती है। इससे रणराज्य तथा का भय दूर होता है तथा सभी कार्य सिद्ध होते हैं ॥६॥ श्रीफल (नारियल) को पञ्चामृत तथा गंगाजल से स्नान कराना चाहिए। फिर उसे घृत तथा सिन्दूर से लिप्त करके नागसूत्र (मौली अर्थात् कलावा) से लपेट दे ॥७॥ फिर गुग्गुल, धूप, दीप

नैवेद्य आदि से उसकी विधिपूर्वक पूजा करे ॥८॥ तदुपरान्त गायत्री-मन्त्र तथा श्रीफल के आठ बीजाक्षर मन्त्र का स्मरण करने से सब प्रकार की इष्ट-सिद्धि प्राप्त होती है ॥९॥ श्रीफल की पूजा के समय "या श्रीः स्वयं०" आदि ऊपर लिखे मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए ॥१०॥ जप करने का मूल मन्त्र निम्नलिखित है— अष्टाक्षर म.

(१) "ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्लीं सौः क्लीं ॐ !"

एक अन्य मन्त्र इस प्रकार लिखित है —

(२) ॐ श्रीं ह्रीं ऐं एकाक्षि-श्रीफलाय भगवते त्रिभुवनाधिपाय सर्वभुवनेश्वराय त्रैलोक्य नाथाय सर्वकामप्रदाय नमः ॥

उक्त मन्त्र ११००० की संख्या में जपने से सिद्ध होते हैं। मन्त्र सिद्ध होजाने के बाद निम्न नुसार प्रयोग करने से इष्ट-सिद्धि होती है —

(१) एकाक्षी नारियल को किसी पवित्र चौकी पर प्रतिष्ठित करके, पंचोपचार पूजा अष्टमी तिथि को अष्टाक्षरी मन्त्र का उच्चारण करते हुए, एकाक्षी नारियल का चन्दन, कुंकुम, धूपादि से पूजन करे तथा १०८ की संख्या में लाल रंग के पुष्प चढ़ाने से इष्ट-सिद्धि प्राप्त होती है।

(२) दीपावली की रात्रि में १००८ मन्त्रों का उच्चारण करते हुए, प्रत्येक मन्त्र के साथ एक-एक श्वेत पुष्प चढ़ाने से सब प्रकार के द्रव्य, कोष तथा ऋद्धि प्राप्त होते हैं।

(३) प्रतिदिन १०८ मन्त्रों का जप करते हुए पूजन करने से धन का लाभ होता है।

(४) दीपावली के दिन पूजन करने से विजय का लाभ होता है।

(५). आश्विन शुक्ल पक्ष अथवा चैत्र मास में शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से अष्टमी तिथि तक नित्य पूजन करके तथा १०८ की संख्या में जपने से मन्त्र सिद्ध हो जाता है। सूर्य तथा चन्द्र ग्रहण के समय ग्रहण के स्पर्श-काल से अंत का, समाप्ति काल तक मन्त्र-जप करते रहने से भी मन्त्र सिद्ध होता है॥ इष्ट-सिद्धि हेतु जप किये जाने वाला मन्त्र निम्नानुसार है—

"ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं ऐं महालक्ष्मी स्वाहा एकाक्षि नारिकेलाय नमः सर्व सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।"— इस मन्त्र को अष्टगंध अथवा केशर द्वारा, अनार की कलम से, किसी रेशमी कपड़े पर लिखे। फिर उस वस्त्र पर एकाक्षी नारियल की स्थापना करके, उसका षोडशोपचार से पूजन करे। साथ ही नित्य प्रातः एवं सायंकाल एक-एक माला मन्त्र का जप करता रहे। इससे धन का लाभ होता है॥

अन्य प्रयोग निम्नलिखित हैं—

(१) "ॐ ह्रीं एकाक्षिनारिकेलाय नमः"— इस मन्त्र का एक मंगलवार से दूसरे मंगलवार तक नित्य १२१ बार जप करके, १०८ नींबू के फूलों द्वारा एकाक्षिनारियल का पूजन करने से शत्रु-बाधा दूर होती है।

(२) ॐ ह्रीं श्रीं एकाक्षिनारिकेलाय नमः"— इस मन्त्र का २१ दिनों तक नित्य १०८ बार जप करते तथा १०८ फूलों से पूजा करने से ग्रह-दोष शान्त हो जाता है।

(३) ॐ ह्रीं हूं एकाक्षिनारिकेलाय नमः— इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए १०८ मदार के फूलों को सात दिनों तक एकाक्षीनारियल पर चढ़ाने १०८ बार मन्त्र-जप करने से सभी दुष्ट-लोगों का कुल स्तम्भित होता है।

म.

(४) "ॐ ह्रीं श्रीं एकाक्षि नारिकेलाय नमः" — इस मन्त्र को शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन से सात दिनों तक नित्य १०८ बार जपने तथा १०८ पुष्पों द्वारा नारियल का पूजन करने से सब प्रकार के ज्वर शान्त होते हैं।

(५) "ॐ ह्रौं ह्रां ह्रीं ह्रां ह्रीं ह: ह:" — इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए प्रतिदिन २१ बार मुँह धोने से सभा, वाद-विवाद एवं मुकद्दमे में विजय तथा आनन्द की प्राप्ति होती है।

(६) ॐ ह्रीं क्लूं एकाक्षिनारिकेलाय नमः" — इस मन्त्र द्वारा पानी को २१ बार अभिमन्त्रित करके, उसे गर्भवती-स्त्री को पिला देने से प्रसव सुख पूर्वक होता है।

(७) ॐ ऐं "एकाक्षि नारिकेलाय नमः —— उच्चाटयोच्चाटय स्वाहा।"

इस मन्त्र में जहाँ खाली स्थान है, वहाँ जिसका उच्चाटन करना हो, उसके नाम का उच्चारण करना चाहिए। इस मन्त्र का जप किसी मंगलवार से आरंभ करके १५ दिनों तक करे तथा मौनीमणी के पुष्पों से नारियल का पूजन करे। मन्त्र-जप नित्य १०८ की संख्या में करना चाहिए। इसके प्रभाव से शत्रु का उच्चाटन होता है।

(८) ॐ ह्रीं ऐं एकाक्षिनारिकेलाय नमः — इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए सदियों तक कनेर के १०८ पुष्प चढ़ाते हुए नित्य १००८ की संख्या में मन्त्र-जप करे तो स्वप्न में भविष्य का ज्ञान होता है।

(९) ॐ ऐं ह्रीं ऐं ह्रीं श्रीं एकाक्षिनारिकेलाय नमः — इस मन्त्र का नित्य १०८ बार उच्चारण करते हुए एकाक्षी नारियल का विधिवत् पूजन करने से वशीकरण होता है। जब तक इष्ट-सिद्धि न हो तब तक नित्य जप करते रहना चाहिए।

(१०) "ॐ जंभिणी ह्रीं ग्लौं एकाक्षि नारिकेलाय नमः!" — इस मन्त्र को एक सोमवार से आंस काके दूसरे सोमवार तक नित्य १०८ बार जपने तथा १०८ की संख्या में आम के बौर के गुच्छे चढ़ाने से पति का वशीकरण होता है।

(११) "ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं हं ह्रौं ह्रूं एकाक्षिनारिकेलाय नमः!" — इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए नित्य १०८ लाल कनेर के पुष्प चढ़ाए, १०८ बार मन्त्र-जप तथा पूजन करने से मन्त्र सिद्ध होजाता है, तदुपरान्त कत्था-चूना-सुपारी युक्त पान को इस मन्त्र द्वारा अभिमंत्रित करके, उसे जिस साधक व्यक्ति को खिलाया जाताहै, उसका वशीकरण होता है।

(१२) "ॐ ह्रूं क्रौं एकाक्षिनारिकेलाय नमः!" — किसी भी रविवार से आरंभ करके ११ दिनों तक इस मन्त्र का जप करते हुए १०८ पुष्प चढ़ाते तथा नित्य ११ माला मन्त्र-जप करने से धन-लाभ होता है।

एकाक्षी-नारिकेल की साधना करते समय 'ॐ श्रीं श्रियै नमः!' मन्त्र का पूजन के समय नित्य जप करते रहने से प्रत्येक मनोकामना शीघ्र पूर्ण होतीहै।

अथ नारायणास्त्र मन्त्र प्रयोग

मन्त्र — " हरि ॐ नमो भगवते श्रीनारायणाय नमो नारायणाय विश्वमूर्तये नमः श्रीपुरुषोत्तमाय पुष्पदृष्टिं प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा अजीर्णि पञ्चविसूचिकां हनहन ऐकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं चातुर्थिकंज्वरं

नाशय नाशय चक्रशक्ति कालरात्रि दण्डेन हन हन

तत्सर्वं नाशय नाशय शोषय शोषय आकर्षय आकर्षय शत्रून् मारय मारय उच्चाटयो च्चाटय विद्वेषय विद्वेषय स्तम्भय स्तम्भय निवारय निवारय विघ्नैर्हन विघ्नैर्हन दह दह मथ मथ विध्वंसय विध्वंसय चक्रं गृहीत्वा शीघ्रमागच्छागच्छ चक्रेण हत्वा परविद्यां छेदय छेदय भेदय भेदय चतुर्शीतानी विस्फोटय विस्फोटय अर्कवातमूल दृष्टि सर्पसिंह व्याघ्र द्विपदचतुष्पद पदवाह्यादिवि युक्तान्तरिक्षो अन्येपि केचित् तान्द्वेषकान्सर्वान् हन हन विद्युन्मेघ नदी पर्वताटवी सर्वस्थान वह्निदिवस पथ-चौरान् वधं कुरु कुरु हरिः ॐ नमो भगवते ह्रीं हुं फट् स्वाहा ठः ठं ठं ठः नमः ॥" इति नागपाशास्त्र मन्त्रः ॥

अस्य मन्त्रस्य विधानम्- एषा विद्या महातन्त्री पुरादत्ता मरुत्वते। असुराज्जितवान्सर्वान् क्रतु बलदानवान् ॥ १॥ यः पुमान्पठते भक्त्या वैष्णवो नियतात्मना। तस्य सर्वाणि सिद्ध्यन्ति यच्चदृष्टिगतं विषम् ॥२॥ अन्यदेहविषं चैव नदेहे संक्रमेद्ध्रुवम्। संग्रामे चारयत्सद्यः शत्रून्वै जयते क्षणात् ॥ ३॥ यतः सद्यो जपस्तस्य विघ्नस्तस्य न जायते। किमत्र बहुनोक्तेन सर्वसौभाग्य सम्पदः ॥ ४॥ लभते नात्र सन्देहो नान्यथा मनोदिति। गृहीतो यदि वा येन बलिना विविधैरपि ॥५॥ शीतं समुष्णतां याति चोष्णं शीलतां व्रजेत्। अन्यन्न भवेद्विद्या यः पठेत्कथितां मया ॥ ६॥ भूर्जपत्रे लिखेन्मन्त्रं गोरोचन जलेन च। इमां विद्यां स्वकेबध्वा सर्वरक्षां करोतु मे ॥ ७॥ पुरुषस्याथवा स्त्रीणं हस्ते बद्ध्वा विचक्षणः। विद्रवन्ति च विघ्नानि न भवन्ति कदाचन ॥ ८॥ न भयं तस्य कुर्वन्ति गगने भास्करादयः। भूतप्रेत पिशाचाश्च ग्रामग्राही तु डाकिनी। शाकिनीषु महाघोरा वेतालाश्च महाबलाः। राक्षसाश्च महारौद्रा दानवा बलिनो हि ये ॥ १०॥ असुराश्च सुरांश्चैव अष्टयोगिश्च देवता। सर्वत्र स्तंभिता विष्ठे मन्त्रोच्चारण मात्रतः ॥ ११॥ सर्वदेवाः प्रणश्यन्ति सर्वे म्लानि मियुराः।

सर्वे रोगा विनश्यन्ति विघ्नस्तस्य न जायते ॥१२॥ उच्चाटे ऽपराह्णेतु सन्ध्यायां मारणे तथा। शान्तिके चाथ वश्ये तु ततोऽर्धः सर्वकामिकः ॥१३॥ इदं मन्त्र वहस्यं च नारायणास्त्रमेव च। त्रिकाले जपते नित्यं जयं प्राप्नोति मानवः ॥१४॥ आयुरारोग्यमैश्वर्यं धान्यं विद्यां पराक्रमम्। चिन्तितार्थं सुखप्राप्तिं लभते नात्रसंशयः।

टीका - नारायणास्त्र मन्त्र का उल्लेख किया जा चुका है और अब इसके विधान को बताते हैं, जो निम्नानुसार है -

'महानाम्नी' यह विद्या पूर्वकाल में इन्द्र को दी गई थी। इसके प्रभाव से इन्द्र ने बल आदि सभी राक्षसों को जीत लिया था। जो वैष्णव नियम तथा शक्ति पूर्वक इसका पाठ करता है, उसके सभी कार्य सिद्ध होते हैं। दृष्ट अथवा अदृष्ट विघ्नों का उस पर कोई प्रभाव नहीं होता - यह सुनिश्चित है। जो व्यक्ति युद्ध-क्षेत्र में इस मन्त्र को लिख कर अपने शरीर में धारण करता है, वह निश्चित रूप से शत्रुओं पर विजय पाता है तथा उसे कोई कष्ट नहीं होता। अधिक क्या कहा जाय? इसके बल पर मनुष्य को सब प्रकार के सौभाग्य तथा सम्पत्तियों का लाभ होता है। यदि कोई शत्रुद्वारा पकड़ा गया हो तो भी सुरक्षा-सम्पत्ति प्राप्त करता है।

इस मन्त्र के प्रभाव से शीतल वस्तु उष्ण तथा उष्ण वस्तु शीतल हो जाती है। जो व्यक्ति के द्वारा कथित विद्या का पाठ करता है, उस पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता। इस मन्त्र को अनार तथा गोरोचन की की सहायता से भोजपत्र पर लिखे तथा उस मंत्र-लिखित भोजपत्र को अपने शरीर से बाँध कर इस प्रकार कहे - 'सर्व रक्षा करोतु मे।' बुद्धिमान् पुरुष अथवा स्त्री इसे अपने शरीर से बाँधे तो उसके सभी विघ्न भाग जाते हैं और फिर कभी नहीं लौटते। आकाश चारी सूर्यादि ग्रहों का भी कोई अनर्थ नहीं होता। भूत, प्रेत, पिशाच, राक्षस (और की तो क्या)

म.

डाकिनी, महाभयानक शाकिनी, वेताल, महाबली राक्षस, महाभीड दानव, बलवान् दैत्य, देवता तथा अष्टयोनि देवता आदि सभी इस मन्त्र के उच्चारण से स्तम्भित रह जाते हैं। सब प्रकार की दुष्टताओं के दोष नष्ट हो जाते हैं तथा सब कुछ नित्य फलता है। साधक के सभी रोग नष्ट हो जाते हैं। कोई विघ्न बाधक नहीं बनता।

उच्चाटन में अपराह्न, मारण में सन्ध्या तथा शान्ति-कर्म में अर्द्धरात्रि का समय उचित रहता है। इस प्रकार कार्य करने से सभी अभीष्ट-फल प्राप्त होते हैं। यह मन्त्र-रहस्य नारायणास्त्र ही है। जो साधक तीनों समय इस मन्त्र का जप करता है, वह विजय प्राप्त करता है। आयु, आरोग्य, ऐश्वर्य, ज्ञान, विद्या, पराक्रम, वांछित अर्थ एवं सुख प्राप्त होता है—इसमें सन्देह नहीं है॥ इति॥

अथ चौर-निवारण तन्त्र

निम्न लिखित मन्त्र को सोते समय पढ़ने से चोर का भय नहीं रहता—

मन्त्र: "जले रक्षतु वाराह: स्थले रक्षतु वामन:। अटव्यां नारसिंहश्च सर्वत: पातु केशव:॥1॥ जले रक्षतु गन्धीश: स्थले रक्षतु भैरव:। अटव्यां वीर भद्रश्च सर्वत: पातु शाङ्कर:॥2॥ अर्जुन: कालजुनो जिष्णु: किरीटी श्वेत वाहन:। बीभत्सुर्विजय कृष्ण: सव्यसाची धनञ्जय:॥3॥ तिस्रो आर्या: ककल्लस्य दाहिनी मोहिनी सती। नांसा स्मरणमात्रेन चोरो गच्छति निष्फल:॥4॥ ककल्लक: ककल्लक: ककल्लक:।" इति॥

अथ ग्रह-बाधानाशक मूलेश्वरी मन्त्र-तन्त्र

अब ग्रह-बाधानाशक मन्त्र-तन्त्र का वर्णन किया जाता है। इसका मन्त्र निम्नानुसार है—

"ॐ नमो भगवते भूतेश्वराय कालिकालिनरनाथ रौद्रदंष्ट्रकराल वस्त्राय त्रिनयनाय चग चगति पिशङ्ग ललाटनेत्राय तीव्रकोपाग्नलामिततेजसे पाश शूल खट्वाङ्ग डमरुक चतुर्बाहो मुद्गराभय दण्डास्त्र मुद्रा व्यग्रदक्षं यदाद्दण्डमण्डिताय कपिलजटाजूटदृढ चन्द्रधारिणे भस्मरागरञ्जितविग्रहाय उग्र फणि कालकूटोपमण्डितकण्ठदेशाय जय जय भूतनाथामरात्मन् रूपं दर्शय दर्शय वृत्त वृत्त चलचल पाशेन बन्ध बन्ध हुंकारेण त्रासय त्रासय वज्रदण्डेन हन हन निशित खड्गेन छिन्धि छिन्धि शूलाग्रेण भिन्धि भिन्धि मुद्गरेण चूर्णय चूर्णय सर्वग्रहान् वेशयावेशय स्वाहा ॥" इति ॥

विधानम्- गुग्गुलं मधुनाक्तेन घृतेन सह धूपयेत् । मन्त्रेणानेन हारीत तर्जयेद् ग्रहपीडितम् ॥१॥ ग्रहाविष्टेन चेत्तस्मै दीपके बलिरुत्तम । मुक्तो भवति तस्माच्च संशयो नास्ति तत्र च ॥२॥

टीका- मधु (शहद) से सिक्त गुग्गुल को घृत के साथ धूप दे । तत्पश्चात् पूर्वोक्त मन्त्र द्वारा ग्रह-पीडित व्यक्ति को डाँटे । जिसे ग्रह ने आविष्ट कर रखा हो, उसे उत्तम बलि देनी चाहिए । इस विधि से ग्रहबाधा से मुक्ति मिल जाती है - इसमें सन्देह नहीं है ॥

अथ भूतोपद्रव-नाशक मन्त्र-तन्त्र

अब भूतोपद्रव नाशक मन्त्र-तन्त्र का उल्लेख किया जा रहा है । मन्त्र इस प्रकार है-

मन्त्रः- "ॐ नमो भगवते नारसिंहाय घोररौद्र महिषासुर रूपाय त्रैलोक्य डम्बराय रौद्र क्षेत्रपालाय क्रीं क्रीं क्रीं क्रीं क्रीमिति नाडय नाडय मोहय मोहय द्रमि द्रमि क्षोभय क्षोभय आमि आमि

साधय साधय ह्रीं हृदये आं क्रोधये प्रीति ललाटे बन्धय बन्धय ह्रीं हृदयेस्तम्भय स्तम्भय किलि किलि ह्रीं डाकिनि प्रच्छादय प्रच्छादय शाकिनीं प्रच्छादय प्रच्छादय ब्रह्मराक्षसं प्रच्छादय प्रच्छादय सिंहिनी पुत्रं प्रच्छादय प्रच्छादय डाकिनी ग्रहं साधय साधय शाकिनी ग्रहं साधय साधय।

अनेन मन्त्रेण डाकिनी शाकिनी भूतप्रेतपिशाचादि कादिकद्व्या-हिक त्र्याहिक चातुर्थिक पञ्चवातिक पैत्तिक श्लेष्मिक सन्निपातिकेसारि डाकिनी ग्रहान् दो नुंच नुंच स्वाहा। गुरु की शक्ति मेरी भक्ति फुरो मन्त्र ईश्वरो वाचा॥" इति मन्त्रः॥

विधि- लोहे की सलाई अथवा कथीर की तीली से उक्त मन्त्र को पढ़कर २१ बार झाड़ने से उन्माद आदि भूत-बाधा दूर होती है।

अथ डाकिनीघातकारक मन्त्र-तन्त्र

अब डाकिनी को चोट मारने का मन्त्र कहते हैं, जो निम्नानुसार है-

"ॐ नमो महाकाली जोगिनी जोगिनी पार शाकिनी कल्प वृक्षीप दृष्टि जोगिनी सिद्ध रुद्राय कालदण्डेन साधय साधय मारय मारय चूरय चूरय अपहर शाकिनी सपरिवारं नमः ऊं हूं हूं ह्रीं फट् स्वाहा।" इति मन्त्रः॥

प्रयोग-विधि- उक्त मन्त्र द्वारा मूसल को सात बार अभिमन्त्रित करके ओखली में डालकर मूसल से कूटे तो उस मूसल की चोट डाकिनी को लगती है। यदि इस मन्त्र को पढ़ते हुए अपना सिर

मूँड़े तो डाकिनी का सिर मुँड़ जाता है। इस मन्त्र को किसी वस्तु पर पढ़ कर, उसे जिसके पास में फेंक दिया जाएगा, डाकिनी उसके पास में जाकर बोलने लगेगी। इस मन्त्र को पढ़ कर आँखों में पानी का छींटा मारने से डाकिनी जल उठती है।

अथ प्रेतादि झाड़ने का मन्त्र

अब प्रेतादि को झाड़ने का मन्त्र कहते हैं—

मन्त्र-"ॐ नमो नारसिंहाय हिरण्यकशिपुवक्षःस्थलविदारणाय त्रिभुवन व्यापकाय भूतप्रेत पिशाच डाकिनी कुलोन्मूलाय स्तम्भोद्भवाय समस्त दोषान् हर हर विसर विसर पच पच हन हन कम्पय कम्पय मथ मथ ह्रीं ह्रीं ह्रीं कट् कट् ठः ठः स्फुटिएहि रुद्र आज्ञापयति स्वाहा॥" इति॥

विधि-उक्त मन्त्र को पढ़ पढ़ कर भूतादि ग्रस्त पर सरसों मारने से सभी दोष दूर होते हैं।

अथ ज्वरनाशन मन्त्र

मन्त्र-"ॐ ह्रीं ह्रीं श्रीं सुग्रीवाय महाबल पराक्रमाय सूर्यपुत्राय अमित तेजसे एकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं दृष्टिज्वरं सान्निपातिकं सन्तज्वरं रक्षणं पाठमासिकं सांवत्सरिकं सर्वान् छिन्धि छिन्धि भिन्दि भिन्दि किरि किरि सर्वान् ज्वरान् ग्रस ग्रस पिब पिब ज्वलज्वरं भीषय भीषय विष्णु ज्वरं त्रासय त्रासय माहेश्वरज्वरं निघातय निघातय सूरप्रेतज्वरापस्मारादि महा व्याधीन्नाशय नाशय सर्वान् दोषान् घातय घातय महावीर वानर

ज्वरान् नाशय नाशय ॐ ह्रां ह्रीं हुं हुं फट् स्वाहा ॥" इति ॥

विधि - उक्त मन्त्र द्वारा २१ बार झाड़ा देने से हर प्रकार का ज्वर दूर होजाता है।

(२) "ॐ नमो भगवते त्रिलि त्रिलि अमुकस्य ज्वरस्य शिरः प्रज्वलित परशुं पाणये फुरुफाप फट् स्वाहा ॥" इति ॥

विधि - उक्त मन्त्र को भोजपत्र पर लिख कर धारण करने से दूर ज्वर जाता होते हैं।

(३) "ॐ वज्रहस्तो महाकायो वज्रपाणिर्महेश्वरः। नाडितो वज्रदण्डेन भूम्यां गच्छ महाज्वरः॥"

विधि - उक्त मन्त्र द्वारा पान के बीड़े को १०८ बार अभिमन्त्रित करके ज्वर-रोगी को खिलाने से 'एकान्तर ज्वर' (एकतरा बुखार) दूर होजाता है।

(४) "ॐ गङ्गायां उत्तरे तीरे अमुक स्तापसो मृतः। तस्मै तिलोदकं दद्यान्मुञ्च त्वं काहि को ज्वरः॥"

विधि - उक्त मन्त्र को पीपल के पत्ते पर लिख कर धारण करने/कराने से एकाहिक ज्वर (एकतरा बुखार) दूर होजाता है।

(५) "ॐ वाणपुत्रे महाघोरे द्वादशाक्षि समुद्भवे। जानोसो सुमहावीर्ये मुञ्च त्वं काहि को ज्वरः॥" इति॥

विधि- उक्त मन्त्र को पीपल के पत्ते पर तिलक्का चाकू करने से ऐकाहिक-ज्वर (इकतरा बुखार) दूर हो जाता है।

विविध ज्वर नाशक मन्त्र

अब विभिन्न ज्वरों को नष्ट करने वाले मन्त्रों का वर्णन किया जाता है -

(१) उलूकं दक्षिणं पक्षं सित सूत्रेण वेष्टयेत् / अद्यगामि ज्वरं हन्त्येकाहिक ज्वरम्।

टीका- उल्लू के दाँये पंख को सफेद सूत में लपेट कर रोगी के बाँये कान में बाँध देने से ऐकाहिक ज्वर (इकतरा बुखार) दूर हो जाता है।

(२) कर्कटस्य बिलोद्भूता मृदा तत्तिलकं कृतम् / ऐकाहिक ज्वरं हन्ति नात्र कार्या विचारणा।

टीका- केकड़े के बिल से निकाली हुई मिट्टी का रोगी के ललाट पर तिलक करने से ऐकाहिक ज्वर (इकतरा बुखार) दूर हो जाता है - इसमें कोई विचार नहीं करना चाहिए।

(३) अपामार्ग जटा कट्यां लोहितैः सप्त तन्तुभिः / बद्धा वा रवे स्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम्।

टीका- अपामार्ग (इसे औंग अथवा चिरचिटा भी कहते हैं) की जड़ को रविवार के दिन लाल रंग के सूत के सात तारों से बाँध कर रोगी को पहना देने से तृतीयक (तिजारी) ज्वर दूर हो जाता है।

म.

(६) काकमाचीमूलं मूलं कर्णेबद्धं लिखिज्वरम्। निहन्ति नात्र सन्देहो यथा सूर्योदयात्तमः॥

टीका - काकमाची (काली मकोय) की जड़ को कान में बाँध देने से रात में आने वाला ज्वर उसी प्रकार दूर हो जाता है, जिस प्रकार सूर्योदय से अँधेरा दूर हो जाता है - इसमें सन्देह नहीं है। म.

अथ सुख-प्रसव मन्त्र-तन्त्र

अब गर्भवती स्त्री का प्रसव सुख पूर्वक होने के मन्त्र तन्त्रों का उल्लेख किया जाता है—

(१) ऐं ह्रीं भगवति भगमालिनी चल चल प्रसव पुष्पं विकासय विकासय स्वाहा।

(२) ॐ नमो भगवते मकरकेतवे पुष्पधन्वने प्रति चालित सकल सुरासुर चित्ताय युवती भगवासिने इहीं गर्भं चालय चालय स्वाहा॥

टीका - उक्त दोनों मन्त्रों में से किसी भी एक के द्वारा दूध को अभिमंत्रित करके, वह दूध गर्भवती-स्त्री को पिला देने से प्रसव सुख पूर्वक हो जाता है।

अथ सर्प-विष नाशक मन्त्र-तन्त्र

(१) रं रं रः।

विधि - उक्त मन्त्र केवल दो अक्षरों का है। जब कोई व्यक्ति किसी को सर्प द्वारा डँसे जाने का समाचार लेकर आवे, उस समय एक कटोरी में पानी लो, उस पानी को १० बार मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करे

फिर वह पानी समाचार देने वाले व्यक्ति को देते हुए मंत्र कहे कि "यह पानी सर्प-दंशित व्यक्ति को पिला देना। सर्प-दंशित द्वारा वह अभिमंत्रित जल पीते ही सर्प-विष उतर जाता है ॥१॥

(२) ॐ नमो भगवति वज्रमुखे हनहन ॐ भस्म भस्म ॐ रुलादय रुलादय ॐ अरि रक्तं पिब कपालेन रक्ताक्षि रक्तपटे त्रस्माङ्गि त्रस्मलिप्त शरीरे वज्रायुधे वज्रकाञ्चिते पूर्वे दिशं बन्ध बन्ध ॐ दक्षिणां दिशं बन्ध बन्ध ॐ पश्चिमां दिशं बन्ध बन्ध ॐ उत्तरां दिशं बन्ध बन्ध ॐ नागान् बन्ध बन्ध ॐ नागपत्नीं बन्ध बन्ध ॐ असुरान् बन्ध बन्ध ॐ यक्षराक्षस पिशाचान् बन्ध बन्ध ॐ येनधन गन्धर्वादयो ये केचिदुपद्रवास्तेभ्यो रक्ष रक्ष ॐ कुर्ष्ण रक्ष रक्ष ॐ सर्पो रक्ष रक्ष ॐ क्षुरिके बन्ध बन्ध ॐ ज्वल महाबले घट घट ॐ मोटि मोटि सटावलि वज्राङ्गि वज्र प्रकारे हुंफट् ह्रीं ह्रीं श्रीं फट् ह्रीं ह्रां फूं फें फः सर्वग्रहेभ्यः सर्वव्याधिभ्यः सर्वदुष्टोपद्रवेभ्यो ह्रीं अमोघेभ्यो रक्ष रक्ष विषं नाशय अमुकस्य सर्वाङ्गानि रक्ष रक्ष हुंफट् स्वाहा ॥" इति मन्त्रः ॥

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकस्य' शब्द आया है, वहाँ सर्प-दंशित व्यक्ति के नाम का उच्चारण करना चाहिए।

विधि - उक्त मन्त्र द्वारा जल को ३ बार अभिमंत्रित करें, फिर वह अभिमंत्रित जल सर्प-दंशित व्यक्ति को पिलावे तो सर्प का विष उतर जाता है ॥२॥

(३) "ॐ हूँ सूं ॐ नालकान्तिदंष्ट्रिणि भीमलोचने उग्ररूपे आगारिणि किलि किलि रक्तलोचने किलि घोर निःस्वने कुलु कुलु ॐ नाडिजिह्वे निर्मांसे जयामुण्डे कट कट हन हन महोज्वले चिलि चिलि मुण्डमाला धारिणि स्फोटय स्फोटय मारय मारय स्थावरं विषं जङ्गमं विषं नाशय नाशय ॐ महारौद्रि पाषाणमयि विषनाशिनि वनवासिनि पर्वत विहारिणि कट कट ॐ हस हस नम नम दह दह क्रुध क्रुध ॐ नीलजीमूतवर्णे विस्फुर विस्फुर ॐ घण्टानादिनि ललज्जिह्वे महाकाये क्षु हूँ आकर्ष आकर्ष विषं चून चून हेहर यं ज्वालामुखि वज्रिणि महाकाये 'अमुकरूप' स्थावर जङ्गम विषं छिन्दि छिन्दि कटि कटि सर्वविषनिवारिणि हुं फट ॥ इति ॥

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकरूप' शब्द आया है, वहाँ सर्प-दंशित व्यक्ति के नाम का उच्चारण करना चाहिए।

विधि - पत्थर के एक नीले रंग के टुकड़े को उक्त मन्त्र से अभिमंत्रित करके दंशित-स्थान पर चिपका दे तथा मन्त्रोच्चारण करता रहे। जब तक विष शरीर में रहेगा, तब तक वह पत्थर दंशित-स्थान पर चिपका रहेगा तथा विष समाप्त होते ही स्वयं ही अलग हो जाएगा - इसमें सन्देह नहीं है।

अन्य भूत-विजय तन्त्रम्

अब जुए में विजय दिलाने वाले तन्त्र का उल्लेख किया जाता है -

(१) गृहीत्वा पुष्यनक्षत्रे श्वेतगुञ्जां च मूलकम्। धारयेद् दक्षिणे हस्ते द्यूतकार्ये जयो भवेत् ॥

(२) चक्रं करवीरं च अपामार्गस्य मूलकं हरितालसमायुक्तं तिलकं सुदिने कृतम् / अजाक्षीरेण सप्तेज्य क्षणे राजकुले जयी / विरोधे ~~शत्रुकार्ये~~ च नान्यथा शङ्करोदितम् ॥२॥

टीका - पुष्यनक्षत्र में सफेद पुंछची की जड़ को लाकर, दाँये हाथ में बाँधकर जुआ खेलने से विजय होती है ॥१॥

चक्रा, कनेर तथा अपामार्ग (ओंगा या चिरचिटा) की जड़ को हरिताल के साथ बकरी के दूध में पीसकर, उत्तम दिन में ललाट पर तिलक लगाने से राजकुल में, शत्रु-पक्ष में तथा जुए में विजय प्राप्त होती है — यह शंकर का वचन अन्यथा नहीं हो सकता ॥२॥

गो-महिषीणां दुग्धवर्धकं तन्त्रम्

गाय-भैंस के दूध में वृद्धि करने के लिए निम्नलिखित तन्त्र करना चाहिए —

मन्त्र - "ॐ ह्रीं करालिनि पुरुष सुरभे सुखं दं दः ॥"

विधि - उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करके गाय-भैंस आदि को खिलाने से वे अधिक दूध देने लगती हैं।

कण्टक-नाशक तन्त्र

तालकं तक्रपिष्टेन मृत्तिकायुक्तपुत्तलीम् / निखनेद्यद् गृहे मूर्ध्नि कण्टको नाशमाप्नुयात् ॥

टीका - मट्ठे में हरिताल को पीस कर, मिट्टी की पुतली को लेपकर, किसी शत्रु के घर में जहाँ कण्टक

तं. २३९

अथ पक्षिराज घूक (उलूक) तन्त्रम्

अब 'मन्त्रमहार्णव' के अनुसार पक्षिराज घूक अर्थात् उलूक (उल्लू) से सम्बन्धित तान्त्रिक-प्रयोगों का वर्णन किया जाता है। स्मरणीय है कि उल्लू पक्षी रात के समय ही निकलता तथा दिखाई देता है। म.

चतुर्दश्यामथायां वा रविवारो भवेद्यदि। गृहीत्वा पक्षिराजं च्चोदरं तस्य विदार्य च ॥१॥ विष्ठा तस्य बहिष्कृत्य नग्नो भूत्वा श्मशाने के। प्रज्वाल्य नृकपाले तु तत्पात्रोद्भूतकज्जलम् ॥२॥ गुग्गुलं चूर्णयेत्तस्य मन्त्रेण चाभिमन्त्रयेत्। अष्टोत्तरशतं वारं तदा सिद्धो भवेद्ध्रुवम् ॥३॥ कज्जले तेन संग्राह्य नात्रमन्त्रेण वेष्टिता। गुटिका मुखमध्यस्था ध्यानात् दृश्यत्वकारिणी ॥४॥ कज्जलेनाञ्जयेन्नेत्रे तदा दृश्यति देवताम्। भूत प्रेत पिशाचाद्यैर्दृश्यैश्च योगिनीः सह ॥५॥ नेत्रे प्रक्षाल्य गोमूत्रैर्मनुजो दृक् प्रजायते। योगं कृत्वेत कथितं मन्त्रस्यैकं वदामि ते ॥६॥

तन्त्र मन्त्र:— "ॐ कुरु कुरु स्वाहा मेदमरोअमेनधनेश्वर पाठेश्वरी नमः।"

टीका— चतुर्दशी अथवा अमावास्या को जब रविवार हो, उस दिन श्मशान भूमि में निर्वस्त्र होकर उल्लू का पेट फाड़े। फिर उसकी विष्ठा को बाहर निकाल दे, तदुपरान्त उल्लू को मनुष्य की खोपड़ी में जलाकर उससे काजल पोंछे। फिर उस काजल को गुग्गुल की धूप दे तथा ऊपर लिखे मन्त्र— "ॐ कुरु कुरु स्वाहा० आदि" से १०८ बार अभिमन्त्रित करे। इससे वह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है। उस सिद्ध काजल को लाँबे के नाबीच में भर कर मुँह में रखने वाला मनुष्य अदृश्य हो जाता है ॥१॥

(२) उक्त काजल को आँखों में आँजने वाले मनुष्य को देवता, भूत, प्रेत, पिशाच, यक्ष

तथा योगिनियाँ प्रत्यक्ष दिखाई देने लगते हैं। तत्पश्चात् जब गोमूत्र से आँखें धो ली जाती हैं, तब वे सामान्य-मनुष्य की आँखों जैसी हो जाती हैं।

उलूक-तन्त्र संबंधी अन्य प्रयोग

उलूक-तन्त्र संबंधी अन्य प्रयोग आगे लिखे अनुसार हैं, परन्तु इन तन्त्रों का प्रयोग करने के पूर्व निम्न लिखित मन्त्र को पहले १००८ बार जप का सिद्ध कर लेना चाहिए। तदुपरान्त किसी भी प्रयोग को करने से पहले इस मन्त्र का १० ८ बार उच्चारण करना भी आवश्यक है। मन्त्र इस प्रकार है—

मन्त्र - "ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय नमो रुद्राय हिलि हिलि चिलि चिलि मातङ्गि परिधानाय मरुल मरुल कुरु कुरु चण्ड-प्रचण्ड किलि किलि स्वाहा॥"

प्रयोग - उलूक मज्जा तैलेन कज्जलं पारयेन्नरः। तेनाञ्जनेन वै कृत्वा अदृश्यं भवति ध्रुवम्॥१॥ घूक नेत्रं गृहीत्वा तु तैलेन सह घर्षयेत्। प्रभाते कज्जलं पार्थ नेत्रे तेनाञ्जयेत्ततः॥ अदृश्यो भवति क्षिप्रं देवैरपि न दृश्यते॥२॥

अन्य अदृश्यीकरण प्रयोग

काकोलूक स्य पिच्छानि आत्मके शास्त्र मेव च। अन्तर्धूमगतान् दग्ध्वा सूक्ष्मचूर्णं तु कारयेत्। अंकोल तैल गुटिकां कृत्वा शिरसि धारयेत्। अदृश्यो जायते क्षिप्रं देवानामपि दुर्लभम्॥३॥

काकोलूकस्य नीलस्य गोले रक्तेषु लोचने। तल्लोहे नाञ्जयेच्चक्षु रदृश्यो भवति ध्रुवम्। नेत्रे प्रक्षाल्य गोमूत्रैर्मानुषी दृक् प्रजायते॥४॥

उलूकस्य [illegible] नेत्राञ्जितो नरोऽदृश्यो जायते

नात्र संशयः ॥ ५॥ सर्वयोगेन वै मन्त्रं कथयामि शृणु प्रिये ॥

टीका - उल्लू की मज्जा के तैल से काजल पार कर, मनुष्य उस काजल को अपनी आँखों में लगाले तो वह निश्चित रूप से अदृश्य हो जाता है ॥ १॥

उल्लू की आँख लेकर उसे तैल के साथ मिले। फिर उसके श्मशान में काजल पार कर आँखों में अंजन करे तो मनुष्य शीघ्र ही अदृश्य होजाता है तथा उसे देवता भी नहीं देख पाते ॥२॥

कौआ और उल्लू के पंख तथा अपने शिर के बाल — इन सबको अलग धूमि (बन्द पात्र में रख कर) विधि से जलाकर उसका महीन चूर्ण तय्यार करे। तदुपरान्त अंकोल के तैल से उसकी गोली बना कर अपने शिर पर रखे तो मनुष्य शीघ्र अदृश्य होजाता है और उसे देवता भी नहीं देख पाते ॥३॥

कौआ, उल्लू और नीलपक्षी — इन तीनों की आँखें लेकर चूर्ण बनाये, फिर उस चूर्ण को लोहे की सलाई द्वारा आँखों में आँजे तो मनुष्य निश्चित रूप से अदृश्य हो जाता है। पुनः जब गोमूत्र से आँखें धो ली जाती हैं तो पूर्ववत् सामान्य-मनुष्य जैसी हो जाती हैं ॥४॥

उल्लू, बिल्ला तथा सुअर की आँखों का रक्त लेकर उसमें नीलांजन घीस कर उसे अरण्य-सम्पुट में बन्द करके गजपुट में फूँक कर अंजन तय्यार करले। इस अञ्जन को अपनी आँखों में आँजने वाला मनुष्य निश्चित रूप से अदृश्य होजाता है — इसमें सन्देह नहीं। इन सब योगों का मन्त्र पहले बताया जा चुका है, अतः उसका उपयोग करना चाहिए।

टिप्पणी - दोआबकोरों के भील किसी वस्तु को रखकर, उपले कंडे से ढँक देने को 'आवलम्पुट' कहते हैं

अथ वशीकरण काक उलूक-तन्त्र प्रयोग

अब वशीकरण करने वाले उलूक-तन्त्र योगों का वर्णन किया जा रहा है। इन योगों को प्रयोग में लाने से पूर्व निम्नलिखित मन्त्र को १००८ बार जप का सिद्ध कर लेना चाहिए तथा मन्त्र के सिद्ध हो जाने के बाद जब कोई प्रयोग किया जाय, उसके पहले भी १०८ बार मन्त्र-जप कर लेना आवश्यक है। मन्त्र इस प्रकार है—

मन्त्र :—"ॐ नमो महाघंटेश अमुकं मे वशे कुरु कुरु स्वाहा॥

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुक' शब्द आया है, वहाँ उस साध्य व्यक्ति के नाम का उच्चारण करना चाहिए, जिसे वशीभूत करना हो।

प्रयोगविधि- रविदिने घूक मांसं रक्तचन्दनकुंकुमैः। सह पिष्ट्वा वटीं कृत्वा टङ्कमानं तदा बुधः॥१॥ धूपो देयो गुग्गुलोश्च मन्त्रात्सप्तभिरुक्त्वेत्। ताम्बूले दीयते यस्मै सा वश्या भवति ध्रुवम्॥२॥ घूक नालुं च ताम्बूले धृत्वा नारीं प्रदापयेत्। वश्या भवति सा नारी प्राणैरपि धनैरपि॥३॥ घूक तुण्डं गृहीत्वा तु नागकेसर केसरैः। गोरोचनेन संयुक्तं मन्त्रात्सप्तभिरुक्त्वेत्॥४॥ अरोत्तापद्वादशं वारं तिलकं क्रियते नरैः। तस्य दर्शनमात्रेण वश्यां भवति निश्चितम्॥५॥ घूक जिह्वा निम्बपत्रैः एकीकृत्य प्रपेषयेत्। नेत्राञ्जनेन वै पश्येत्सर्वं वश्या भवन्तिहि॥६॥ घूक नेत्रं गृहीत्वा तु बिडाली नेत्र संयुतम्। वासनागसमायुक्तं नागकेशर केशरैः॥७॥ रसं सर्वप्रयोगेन सम्भोगेन प्रपेषयेत्। धूमयाने गर्भकुण्डे तु स्थापयेद्दिनसप्तकम्॥८॥ ततो निष्कास्य यत्स्थाने विशेषं प्रक्षिपेद्बुधः। विना-स्नानं उलूकेन साऽऽयाति निश्चितं प्रिया॥९॥ मूर्खस्य सर्वद्रव्यैश्च नान्दनवनकपासकैः। वर्तिं कृत्वा प्रयत्नेन एकवर्णिक गोघृतम्॥१०॥ रात्रावे: तद्विनिःक्षिप्य मध्यां रविवासरे। अर्द्धरात्रे भवेन्मग्नः श्मशाने निर्जनेद्रिः॥११॥

उलूकं खर्परपात्रेण त्यक्त्वा नरकपालके। कज्जलं पारये च्चूर्णान्मन्त्रेणा चाभिमन्त्रयेत्॥ १२॥ अष्टोत्तरशतं वारं गुग्गुलं धूपयेत्ततः। सिद्धो भवति सर्वत्र काम्यकर्माणि योजयेत्॥ १३॥ योषिद्धस्ते कज्जलेन रेखामेकां तु कारयेत्। वश्याऽऽज्ञाति तथा नारी यथाऽन्धो सरितागमः॥ १४॥ धूकजिह्वां गृहीत्वा तु काकजिह्वा समायुताम्। यस्या मूर्ध्नि क्षिपेच्चूर्णं वश्या भवति निश्चितम्॥ १५॥ उलूक हृदयं मांसं गोरोचन समन्वितम्। अष्टाविंशतिवारं च मन्त्रेणैवाभिमन्त्रयेत्॥ १६॥ अञ्जनं चाञ्जयेन्नेत्रे दृष्टिमात्रेण वश्यताम्। योगसिद्धिकरं मन्त्रं कथयामि शृणु प्रिये॥

टीका— रविवार के दिन उल्लू का मांस, लालचन्दन तथा केसर — इनको एक साथ पीस कर एक टंक परिमाण की गोलियाँ बना कर, उस पर गुग्गुल की धूप देकर पूर्वोक्त मन्त्र "ॐ नमो महादेवेश०" आदि - से अभिमन्त्रित करे। इस अभिमन्त्रित गोली को पान में रख कर जिसे खिला दिया जाता है, वह वशीभूत हो जाता है॥१॥

पान में रख कर

उल्लू के तालु को पूर्वोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित करके जिस साधक-स्त्री को खिला दिया जाता है, वह प्राण तथा धन सहित वशीभूत हो जाती है॥२॥

उल्लू की चोंच को नागकेसर तथा गोरोचन के साथ पीस कर पूर्वोक्त मन्त्र द्वारा १०८ बार अभिमन्त्रित करके अपने ललाट पर तिलक लगाने वाले व्यक्ति को देखते ही साधक-स्त्री निश्चित रूप से वशीभूत हो जाती है॥३॥

उल्लू की जीभ को नीम के पत्तों के साथ पीस कर, उसे अभिमंत्रित करने के बाद आँखों में आँजने वाला साधक जिसे देखता है, वही वशीभूत हो जाता है॥४॥

उल्लू की आँख, बिल्ली की आँख, वत्सनाग, नागकेसर, सफेद दूर्वा, पारा तथा सरसों — इन सबको समभाग लेकर पीसले। फिर श्मशान में गड्ढा खोद कर उसमें इन सभी वस्तुओं के मिश्रण को गाड़ दे। सात दिन बाद बाहर निकाल कर उसे जिस के सिर पर डाल दिया जायगा, वह स्त्री बिना बुलाये ही प्रेमिका बन कर साधक के पास निश्चित रूप से चली आती है ॥५॥

पूर्वोक्त सभी द्रव्यों के साथ नन्दन-वन में उत्पन्न कपास की बत्ती बना कर, उसे प्रयत्नपूर्वक एक रंग वाली गाय के घृत से निर्मित घी के दीपक में डाल कर मघानक्षत्र वाले रविवार की आधीरात को जितेन्द्रिय तथा नग्न होकर, श्मशान में जा, कच्चे खपड़े अथवा मनुष्य की खोपड़ी में रख कर जलाये और काजल पारे। उस काजल को पूर्वोक्त मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित कर, गुग्गुल की धूप दे। तब वह काजल सिद्ध होजाता है। ऐसे काजल को काम्य-कर्मों में उपयोग में लाना चाहिए। जिस स्त्री के वस्त्र में इस काजल की एक रेखा लगा दी जाती है, वह स्त्री वशीभूत होकर साधक के पास उसी तरह चली आती है, जिस प्रकार कि नदियां समुद्र के पास स्वतः जा पहुँचती हैं ॥६॥

उल्लू की विष्ठा तथा कौवे की विष्ठा को एकत्र कर चूर्ण बनाले। इस चूर्ण को पूर्वोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर, जिस स्त्री के सिर पर डाल दिया जाता है, वह निश्चित रूप से वशीभूत होजाती है ॥७॥

उल्लू के हृदय तथा मांस में गोरोचन मिला कर, उसे २८ बार मन्त्र से अभिमन्त्रित करके, उसे आँखों में आँजने वाला साधक केवल दृष्टि-निक्षेप मात्र से ही साध्य-व्यक्ति को वश में कर लेता है ॥८॥

अब विद्वेषण प्रयोग - अब उल्लूक-मन्त्र द्वारा 'विद्वेषण' (दो लोगों में परस्पर शत्रुता करा देना) के प्रयोग का वर्णन करते हैं। इस का मन्त्र निम्नानुसार है —

मन्त्र :- "ॐ नमो महाघंटेश अमुकस्य अमुकेन सह विद्वेषं कुरु कुरु स्वाहा।"

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकस्य अमुकेन सह' शब्द आया है, वहाँ जिन दो लोगों में विद्वेष कराना हो, उनके नामों का उच्चारण करना चाहिए।

विधि - यह मन्त्र १००८ संख्या में जपने से सिद्ध होता है। जब मन्त्र सिद्ध हो जाय, तब प्रयोग करते समय भी इसका १०८ बार उच्चारण-जप करना चाहिए।

प्रयोग - एक दस्ते काक पहले घूक पहले परे करे। मन्त्रयित्वा मेलयित्वा कुशसूत्रेण वेष्टयेत्॥१॥ अञ्जलिभिर्जलिनैव तर्पयेद्धस्तपक्षके। एवं सप्तदिनं कुर्यादिष्टोच्चाटं न संशयः॥२॥ विद्वेषं कुरुते यस्य श्वेतस्य हि नान्यथा॥३॥ उक्त योगमयं मन्त्रं शृणु यत्नेन वै पुनः॥४॥

टीका - एक हाथ से कौवे का पंख तथा दूसरे हाथ में उल्लू का पंख लेकर, पहले तो उन्हें पूर्वकथित मन्त्र से अभिमन्त्रित करे, फिर एक अंजलि से ही हाथ के पंखों का तर्पण करे। इस प्रकार सात दिनों तक करता रहे। तत्पश्चात् १०८ बार मन्त्र का जप करे तो साधक जिस व्यक्ति की आकांक्षा करता है, उसका विद्वेषण होजाता है। योगमय मन्त्र का उल्लेख पहले किया जा चुका है

अब उच्चाटन प्रयोग - अब उल्लूक-मन्त्र द्वारा 'उच्चाटन' (अपना स्थान छोड़ कर चले जाना)

के उपोग का वर्णन करते हैं। इसका मन्त्र निम्नानुसार है -

मन्त्र - "ॐ नमो महापड्डेवा अमुकं सपुत्रं बान्धवैः सह हनहन दहदह पचपच शीघ्रमुच्चाटयोच्चाटय हुं फट् स्वाहा ठः ठः॥"

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुक' शब्द आया है, उस स्थान पर, जिस व्यक्ति का उच्चाटन करना हो, उसके नाम का उच्चारण करना चाहिए।

विधि - यह मन्त्र १००८ संख्या में जपने से सिद्ध होता है। जब मन्त्र सिद्ध हो जाय, तब उपोग करते समय भी इसका १०८ बार जप-उच्चारण करना चाहिए।

प्रयोग - घूककपक्षे कुजे वीर यदृच्छे निखनेन्नरः। उच्चाटनं भवेत्तस्य विना मन्त्रेण सिद्धयति॥१॥ उल्लूविष्ठां गृहीत्वा तु सिद्धार्थः सह मानवः। यस्याङ्गे निक्षिपेच्चूर्णं सद्यः उच्चाटनं भवेत्॥२॥ काकोलूकस्य पक्षं तु कुत्वा चाष्टाधिकं शतम्। मन्त्रान्मा मन्त्रयोगेन क्षणश्चोच्चाटनं भवेत्॥३॥ पक्षिराज विषं चूर्णं शिरोग्रीवं मस्तके क्षिपेत्। मन्त्र योगेन वै ॐ स शीघ्रमुच्चाटयेद् ध्रुवम्॥४॥ उल्लूदंष्ट्रां निम्बुकाण्डं विडाली मरुचर्मणी। चतुरास्तु श्मशानास्थि अरिगेहे विनिःक्षिपेत्॥५॥ उच्चाटनं भवेत्तस्य सिद्धियोग उदाहृतः। उक्तयोगमपं मन्त्रं शृणु मन्त्रेण वै पुनः॥६॥

टीका - उल्लू के पंख को पूर्वोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर, मंगलवार को जिसके घर में गाड़ दिया जाता है, उसका उच्चाटन हो जाता है। इस तन्त्र में मन्त्र-सिद्धि की आवश्यकता भी नहीं है॥१॥

उल्लू की विष्ठा लेकर पीली सरसों के साथ उसका चूर्ण बनाले। इस चूर्ण को

तं. २३८ म.

अभिमन्त्रित करके जिसके सिर पर फेंक दिया जाता है, उसका उच्चाटन हो जाता है ॥२॥

कौए और उल्लू के पंख का, जिसके नाम के साथ मन्त्र पढ़ते हुए होम किया जाता है, उसका निश्चित रूप से उच्चाटन होता है ॥३॥

उल्लू के सिर के चूर्ण को मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित कर, जिसके सिर पर फेंक दिया जाता है, उस शत्रु का निश्चित रूप से उच्चाटन हो जाता है ॥४॥

उल्लू के दाँत, नीबू की लकड़ी, बिल्ली का नख और चमड़ा, धतूरे का रस और श्मशान की हड्डी - इन्हें अभिमंत्रित कर, शत्रु के घर में फेंकने से उसका उच्चाटन होता है ॥५॥

अथ मारण-प्रयोग - अब उलूक-तन्त्र द्वारा 'मारण' प्रयोग का वर्णन किया जाता है। इसका मन्त्र निम्नानुसार है -

मन्त्र - "ॐ नमो महाप्रेतेश्वर कालरूपाय अमुकं भस्मी कुरु कुरु स्वाहा।"

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुक' शब्द आया है, वहाँ जिस व्यक्ति का मारण करना हो, उसके नाम का उच्चारण करना चाहिए। यह मन्त्र १००८ की संख्या में जप करने से सिद्ध होता है। प्रयोग के समय इस मन्त्र का १०८ बार जप करना भी आवश्यक है।

प्रयोग - उल्लू विष्ठां गृहीत्वातु विष-चूर्ण समन्वितम्। यस्मोऽ, निःक्षिपेच्चूर्णं सद्यो याति यमालयम्।"

टीका- उल्लू की विष्ठा को वत्सनाभ के चूर्ण से युक्त, अभिमन्त्रित करे। तदुपरान्त उसे जिस साध्य-व्यक्ति के शरीर पर फेंक दिया जाता है, वह शीघ्र ही यमलोक चला जाता है।

अथ बुद्धि-स्तम्भन प्रयोग- अब उलूक-मन्त्र के बुद्धि-स्तंभन प्रयोग का उल्लेख किया जाता है। इसका मन्त्र निम्नानुसार है-

मन्त्र:- "ॐ नमो भगवते उलूकेश्वराय अमुकस्य बुद्धिं स्तंभनं कुरु कुरु स्वाहा।"

टिप्पणी- उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकस्य' शब्द आया है, वहाँ जिस व्यक्ति की बुद्धि स्तंभित करनी हो, उसके नाम का उच्चारण करना चाहिए।

विधि- उक्त मन्त्र १००८ संख्या में जपने से सिद्ध होता है। प्रयोग के समय भी उक्त सिद्ध मन्त्र का १०८ बार जप/उच्चारण करना चाहिए।

प्रयोग- उलूकस्य कथेर्वापि ताम्बूले भक्ष्य दापयेत्। विष्ठां भक्षयतस्तस्य बुद्धि स्तम्भः प्रजायते॥

टीका- उल्लू तथा बंदर की विष्ठा को अभिमन्त्रित कर, जिस व्यक्ति को पान में रख कर खिला दी जाती है, उसकी बुद्धि स्तम्भित हो जाती है।

अथ विद्वेषण कारक प्रयोग- अब उलूक मन्त्र के विद्वेषण कारक प्रयोग का उल्लेख

किया जाता है। इसका मन्त्र निम्न लिखित है -

मन्त्र: - "ॐ नमो महापंक्लेश अमुकेन विक्षिप्तं कुरु कुरु स्वाहा।"

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकेन' शब्द आया है, वहाँ साधक-साधिका के नाम का उच्चारण करना चाहिए।

विधि - यह मन्त्र १००८ बार जपने से सिद्ध हो जाता है। प्रयोग करते समय इसे १०८ की संख्या में पुनः जपना चाहिए।

प्रयोग - उल्लू विष्ठां गृहीत्वा भैरवं तैलेन मेलयेत्। मस्योर्ध्वं निःक्षिपेद् बिन्दुं विक्षिप्तो जायते नरः।

टीका - उल्लू की बीठ को भैरव के तेल में पीस कर, पूर्वोक्त मन्त्र से अभिमंत्रित कर, जिसके शरीर पर डाल दिया जाता है, उसकी बुद्धि विक्षिप्त हो जाती है अर्थात् वह पागल हो जाता है।

अब मनोभिलाषा कथन तन्त्र - अब उल्लू-तन्त्र के अन्तर्गत मनोभिलाषा-कथन के प्रयोग का उल्लेख किया जाता है। इसका मन्त्र निम्नलिखित है -

मन्त्र: - "ॐ नमो महापंक्लेश स्वप्नावस्थायां मनोभिलाषितं कथय स्वाहा।"

विधि - यह मन्त्र १००८ बार जपने से सिद्ध हो जाता है। प्रयोग करते समय भी इसे १०८ की संख्या में पुनः जपना चाहिए।

प्रयोग- उल्लूक हृदयं मांसं मन्त्रेण चाभिमन्त्रयेत् । गुग्गुलं धूपयेत्तस्य शपानस्य हृदि क्षिपेत् ॥१॥ मानसं वक्ति वृत्तान्तं यत्किंचिद्दर्शने हृदि । तस्मै कस्मै न दातव्यं सिद्धि योग उदाहृतः ॥२॥

टीका- उल्लू के हृदय के मांस को अभिमन्त्रित करके गूगल की धूप दे । फिर उसे जिस सोये हुए व्यक्ति के हृदय पर रख दिया जाता है, वह अपने मन की सभी बातों को सोते हुए ही कह देता है । यह सिद्ध योग है, इसे चाहे जिसको नहीं देना चाहिए ॥ १-२ ॥

अथ सहस्राक्षि तन्त्र- अब इन्द्र के समान सहस्र आँखों वाले तन्त्र का वर्णन किया जाता है अर्थात् इस तन्त्र का प्रयोग करने वाले साधक को इन्द्र की भाँति हजारों आँखों से दिखाई देने जैसी दिव्य-दृष्टि प्राप्त हो जाती है । इसका मन्त्र निम्न लिखित है—

मन्त्रः- ॐ नमो भगवते सहस्राक्षि रूपं कुरु कुरु स्वाहा ।"

विधि - इस मन्त्र को १००८ संख्या में जप कर सिद्ध करके तथा प्रयोग के समय भी १०८ की संख्या में जपना चाहिए ।

प्रयोग- आषाढ़ कृष्ण पक्षे तु चतुर्दश्यां शुभे दिने । उल्लूकस्य कपाले तु चन्दनं च मृदा सह ॥१॥ लेपयेद्धूपं दत्त्वा च निखनेद्भूमिमण्डले । भैरवं च पुनर्ध्यात्वा जलोक्षितेन सिञ्चयेत् ॥२॥ दीपं प्रज्वालयेन्नित्यं धूपेन सह साधकः । यावत्सम्भवति वृद्धिस्तावत्कालं यथाविधि ॥३॥ फल पुष्प त्वचामूलं पिष्ट्वा तु तिलकं यदि । [illegible]

टीका - आषाढ़ मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी के शुभ दिन उल्लू के कपाल में चावल के बीज तथा मिट्टी भर कर, उसे पृथ्वी में गड्ढा खोद कर गाड़ दे। फिर भैरव का ध्यान करते हुए, उसे उच्छिष्ट (जूठे) पानी से सींचना रहे। उस स्थान पर साधक प्रतिदिन घी का दीपक भी तबतक जलाता रहे, जब तककि उसमें वृक्ष न उग आये। जब वृक्ष बड़ा होजाय, तब उसके फल, फूल, मूल (जड़) तथा छाल और पत्तों (पञ्चाङ्ग) को पीस कर, मन्त्र से अभिमन्त्रित कर और अपने मस्तक पर तिलक लगाये तो साधक इन्दु के समान सहस्र नेत्रों वाला हो जाता है।

अब रात्रि-दर्शन मन्त्र - अब रात में भी पुस्तक आदि पढ़ लेने की शक्ति देने वाले मन्त्र का उल्लेख किया जाता है। उसका मन्त्र निम्न लिखित है -

मन्त्र - ॐ नमो महाभैरवेश रात्रौ दर्शय स्वाहा।"

विधि - यह मन्त्र १०० बार जपने से सिद्ध होता है। प्रयोग काले समय उसे १०८ बार पुनः जपना चाहिए।

प्रयोग - पक्षिराज शिखा मुक्तं हरितालं मनः शिला। वर्ती कृत्वा प्रयत्नेन मन्त्रेण चाभिमन्त्रयेत्।।१।। अष्टोत्तरशतं वारं सिद्धो भवति नान्यथा वर्तीम्। अञ्जयेन्नेत्र युगले रात्रौ पठति पुस्तकम्।।२।। उलूकस्य कपालेन पूरयेत् सप्त धान्यकं। तेन नेत्राञ्जनं कृत्वा रात्रौ पठति पुस्तकम्।।३।।

टीका - उल्लू की शिखा (चोटी) को हरिताल तथा मैनसिल के साथ पीस कर

गोली बनाले। फिर उसे पूर्वोक्त सिद्ध-मन्त्र से अभिमन्त्रित करे। तदुपरान्त उससे दोनों आँखों में अंजन करे तो मनुष्य रात के समय भी पुस्तक पढ़ने लगता है ॥१॥

(२) उल्लू के कपाल में घृत का दीपक जलाकर काजल पारे। उस काजल को आँख में आँजने से भी मनुष्य रात्रि में पुस्तक आदि पढ़ सकता है। इसमें सन्देह नहीं है ॥२॥

अथ भू-तिधि दर्शन तन्त्र - अब पृथ्वी में गड़े हुए धन आदि को देखने की शक्ति देने वाले तन्त्र का उल्लेख किया जा रहा है। उसका मन्त्र निम्नानुसार है -

मन्त्र:- ॐ नमो महाभैरवेश भूतिधिं दर्शय दर्शय ठः ठः स्वाहा।"

विधि - उक्त मन्त्र 900 बार जपने से सिद्ध होता है तथा प्रयोग के समय भी इसका १०८ की संख्या में जप करना चाहिए।

प्रयोग - उलूक चक्षुराद्राभ्यं कुंकुमं रोचनं शशी। संमासं मधुना पिष्ट्वा अञ्जनं भूतिधिं दिशेत् ॥१॥

टीका - उल्लू की आँख, कुंकुम (केसर) तथा गोरोचन - इन सबको समभाग लेकर अञ्जन तथा को अर्थात् पीस कर लेप बनाले। पीसने का कार्य आर्द्र (मधु) मिलाकर करना चाहिए। इस अंजन को अभिमंत्रित करके अपनी आँखों में आँजने वाला मनुष्य पृथ्वी में गड़े हुए निधि (खजाना) को देख सकता है ॥१॥

अब ज्वर-नाशक प्रयोग - अब ज्वर-नाशक प्रयोग का उल्लेख किया जाता है। उसका मन्त्र निम्नलिखित है -

मन्त्र :- "ॐ नमो महापंक्षेश ज्वरं नाशय नाशय स्वाहा ॥"

विधि - उक्त मन्त्र १००८ संख्या में जपने से सिद्ध होता है। प्रयोग के समय भी इसका १०८ बार जप करना चाहिए।

प्रयोग - उलूक दक्षिणं पक्षं सिन सूत्रेण वेष्टयेत्। बध्नीयेद् वाम कर्णे तु हरत्येकाहिकं ज्वरम् ॥१॥ उलूकपक्षं गुग्गुलं च कृष्णवस्त्रेण वेष्टयेत्। वर्तिं कृत्वा प्रदीप्तेन घृतेन सह कज्जलम् ॥२॥ चातुर्थिकं ज्वरं शान्तिरञ्जनेन कृतेन वै। महाश्चर्यमिदं ह्येयं नान्यथा वाङ्मयोदितम् ॥३॥ उलूकविष्ठां गृहीत्वा तु गुञ्जामात्रेण वै नरः। ताम्बूले भक्षिता सा तु सर्वज्वरविनाशकृत् ॥४॥

टीका - उल्लू के दाँई ओर के पंख को सफेद डोरे में लपेट कर बाँयें कान में बाँध देने से ऐकाहिक ज्वर (एकला अर्थात् एकदिन छोड़कर आने वाला बुखार) दूर हो जाता है ॥१॥

(२) उल्लू के पंख तथा गुग्गुल को काले वस्त्र में लपेट कर बत्ती बनाये तथा उसे घी के दिये में जलाकर काजल पोर। इस काजल का अंजन करने से चातुर्थिक-ज्वर (चौथैया अर्थात् हर चौथे दिन आने वाला बुखार) दूर हो जाता है। यह अत्यन्त आश्चर्यजनक प्रयोग शंकाजी ने कहा है, जो अन्यथा नहीं होता।

(३) उल्लू की विष्ठा को एक रत्ती भर पान में रख कर खिला देने से सभी ज्वर दूर हो जाते हैं।

अथ भूत-बाधा-नाशक प्रयोग- अब भूत-बाधा को नष्ट करने वाले प्रयोग का वर्णन किया जाता है। उसका मन्त्र निम्नानुसार है—

मन्त्र:- "ॐ नमो महाप्रलेश भूतबाधां नाशय नाशय स्वाहा।"

विधि- यह मन्त्र १०० की संख्या में जपने से सिद्ध होता है। प्रयोग के समय भी इसका १०८ बार जप करना चाहिए।

प्रयोग- उल्लू मांसं गृहीत्वा तु च्छाया शुष्कं तु कारयेत्। चूर्णं कृत्वा प्रयत्नेन भूतबाधा विनश्यति॥

टीका- उल्लू का मांस लेकर छाया में सुखाले तथा अभिमंत्रित करने के बाद चूर्ण बना प्रयोग करने से भूत-बाधा दूर होती है।

॥ इति उलूक मन्त्रं समाप्तम् ॥

अथ सन्तानोपाय:- अब सन्तान-प्राप्ति का उपाय कहते हैं

अरुण उवाच॥ वृथा अन्नं गृहं अन्धमपुत्रं जन्म निष्फलम्। मनोधरि दयां कृत्वा प्रायश्चित्तं वदस्व मे॥१॥ श्री सूर्य उवाच॥ विप्रश्चक्रापहारी च सोनपत्य: प्रजायते। तेन कर्म विशुद्ध्यर्थं महारुद्र जपादिकम्॥२॥ तीर्थ यात्रा प्रकर्तव्या रेवातोयसमुद्भवा। एकेनाधिष्ठि वस्त्रेण दम्पतीस्नानमुत्तमम्॥३॥ श्रवणं हरिवंशस्य ब्राह्मणेष्वाहनं खग। अष्टोत्तशतान् विप्रान् मिष्टान्नेन तु तर्पयेत्॥४॥ ईशान

इति मन्त्रेण जपं कुर्यात्सहस्रकम्। दशांशं होम संयुक्तं कुर्याच्च विधिवत्ततः ॥५॥ पक्वैस्तु लक्ष संख्याकैः घृतं सम्पूज्य यत्नतः। स्वर्णधेनुः प्रदातव्या सवत्सा सुरभिस्तथा ॥६॥ घृत कुम्भं वैनतेय ब्राह्मणाय निवेदयेत्। एवं कृते न वै तस्य ह्यपत्यं जायते सुता ॥७॥ हरिवंश कथां श्रुत्वा प्रोक्तचण्डी विधानतः। अथवा श्रीधिवस्याग्रे पुत्रमुत्पादयेत्सुधीः ॥८॥ सौवर्णं बालकं कृत्वा दध्ना द्रोणा समन्वितम्। अथवा वृषभं दध्नाद्विजेभ्यो दक्षिणामेव वा ॥ महारुद्र जपो नापि लक्षपक्वैः घृताहुतिम् ॥९॥

टीका - अरुण ने कहा - "हे देव! यदि पुत्र नहीं होता तो धन, राज्य, घोड़े आदि सब व्यर्थ हैं। अतः मुझ पर कृपा करके प्रायश्चित्त बताएँ।"

सूर्य बोले - "जो मनुष्य ब्राह्मण के रक्त का अपव्यय करता है अथवा ब्रह्महत्या करता है, वह पुत्र-हीन होता है। उसे प्रायश्चित्त करके शुद्धि हेतु महारुद्र का जप आदि करना चाहिए तथा रेवा रेवं नदी के तट की तीर्थ-यात्रा करनी चाहिए। वहाँ एक ही वस्त्र के आश्रय से पति-पत्नी को स्नान करना चाहिए। हे खग! इस हेतु 'हरिवंश पुराण' को सुनना, ब्राह्मण का विवाह तथा १०८ ब्राह्मणों को मिष्ठान्न-भोजन कराकर तृप्त करना चाहिए। "ईशान" - इस मन्त्र से एक हजार की संख्या में जप करना चाहिए। तदुपरान्त विधिपूर्वक दशांश का होम करना चाहिए। हे वैनतेय! एक लाख कमलों से घृत का प्रयत्न करके एक सोने की गाय, एक सवत्सा (बछड़े सहित) दुधारू गाय तथा घृत से भरा एक घड़ा ब्राह्मण को दान करना चाहिए। ऐसा करने पर कभी सन्तान का जन्म होता है।

'गरुड़ पुराण' के अनुसार - प्रोक्त चण्डी विधान से हरिवंश पुराण की कथा सुनकर

तथा भक्ति-पूर्वक शिव-पूजन करके पुत्र उत्पन्न करे ॥२॥

'महार्णव' के अनुसार--स्वर्ण का बालक बनाकर घृत के साथ दान करे अथवा बैल का दान करे अथवा किसी ब्राह्मण का विवाह करावे / अथवा महारुद्र का जप करे अथवा एक लाख कमल-पुष्पों द्वारा शिवजी की पूजा करनी चाहिए ॥३॥

अथ मृतवत्सा-दोष नाशनोपाय- जिसके यहाँ मरे हुए बालकों का जन्म होता हो, उसे मृतवत्सा-दोष शान्ति के लिए निम्न लिखित उपाय करना चाहिए :-

बालघ्नो च भुवो मृतवत्सः प्रजायते । ब्राह्मणो दाहनं चैव कर्तव्यं तेन शुद्धये ॥१॥ श्रवणं हरिवंशस्य कर्तव्यं च यथाविधि । महारुद्र जपं चैव कारयेच्च यथाविधि ॥२॥ जुहुयाच्च शतांशेन दूर्वाभाज्य परिप्लुतः । एकादश स्वर्णनिष्काः प्रदातव्या च दक्षिणा ॥३॥ एकादश पशूंश्चैव दद्याद्विभवानुसारतः । अन्येभ्योपि यथाशक्ति द्विजेभ्यो दक्षिणां दिशेत् ॥४॥ स्नापयेद्वृषभं पश्चान्मन्त्रैर्वरुणदेवतैः । आचार्याय प्रदेयानि वस्त्रालङ्करणानि च ॥५॥

टीका- जिसने पूर्व जन्म में किसी बालक की हत्या की हो, उसके यहाँ मृत-बालक का जन्म होता है । इस दोष की शान्ति के लिए 'हरिवंश पुराण' का श्रवण तथा यथाविधि महारुद्र मंत्र का जप कराना चाहिए ॥२॥ ब्राह्मण का विवाह कराने से भी शुद्धि होती है । शतांश (जप का शतांश) होम घृतप्लुत दूर्वा से करना चाहिए तथा दक्षिणा में ग्यारह निष्क (स्वर्ण-मुद्रा) देने चाहिए ॥३॥ अपनी सामर्थ्य

के अनुसार 11 पशु भी दान करने चाहिए। इसके अतिरिक्त यथा शक्ति अन्य वस्तुएँ भी ब्राह्मण को दक्षिणा के रूप में देनी चाहिए॥ 8॥ तदुपरान्त दम्पति (पति-पत्नी) को वरुण-देवता के मन्त्र का उच्चारण करते हुए स्नान करना चाहिए एवं आचार्य को वस्त्राभूषण का दान करना चाहिए॥ 9॥

अथ हरिवंश श्रवण विधान - अब हरिवंश पुराण की कथा सुनने का विधान बताते हैं -

दम्पत्योरनुकूले सुदिने कृतनित्यक्रियः देवालयादि पुण्यस्थले स्वगृहे वा श्वासेन प्राङ्मुख उपविश्य आचम्य प्राणानयम्य। देशकालौ स्मृत्वा अनेक जन्मार्जितानपत्यत्वमृतापत्यत्वादि निदान भूत बालघात निक्षेपहरण विप्ररत्नापहरणादि दुरित समूलनाशाद्वारा दीर्घायुर्बहुपुत्रादि सन्तति प्राप्तिकामो हरिवंशं श्रोष्यामि। तदङ्गत्वेन गणपति पूजनं मातृकापूजनं नान्दीश्राद्धं च करिष्ये॥

इति सङ्कल्प्य गणपति पूजनादि नान्दीश्राद्धान्तं सर्वं कुर्यात्। ततो विप्रमनुज्ञापयेत् श्रुताध्ययन सम्पन्नं ब्राह्मणमासने उदङ्मुख उपवेश्य स्वयं प्राङ्मुख उपविश्य पादप्रक्षालनं कृत्वा गन्धादिभिः सम्पूजयेत्। ततोऽग्रे पुष्पाणि गृहीत्वा देशकालौ संकीर्त्य दीर्घायुष्ट्वादिपुत्र कामनया अमुकगोत्रममुकशर्माणं ब्राह्मणमेभिर्गन्ध पुष्प स्वर्णमुद्रिका सनक मण्डलु ताम्बूल वासोभिर्हरिवंश श्रवणार्थं आचार्यवरं त्वामहं वृणे।

इति वृत्वा "ॐ वृतोऽस्मि" इति प्रतिवचनानन्तरं वस्त्राभूषैः सम्पूज्य पुस्तकं दद्यात्। ततः आचार्यः प्रतिदिनं पुस्तकं सम्पूज्य ॐ नारायणं नमस्कृत्यानन्तं स्वगुरुन्नुरुम्य स्वस्तिपदाक्षरं वाचयेत्।

दम्पती प्रतिदिनं "ॐ देवकी सुत गोविन्द वासुदेव जगत्पते। देहि मे तनयं कृष्ण त्वामहं शरणं गतः॥"

तैल ताम्बूल क्षौर मैथुन स्वयं वा क्षापयति पायसादि वर्जयित्वा हविष्यं भुञ्जीयातम्

वाचकमपि प्रत्यहं पायसादिना भोजयेत्। ग्रंथ समाप्तौ वाचकाय स्वालंकृतां पयस्विनी सवत्सां स्वर्णशृङ्गी रौप्यखुरां ताम्रपृष्ठीं कांस्यपित्तल दोहिनी वस्त्रयुतां स्वर्णाभरणादि दक्षिणां च दत्त्वा पारितोषं न्यूनं सम्पूर्ण वाचयित्वाशतं विप्रान् चतुर्विंशतिमिथुनानि च पायसान्नेन भोजयेत्। एवं कृते पुमो भवति न संदेहः॥इति॥

टीका – पति पत्नी अनुकूल शुभ दिन देखकर नित्य क्रिया करके देवालय अथवा पुण्य-स्थान में अथवा अपने घर में ही, आसन पर पूर्वाभिमुख बैठ कर आचमन तथा प्राणायाम करके संकल्प-वाक्य का उच्चारण करें। संकल्प मूल-पाठ में दिया गया है। तदुपरान्त गणेश-पूजन से लेकर नान्दी श्राद्ध तक सब कृत्य करें। फिर अपनी सामर्थ्यानुसार वेदाध्ययन से सम्पन्न ब्राह्मण को उत्तर-मुख बैठा कर पाद-प्रक्षालन तथा पूजा करें। तत्पश्चात् वरण-द्रव्यों को लेकर हरिवंश पुराण श्रवण का संकल्प लेकर (संकल्प ऊपर मूल में लिखा है) वरण करके "ॐ वृतोऽसि" इस उक्ति के बाद वस्त्रालंकारों से पूजा करके ब्राह्मण को पुस्तक प्रदान करें। फिर पति-पत्नी प्रतिदिन "ॐ देवकी सुत गोविन्द०" आदि – मन्त्र-जप के साथ एकाग्र चित्त हो कर पुराण का श्रवण करें। पुराण-श्रवण की अवधि में तैल, ताम्बूल, क्षौर-कर्म, मैथुन, शय्या-शयन आदि को त्याग कर, हविष्य का भोजन करें। कथा-वाचक को प्रतिदिन खीर आदि का भोजन करायें तथा ग्रंथ-समाप्ति पर उत्तम अलंकारों से युक्त दूध देने वाली गाय दें। उस गाय के सींग सोने से, खुर चाँदी से तथा पीठ ताँबे से मढ़ी हुई हो और उसके साथ बछड़ा भी हो। दूध दुहने के लिए काँसे अथवा पीतल का पात्र देना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त

कथा-वाचक को वस्त्र, स्वर्ण, आभूषणों की दक्षिणा देकर भी प्रसन्न करना चाहिए। कथा सम्पूर्ण होजाने पर १०० ब्राह्मणों तथा २४ पति-पत्नी के जोड़ों को खीर सहित भोजन कराये। ऐसा करने से पुत्र प्राप्त होता है- इसमें सन्देह नहीं है॥ इति हरिवंश पुराण श्रवण विधान॥

अथ वन्ध्यादि लक्षण-प्रयोगानि- अब बन्ध्यात्व, मृतवत्सा एवं काक-वन्ध्या आदि के लिए उपाय कहते हैं-

अथ पुत्र-प्राप्ति प्रयोग- पुत्र-प्राप्ति के लिए निम्न लिखित मन्त्र का जप, आम के वृक्ष पर चढ़ कर, एकाग्रचित्त हो, १००८ की संख्या में जपना चाहिए-

मन्त्र- "ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं पुत्रं कुरु कुरु स्वाहा।"

इस मन्त्र के जप से साधक को पुत्र-लाभ होता है। जब तक गर्भ-स्थिति न हो, तब तक नित्य आम के वृक्ष पर चढ़ कर १०८ की संख्या में जपने से शीघ्र फल मिलता है।

अथ मृतवत्सा लक्षण मन्त्र- अब मृतवत्सा- स्त्री (जिस स्त्री के मरे हुए बच्चे पैदा होते हों) के दोष-निवारण का उपाय बताते हैं। सर्व प्रथम बन्ध्या-स्त्री के लिए पुत्र-प्राप्ति का मन्त्र लिखा जाता है।

विधि- अगले पृष्ठ पर प्रदर्शित यन्त्र को किसी शुभदिन तथा शुभ नक्षत्र में गोरोचन द्वारा भोजपत्र के ऊपर लिखकर, गुग्गुल की धूप दे, फिर इसे सोने अथवा चाँदी के ताबीज में भर कर बन्ध्या स्त्री

म.

के कण्ठ में बाँध दें तो उसे पुत्र की प्राप्ति होती है। यन्त्र का स्वरूप नीचे बाँई ओर प्रदर्शित है।

बाईं ओर से दाईं ओर पढ़ें

४०	४२	४	५
१	३	४८	४३
४६	४७	२	४
२	७	४७	४४

ऊपर से नीचे पढ़ें

इस यन्त्र को शुभ दिन तथा शुभ नक्षत्र में गोरोचन द्वारा भोजपत्र के ऊपर लिखकर, गूगल की धूप दे, सोने अथवा चाँदी में मढ़वा कर स्त्री के कण्ठ में बाँध दे।

जिस स्त्री के लड़का न होता हो अथवा होकर मर जाता हो, उसे यन्त्र के प्रभाव से निश्चित रूप से पुत्र प्राप्त होगा और वह जीवित भी बना रहेगा - इसमें सन्देह नहीं।

इस यन्त्र को अत्यन्त प्रभावकारी समझना चाहिए।

अथ नूतनवत्सा लक्षणम् एवं प्रयोग- गर्भिणी सद्यजातमात्रो वा पक्षे मासे च वत्सरे। त्रिपक्षे द्विसंवत्सरे दिवसे वा नूतनवत्सका ॥१॥ मातृकोष्ठे तथा ज्येष्ठे पूर्णायां लेखिते गृहे। नूतनं कलशं पूर्णं गन्धतोयैश्च कारयेत् ॥२॥ कदलीस्तम्भ संयुक्तं नवरत्न समन्वितम्। सुवर्णमुद्रिका युक्तं षट्कोणस्थित मण्डलम् ॥३॥ तन्मध्ये पूजयेद्देवी मेकान्ते नाम विद्युतम्। गन्धपुष्पाक्षतैर्धूपैर्दीपनैवेद्य संयुतैः ॥४॥ वाराही च तथा चैन्द्री ब्राह्मी माहेश्वरी

तथा। कौमारी वैष्णवी देवी षट्सु यन्त्रेषु मातरः ।। ५ ।। पूजयेन्मन्त्रभावेन तथा सप्तदिनावधि। अष्टमेऽह्नि सुतं चैकं कन्यानवक संयुतम् ।। ६ ।। भोजये द्दक्षिणां दद्यात्प्रणम्योत्थाप्य चोत्सृज्याभिवादनम्। विसृज्य देवतां सर्वा नद्यां तत्कलशादिकम् ।। ७ ।। प्रतिवर्षमिदं कुर्याद्दीर्घजीवी सुतो भवेत्। सिद्धियोगो ह्ययं ह्येषो गोपनीयः प्रयत्नतः ।। ८ ।।

टीका- जिस स्त्री को गर्भ रहते ही गिर जाता है अथवा गर्भ में बालक रवण्डित हो जाता है अथवा बालक जन्म लेते ही मर जाता है अथवा मरा हुआ ही पैदा होता है अथवा बालक दो-तीन वर्ष का होते ही मर जाता है, उसे 'मृतवत्सा' कहते हैं।

दत्तात्रेय तन्त्र में मृतवत्सा दोष-शान्ति का उपाय निम्नानुसार बतलाया गया है—

'मार्गशीर्ष अथवा ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को व्रत लेकर, नया कलश स्थापित करे तथा उसमें चन्दनादि से सुवासित जल भरे। फिर उसके आगे षट्कोण यन्त्र लिखकर, चारों कोने में कोने के रक्खे गाड़ दे। फिर नवरत्नों की बनवाकर पुरुष स्वर्ण की अँगूठी के मध्य भाग में पूर्व-प्रदर्शित यन्त्र को रक्खे, तदुपरान्त एकाग्रचित्त से गन्ध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप तथा नैवेद्य द्वारा आगे लिखी देवियों का अभिन्नभाव से पूजन करे— वाराही, रेणुकी, ज्वाली, माहेश्वरी, कौमारी तथा वैष्णवी। इन मातृकाओं का उक्त यन्त्र के षट्कोण दलों में मन्त्र-जप से सात दिनों तक पूजन करे। आठवें दिन एक कुमारी तथा नौ कुमारियों को भोजन करा कर दक्षिणा दे। तत्पश्चात् उन्हें प्रणाम कर, देवियों का विसर्जन करके कलश को नदी में विसर्जित करे। इस प्रकार प्रतिवर्ष अनुष्ठान करने से दीर्घजीवी पुत्र का जन्म होता है। इस सिद्धि प्रद योग को यन्त्र सहित गुप्त रखना चाहिए। इस यन्त्र तथा विधि का उपयोग करने से धन

निम्न लिखित मन्त्र को १०,००० की संख्या में जप कर सिद्ध कर लेना चाहिए—

मन्त्र: "ॐ परब्रह्म परमात्मने अमुकी गर्भे दीर्घजीवी सुतं कुरु कुरु स्वाहा।"

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकी' शब्द आया है, वहाँ 'मृतवत्सा-स्त्री' के नाम का उच्चारण करना चाहिए।

अथ काक-वन्ध्या लक्षणं-यतनं च - अब 'काक-वन्ध्या' स्त्री के लक्षण तथा उसके दोष-निवारक योग का उल्लेख करते हैं। मतलब के लिये पूर्व निम्न लिखित मन्त्र को १००८ बार जप कर सिद्ध कर लेना चाहिए—

मन्त्र:- "ॐ नमो भगवति पद्मे अमुक गर्भे पुत्रं कुरु कुरु स्वाहा।"

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ अमुक शब्द आया है, वहाँ साधक-स्त्री अथवा उसके पति के नाम का उच्चारण करना चाहिए।

काक-वन्ध्या लक्षणं:- पूर्व पुत्रवती या सा पश्चाद्वन्ध्या भवेच्चादि। काकवन्ध्या तु सा ज्ञेया चिकित्सा तत्र कथ्यते ॥१॥ विष्णुक्रान्ता समूलं च पिष्ट्वा मारीच दुग्धकैः। महिषी नवनीतेन ऋतु-काले च भक्षयेत् ॥२॥ एवं सप्तदिनं कुर्यात्पथ्यमुक्तं च पूर्ववत्। सा गर्भं लभते नारी काकवन्ध्या सुशोभनम् ॥३॥ अश्वगन्धीय मूलं तु ग्राह्यं तुल्यं च भास्करैः। भोजयेन्महिषी क्षीरे पलार्द्धं भक्षयेत्सदा ॥४॥ सप्ताहाल्लभते गर्भं काकवन्ध्या न संशयः। यस्यै कस्यै न दातव्यं नाम्ने वा मम भक्तिम् ॥५॥ अथ तन्त्रसारे-

एकविंशदिनं यावद् दुग्धेन सह सेवयेत्। सेवी तोलकमेकं च खण्डकं तोलकद्वयम् ॥ घृतं तोलकमेकं च पिबेद् दुग्धेन मिश्रितम् ॥ ६॥ मृतवत्सा मृतगर्भा काकबन्ध्या तथैव च। पुत्रहीना च बन्ध्या च पञ्च चैवं प्रकीर्तिताः ॥ ७॥ सहदेव्यर्क दोलांश्च सेवी भक्षणमुत्तमम् ॥ नाड़ी शुद्ध्यां स्त्रियामुपरि ऋतुमिदमौषधं देयम् ॥ ८॥ अथ दत्तात्रेय तन्त्रे – पत्रमेकं पलाशस्य गर्भिणी पयसान्वितम्। ऋतवन्ते तानि पीतानि बन्ध्या भवति गर्भिणी ॥ ९॥ समूलपुष्पां सर्पाक्षीं रविवारे समुद्धरेत्। एकवर्णगवां क्षीरैः कन्या हस्तेन पेषयेत् ॥ १०॥ ऋतुकाले पिबेद् बन्ध्या पलार्धं तद्दिनेदिने। क्षीरमाल्यन्नमुद्गांश्च लघ्वाहारं प्रदापयेत् ॥ एवं सप्तदिने कुर्याद्बन्ध्यापि लभते सुतम् ॥ ११॥ श्वेतायाः कण्टकार्यश्च मूलं तद्वच्च गर्भकृत्। न कर्म कारयेत् किञ्चिद्व्रजेच्चैतीतमानसम् ॥ १२॥ शिफां वह्निं विलापास्तु क्षीरेण परिपेषितम्। पिबेदृतुमती नारी गर्भधारणहेतवे ॥ १३॥ अश्वगन्धाकबाष्पेण सिद्धं दुग्धं घृतान्वितम्। ऋतुस्नाता तु नारी यात्पीत्वा गर्भं दधाति हि ॥ १४॥

अब मन्त्र: – "ॐ नमः सिद्धि रूपाय अमुकी पुत्रं कुरु कुरु स्वाहा।"

टिप्पणी – उक्त मन्त्र में जहाँ अमुक शब्द आया है, वहाँ साधक स्त्री अथवा पुरुष, के नाम का उच्चारण करना चाहिए।

विधि – उक्त मन्त्र को पहले १०० बार जप कर सिद्ध कर ले, तत्पश्चात् पुत्र-दात्री प्रयोगों को करते समय उन्हें १० बार सिद्ध-मन्त्र से अभिमन्त्रित करने के बाद प्रयोग में लाये।

टीका – अब काक बन्ध्या के लक्षण तथा दोष निवारक प्रयोगों तथा प्रयोगों के विषय में लिखा जाता है –

टीका - जो एकबार उत्पन्न होने बाद बन्ध्या हो जाय, उसे 'काकबन्ध्या' कहते हैं। अब उसकी चिकित्सा का उल्लेख किया जाता है -

(१) 'विष्णुक्रान्ता' नामक वनौषधि को जड़ सहित उखाड़ कर भैंस के दूध में पीस म. लेने के उपरान्त, उसे भैंस के दूध के ही मक्खन के साथ सात दिनों तक सेवन करने तथा हल्का भोजन करने से काकबन्ध्या-स्त्री श्रेष्ठ गर्भधारण करती है।(१)

(२) पुष्य नक्षत्र युक्त रविवार को अपामार्ग की जड़ लाकर, भैंस के दूध के साथ नित्य आधा पल की मात्रा में खाते रहने से बन्ध्या-स्त्री गर्भधारण करती है। इस जड़ी का सेवन केवल सात दिनों तक ही करना चाहिए।

उक्त उपयोग के लिए निम्न लिखित मन्त्र को 900 बार जपकर सिद्ध कर लेना चाहिए-

मन्त्र - "ॐ नमो शाकिनी रूपाय अमुक घटे, घुलं घुरु घुरु स्वाहा।"

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुक' शब्द आया है, वहाँ साधक-साधिका के नाम का उच्चारण करना चाहिए।

(३) इक्कीस दिनों तक दूध के साथ मैथी को पिये। मैथी १ तोला, बालछड़ २ तोला तथा घी १ तोला- इन सब को दूध के साथ मिलाकर पीना चाहिए।

(४) मृतवत्सा, मृतगर्भा, काकबन्ध्या, पुत्रहीना तथा बन्ध्या - इस प्रकार पाँच प्रकार की बन्ध्याएँ कही गई हैं। मैथी खाना इन सबके लिए सर्वोत्तम है। स्त्री की नाड़ी बढ़ी होने पर उचित चिकित्सा

त्ति के बाद मट औषध देनी चाहिए (प्रयोग-विधि ऊपर बतादी गई है)।

(४) दत्तात्रेय तन्त्र में 'पलाश पत्र' का एक प्रयोग निम्नानुसार बताया गया है—

पलाश का एक पत्ता गर्भवती-स्त्री के दूध के साथ, ऋतु-स्नान के बाद जीने से वन्ध्या-स्त्री के गर्भ ठहरता है। इस प्रयोग से पूर्व निम्नलिखित मन्त्र १००८ बार जपकर सिद्ध करले—

मन्त्र—"ॐ नमः सिद्धि रूपाय अमुकी पुत्रं कुरु कुरु स्वाहा।"

टिप्पणी—उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुक' शब्द आया है, वहाँ साधक स्त्री/पुरुष के नाम का उच्चारण करना चाहिए।

अब बन्ध्यात्व-दोष-नाशक कुछ चिकित्सा-व्यावहारिक योगों का वर्णन किया जारहा है—

(१) रविवार के दिन 'लक्ष्मणा' नामक बूटी को उखाड़ लावे। फिर उसे एक वर्ष वाली गाय के दूध के साथ कुमारी-कन्या के हाथों से पिसवावे। फिर, ऋतु काल में वन्ध्या-स्त्री को नव दिन आधे-आधे पल की मात्रा में पिलाये तथा रखाने के लिए दूध, शालि-चावल तथा मूँग का लघु-आहार दें। इसका सात दिनों तक प्रयोग करने से वन्ध्या-स्त्री भी गर्भ धारण करती है।

(२) सफेद फूल वाली कण्टकारी (कटेली) का भी पूर्वोक्त विधि से सेवन करना वन्ध्यास्त्री को गर्भ-धारण करने योग्य बनाता है। इन औषधियों का सेवन करते समय वन्ध्या-स्त्री को अधिक ठण्ड तथा अधिक गर्मी से बचाना चाहिए तथा उसे अधिक परिश्रम (श्रम) भी नहीं कराना चाहिए।

(३) मोरपंख के चतुर्थांश भाग को दूध के साथ पीसकर पीने से भी गर्भ-स्थिति होती है।

(४) ऋतु-स्नान के उपरान्त अश्वगन्धा के कोढ़ को दूध में मिला कर घी के साथ प्रातःकाल पीने से बन्ध्या-स्त्री गर्भ धारण करती है।

अथ चेटक-तन्त्र

अब विभिन्न तन्त्र ग्रंथों में वर्णित विविध प्रकार के चेटकों का उल्लेख किया जाता है।

अथ वट-यक्षिणी चेटक- 'काम रत्न तन्त्र' में १६ अक्षरों का मन्त्र इस प्रकार कहा है—

(१) मन्त्र:— "ॐ सुमुखे विघ्नुज्जिह्वे ॐ हुं चेटके जप जप स्वाहा।"

'शिवार्चन चन्द्रिका' में २० अक्षरों वाला मन्त्र इस प्रकार है—

(२) मन्त्र:— "ॐ कार मुखे विघ्नुज्जिह्वे ॐ हुं चेटके जप जप स्वाहा।"

विधानम्- अशोक्तवार जप्त्वा यत्किञ्चित्स्वादु भोजनम्। तद्बलिं दीयते तस्मै वटाधो मायमेकाः। ततो देवी समागत्य हस्ताद् गृह्णाति भोजनम्। तदैव सा वरं दत्त्वा सान्निध्यं कुरुते सदा। अतीता नागतं कर्म स्वस्यास्वस्यं ब्रवीति वा। वर्णतोऽपि मान्यली श्लोकार्धतोऽपि तत्क्षणात्॥

टीका - उक्त मन्त्र १०८ बार जपने से सिद्ध होते हैं। प्रतिदिन १०८ बार मन्त्र-जप करके बरगद-वृक्ष के नीचे एकमास तक घोड़े से सुस्वादु भोजन की बलि दे। एक मास बाद देवी स्वयं प्रकट होकर साधक के हाथ से भोजन ग्रहण करती है तथा धन, अस्थिर के कर्म, स्वास्थ्य, रोग आदि के

सम्बन्ध से सब कुछ बतातीं हैं / वह पर्वत जैसे लोगों को भी तत्क्षण चलायमान कर देती हैं

अथ कर्णवर्त श्मशान यक्षिणी-चेटक - 'प्राकृत ग्रंथ' में कर्णवर्त श्मशान यक्षिणी का मं. नवाक्षर मन्त्र निम्नानुसार बताया गया है -

मन्त्र :- " ॐ क्लीं भगवति स्वो नमः।

विधानम् - श्मशाने नग्नो भूत्वा पञ्चाशत् सहस्रं जपेत्, मध्यभागे भोजनं च कृत्वा ततो देवी प्रसन्ना भवति त्रैकालिकीं वार्तां सर्वां कर्णे कथयति पुष्पफलादिकं ददाति॥

टीका - नग्न होकर, श्मशान में जाकर ५०,००० की संख्या में पूर्वोक्त मन्त्र का जप करके मध्यभाग (प्रयोग के पात्र) में भोजन करने से देवी प्रसन्न होती हैं तथा तीनों कालों की बातें साधक के कान में बताती हैं / वह साधक को पुष्प-फल आदि भी लाकर देती हैं।

अथ करालिनी-चेटक - प्राकृत ग्रंथ के अनुसार करालिनी देवी का मन्त्र इस प्रकार है -

मन्त्र :- " ॐ ह्रूं करिकरालिनी ह्रः ह्रां फट्।"

विधानम् - एक पदेन अष्टोत्तर शतं जपेत्, अजामांस बलिं च दद्यात्, रक्त पुष्पेण पूजयेत् एवं छः छः मासाभ्यन्तरे वरं ददाति॥

टीका - उक्त मन्त्र एक पाँव पर खड़े होकर १०८ बार जपने से सिद्ध होता हैं / जप के

बाद बकरी के मांस की बलि देनी चाहिए तथा लाल रंग के पुष्पों से पूजा करनी चाहिए। इस प्रकार नित्य जप करने से छः मास के भीतर ही देवी वर प्रदान करती हैं।

अथ कालिका चेटक - 'प्राकृत-गुंजा' में कालिका देवी का दर्शनों का मन्त्र इस प्रकार बताया गया है -

मन्त्र :- "ॐ कालिका देवी स्वाहा।"

विधान - गोशालायां द्विलक्षं जपेत्, तद्दशांशतो होमः, एवं कृते मध्यरात्रे वरं ददाति॥

टीका - उक्त मन्त्र को गोशाला में बैठ कर २ लाख की संख्या में जपे, तदुपरान्त दशांश होम करे तो देवी रात्रि के समय वर प्रदान करती हैं।

अथ काली चेटक - 'वीरभद्रोड्डीश तन्त्र' में भगवती कालिका १५ अक्षरों का मन्त्र निम्नानुसार बताया गया है -

मन्त्र :- "ॐ कंकाली महाकाली कैलिकलान्ते स्वाहा।"

विधान - अनेन मन्त्रेण सहस्रमष्टोत्तरं जुहुयात् काली वदो भवति, स्वर्ण पलचतुष्कं प्रतिदिनं ददाति।

टीका - इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए एक हजार आहुतियों का होम करने से

काली कर देती है तथा साधक को प्रतिदिन १ पल सोना प्रदान करती है।

अथ मण्डक युग्म चेटक – अब दो मेंढकों के चेटक का वर्णन करते हैं। 'दत्तात्रेय तन्त्र' के अनुसार यह चेटक की विधि निम्नानुसार है। इसके लिए किसी मन्त्र को सिद्ध करना आवश्यक नहीं है।

विधानम् – मण्डक द्वितयं ग्राह्यमेकानारी परो नरः। क्षितिगर्भ मुखे मध्ये च मुञ्जा स्वर्णस्य दापयेत्॥ १॥ श्मशाने गर्तकुण्डे तु निखनेद् भूतले धुवम्। नार्याः कार्या चिता वामे पुरुषस्य च दक्षिणे॥ २॥ एकादशदिनं यावद् गन्धकं चूर्णमादिशेत्। तद्दिने संगृहीत्वा तु मुद्रिकां ग्राह्य यत्नतः॥ ३॥ नारी संज्ञा मुद्रिका च त्रिलोहे वेष्टितां कुरु। दक्षिणे बाहुमूले च कण्ठस्थाने विशेषतः॥ ४॥ धार्येच्च नरः सत्यं सिद्धयोग उदाहृतः। पुरुष संज्ञा मुद्रिका च संस्कारो दीपने तथा॥ ५॥ व्यापारं तस्य कृत्वा तु पश्चेच्चं सुखमाप्नुयात्। क्षणमात्रे हस्तमध्ये आगच्छति न संशयः॥ ६॥ यावज्जीवं नरः सत्यं यावत्कौतुक कौतुकम्। युग्मसंज्ञस्तथा सत्यं सिद्धयोग उदाहृतः॥ ७॥

टीका – एक नर तथा एक मादा – ऐसे दो मेंढकों को लेकर दोनों के मुँह में सोने की एक-एक अँगूठी डालदें। तदुपरान्त श्मशान में गड्ढा खोद कर, नारी (स्त्री) मेंढकी की चिता बाँई ओर तथा नर मेंढक की चिता दाँई ओर बनायें। ग्यारह दिनों तक उन दोनों को गन्धक तथा चूर्ण दें। ग्यारहवें दिन नारी मेंढक की अँगूठी को यत्नपूर्वक निकाल कर, त्रिलोह के ताबीज आदि में डाल कर, दाँये हाथ के मूल अथवा कंठ में विशेष रूप से धारण करें यह सिद्धयोग है।

फिर नर मेंढक की अँगूठी से व्यापार करें। इस व्यापार में साधक को पश्चेष्ट

लाभ तथा सुख प्राप्त होता है। क्षण भर में ही बिकी हुई मुद्रा पुनः साधक के पास लौट आती है। इस प्रकार जब तक साधक जीवित रहता है, तब तक आश्चर्य पर आश्चर्य घटित होते रहते हैं।

अथ निधि-दर्शन अञ्जन तन्त्र

अथ निधि अर्थात् पृथ्वी में गड़े हुए खजाने को दिखाने वाले अंजनों की विधि का विभिन्न तन्त्र ग्रंथों के आधार पर उल्लेख किया जाता है।

अथ सर्वाञ्जन- (१) रोचनं कुंकुमं शंखं बालमोदा हु चन्दनम्। राजावर्त कुमारी च सौवीराञ्जन पारदम्॥ कट्फलं काङ्गनी चैव सितपद्मक केसरम्। पालकं च घृतं क्षीरं समभागं च पेषयेत्॥ श्मशान तैल मादाय सर्व-मिश्रेत लेपयेत्। तद्वर्तिघृत संपुक्तं प्रज्वाल्य कज्जलं हरेत्॥ सर्वाञ्जन मिदं ख्यातं पाताल निधि दर्शनि॥

टीका- गोरोचन, कुंकुम, शंख, बालमोदा, चन्दन, राजावर्त, घृतकुमारी, सौवीराञ्जन, पारा, कट्फल, साल कांगनी, सफेद कमल की केसर, चिलक, घृत तथा दूध — इन सबको एक साथ पीस कर बत्ती बनाये फिर श्मशान से तैल लाकर, उस बत्ती पर लेप करे, तदुपरान्त उसे घृत के दीपक में डाल कर जलाये तथा काजल पारे। इस अंजन को आँखों में आँजने से पाताल (पृथ्वी के भीतर) में दबी हुई निधि (खजाना) दिखाई देती है।

अथ सिद्धाञ्जन- सफेद पद्म सूत्राणि आनयेदि छुजे रसैः। तद्वर्त्या ज्वालये द्दीप मंकुली तैल संपुतम्॥ गाढं कृष्णं चतुर्दश्यां कज्जलं निधि दर्शकम्। सर्वाञ्जन मिदं सिद्धं प्राप्त देवेन भाषितम्॥

टीका - कमल नाल के तारों को सात बार मिला कर, उसे गन्ने के रस की भावना दे। फिर उसकी बत्ती बना कर अंकुली के तेल में डाल कर दीपक जलाये तथा कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात्रि में काजल पार कर आँखों में लगाये तो साधक को भूगर्भ स्थित निधि को देख पाने की क्षमता प्राप्त होती है। शंभु - देव ने इसे 'सिद्धांजन' कहा है

अथ सर्वज्ञजन (२) - नवनीतं कृष्णसर्पस्य भोजनार्थं तु दापयेत्। तद्विष्ठा वर्तिकां कृत्वा कज्जलं पातयेद् बुधः ॥ सिद्धं सर्वज्ञजनं प्रोक्तमञ्जने निधिदर्शनम्।

टीका - काले कौवे को मक्खन खाने के लिए दे। जब वह खा चुके, तब उसकी बीट की बत्ती बना कर काजल पारे। यह सर्वज्ञजन भी सिद्ध तथा निधियों को दिखाने वाला है।

अथान्य प्रयोगाः - अब अन्य निधि-दर्शक प्रयोगों को कहते हैं—

(१) रक्तपुच्छ स्पं ब्रामण्या रक्त मैन मिला प्लुतम्। पेषयित्वा ञ्जयेत् नरः निधिं पश्यन् भूमि गतम्॥

टीका - लाल पूँछ वाले छिपकली जैसे जीव की लाल पूँछ का रक्त मैन मिला के सिमा का पीसे। फिर उसे अंजन की भाँति आँखों में लगाए तो भूमिगत खजाना दिखाई देता है।

(२) मार्जेन कृष्ण रङ्गा वै सा श्यामां कुक्कुटीं नयेत्। रक्त सा-ञ्जयेत् नेत्रम् निधिं पश्यति भूमिगम्।

टीका - मुर्गी को प्रतिदिन एक मास तक रांगा (सीसा) खिलाते रहें। ऐसा करने से मुर्गी का रंग काला हो जाएगा। तत्पश्चात् उस मुर्गी की चर्बी का आँखों में अञ्जन करने से भूमिगत खजाना दिखाई देता है।

(३) श्वेतगुञ्जारसैः सूत्रं दिनमेकं तु भावयेत्। वाराहदन्तं चूर्णं च सूत्रमध्ये विनिक्षिपेत्। दीपमंकुलतैलेन तद्वर्त्तीं दीपयेत्ततः। सिद्धं सर्वाञ्जनं प्रोक्तमञ्जनान्निधिदर्शनात्॥

टीका - सफेद गुंजा (घुँघची) के रस की सूत में एक दिन तक भावना दे। फिर सुअर के दाँत का चूर्ण सूत के मध्य में डाले। तदुपरान्त उसकी बत्ती बना कर अंकुली के तैल में जला कर काजल पाड़े। इस काजल को आँखों में लगाने से सिद्ध तथा खजाने दिखाई देते हैं।

(४) शरत्काले तु संग्राह्य भूलतां स्वर्णवर्णिकाम्। सिन्दूरं चूर्णितं कृत्वा रविमूलेन वेष्टयेत्॥ अतिकृष्णतिलात्तैलं गृहीत्वैकं शुचेः सुधीः। तैलवर्त्तीं प्रयोगेण काजलं चोत्तारयेत्॥ गृहीत्वा ञ्जनं चक्षुषि तिष्ठेत् पश्यति सर्वतः॥

टीका - शरद् ऋतु में रक्तवर्णी भू-लता का संग्रह कर, उसमें सिन्दूर मिला कर, रवि-मूल से वेष्टित करे। फिर सुधी साधक अत्यधिक काले तिलों से तैल निकलवा कर सुरक्षित रखे। इस तैल तथा बत्ती के योग से उत्तापण सूर्य में काजल पाड़े। इस काजल को आँखों में लगाने से पृथ्वी में गड़ी निधियाँ दिखाई देती हैं।

(४) अतिकृष्णस्य काकस्य जिह्वामांसं समाहरेत्। वेष्टयेद्विल्वेन वर्त्तिं तेनैव कारये-
-त् ॥ अजाघृतेन दीपं च प्रज्वाल्यादाय कज्जलम्। अञ्जनाक्षो नरस्तेन निधिं पश्यति पूर्ववत् ॥

टीका - अत्यधिक काले कौवे की जीभ का मांस लेकर, उसे मदार (आक) की रुई में लपेट कर बत्ती बनाले। फिर बकरी के घी से उस बत्ती को जला कर काजल पाले। उस काजल को आँखों में लगाने से भू-गर्भ स्थित खजाना दिखाई देता है।

(६) शृगालस्याक्षि-चूर्णेन नेत्रयुग्मे तु रञ्जितः। भूतं पश्यत्यभीतस्तु दर्शयेच्च महानिधिम्॥

टीका - सियार की आँखों के चूर्ण का अंजन आँखों में आँजने से पृथ्वी में गड़ा हुआ खजाना दिखाई देता है।

(७) उलूक चक्षुरादाय कुंकुमं रोचनं त्रयी। समांशं मधुना पिष्ट्वा रात्रौ तत्सर्वरञ्जनं चरेत्॥

टीका - उल्लू की आँखें लाकर, उनके साथ समभाग कुंकुम, गोरोचन तथा कपूर मिला कर शहद के साथ पीस कर अंजन बनाले। इस अंजन को आँखों में आँजने से भूगत निधियां दिखाई देती हैं।

(८) अतिकृष्णस्य काकस्य जिह्वा हृन्मांस संयुतम्। घृत पक्वं तु तच्चूर्णं तद्दीपोद्भूत
कज्जलं। अञ्जनाक्षो नरस्तेन निधिं पश्यति साधकः ॥

टीका - अत्यन्त काले कौवे की जीभ तथा उसके हृदय के मांस को घी में पका कर

उसके चूर्ण की बत्ती बनाकर दीपक में जलाये तथा काजल पारे। इस काजल को आँखों में लगाने वाले साधक को सब प्रकार की भूगर्भ स्थित निधियाँ दिखाई देती हैं।

(६) रक्तेत कुकलासस्य गर्भमित्वा मनःशिलाम्। तेन चाञ्जनमेवस्तु निधिपश्यति भूमिगम्॥

टीका - कुकलास के रक्त द्वारा मैनसिल को भावित करके उसका अंजन आँखों में लगाने से साधक को पृथ्वी के गड़े निधियाँ दिखाई देती हैं।

(७) खेतोऽजगमुलूकाण्डे नरस्य जिह्वा निक्षिप्तं दिवसेन। सप्ताहानो मधुघृतेन अञ्जना दीयते निधिम्।

टीका - काले सुअर तथा उल्लू की जीभ को उल्लू के अण्डे में डालकर एक सप्ताह बाद निकालो। फिर उस अंजन को आँखों में लगाने से निधियाँ दिखाई देती हैं।

(८) खद्योतोऽजन सखद्योत मुलूकाण्डे विनिक्षिपेत्। सप्ताहानो मधुघृतेन पातालमधु-नाञ्जयेत्। दिव्यचक्षुः प्रजायते दूरस्थानि च पश्यति॥

टीका - काले सुअर तथा खद्योत (जुगनू) को उल्लू के अण्डे में डालदे। एक सप्ताह बाद उसे निकाल कर, पाताल मधु के साथ आँखों में लगाने से मनुष्य को दूरस्थ वस्तुएं दिखने भी दिखाई देते हैं।

(१२) आश्लेषायां तु कृष्णाहेरन्तर्धूमेन कंचुकम् । दग्ध्वा स्रोतोऽञ्जनेनाक्ष्णि मञ्जनं निधिदर्शकम् ॥

टीका- आश्लेषा नक्षत्र में काले सर्प की केंचुल लाकर उसे अन्तर्धूम-विधि से अग्नि में पकावे । फिर उसकी भस्म तथा काला सुरमा—इन दोनों को मिलाकर पीस ले । इस अञ्जन को आँखों में लगाने वाला साधक पृथ्वी में गड़े हुए खजाने को देख लेता है ।

(१३) हरितालं वचा लोध्रं रेणुका चाञ्जनं तथा । कृष्णपक्षे चतुर्दश्यां चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् । सप्तधा तासु तत्र अधोरेणाथ मन्त्रयेत् । अञ्जनाक्षो नरः पश्येन्निधीन्नानाविधानभुवि ॥

टीका - हरिताल, वचा, लोध, रेणुका तथा काले-अंजन (काला सुरमा) को कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी के दिन पीस कर चूर्ण बनावे । फिर उसे ताँबे की डिबिया में रख कर 'अघोरमन्त्र' से अभिमन्त्रित करे । इस अंजन को आँखों में लगाने वाला मनुष्य अनेक प्रकार की निधियों को देख लेता है ।

(१४) कुंकुमं रोचनं ध्वजेनकाञ्जनं शैव पल्लवाः । सुध्वजेनं च जपापुष्पं तथा वर्षा समं मधु । सर्वञ्जनमिदं ख्यातं पातालनिधिदर्शनम् ॥

टीका - कुंकुम, गोरोचन, सफेद चमेली के पत्ते, कपूर, तगर तथा मधु (शहद) इन सबको समभाग (बराबर-बराबर) लेकर, खोट-पीस कर अंजन तथार करे । इस अंजन को लगाने वाला मनुष्य पातालगत निधियों को देखलेता है । यह प्रसिद्ध अञ्जन है ।

नं. ७३८ म.

(१५) राजार्कं च कर्पूरं रक्तचन्दन मूलिकम्। रोचनं मधु संयुक्तं सर्वेसर्वाञ्जनं परम्॥

टीका - राजार्क, कपूर, लालचन्दन, मूलिका तथा गोरोचन - इन सबको शहद के साथ पीसने से सर्वोत्तम सर्वाञ्जन तय्यार होता है। इसे आँखों में लगाकर भूमिगत निधियों को देखा जा सकता है। म.

(१६) रक्तागस्त्यस्य तैलेन चात्रीमूलं सुपेषितम्। कर्पूरेण युतं चाञ्यं सिद्धं सर्वाञ्जनं परम्॥

टीका - लाल अगस्त्य के तैल में आँवले की जड़ को भलीभाँति पीस कर, उसमें कपूर तथा घृत मिलाये। यह सिद्ध अंजन सब प्रकार की सफलताएँ देता है। यह निधि-दर्शन तथा वशीकरण कारक भी है।

(१७) पुष्यार्के श्वेत गुञ्जाया निधिना मूल माहरेत्। उच्चाट्येण मधुना सर्वाञ्जन मिदं भवेत्।

टीका - पुष्य नक्षत्र वाले रविवार को सफेद घुंघची की जड़ को विधि पूर्वक उखाड़ कर ले आये। फिर उसके साथ उल्लू की आँख को शहद मिला कर पीसे। इस अंजन को आँखों में लगाने से भूमि में गड़ा हुआ धन दिखाई देता है।

= इति द्वितीयः खण्डः समाप्तः =

तन्त्रशास्त्र-प्रशंसा

विष्णुर्वरिष्ठो देवानां ह्रदानामुदधिर्यथा ।
नदीनां च यथा गङ्गा पर्वतानां हिमालयः ॥
तथा समस्त शास्त्राणां तन्त्रशास्त्रमनुत्तमम् ।
सर्वकामप्रदं पुण्यं तन्त्रं वै वेदसम्मतम् ॥

× × ×

गृहस्थस्य क्रियाः सर्वा आगमोक्ताः कलौ शिवे ।
नान्यमार्गैः क्रियासिद्धिः कदापि गृहमेधिनाम् ॥

× × ×

नान्यः पन्था मुक्ति हेतुरिहापुत्र सुखाप्तये ।
यथा तन्त्रोदितो मार्गो मोक्षाय च सुखाय च ॥

× × ×

किं वेदैः किं पुराणैश्च किं शास्त्रैर्बहुभिः शिवे ।
विज्ञाते ऽस्मिन्महातन्त्रे सर्वसिद्धीश्वरो भवेत् ॥

ॐ

इति बृहद् तन्त्र महार्णव

(भाषा-टीका सहित)

द्वितीय खण्डः

समाप्तम्

ॐ

अथ वृहद् तन्त्र महार्णव

(भाषा-टीका सहित)

तृतीय-खण्ड

प्रकीर्ण-विषय एवं लोक-प्रचलित तन्त्र

अथ बृहद् तन्त्र महार्णव (तृतीय खण्ड)

विषय-सूची

क्रमाङ्क		पृष्ठाङ्क
१.	वस्तु-कल्प, दक्षिणावर्त्त शंख-कल्प	२०४
२.	तिलक-तन्त्र	२८१
३.	श्वेतार्क-कल्प	२८४
४.	श्वेतार्क-मूल कल्प	२८६
५.	सहदेवी-कल्प	२२८
६.	रुद्राक्ष-कल्प	२९०
७.	मयूरशिखा-कल्प	३००
८.	बेटडा-कल्प	३०१
९.	निर्गुण्डी-कल्प	३०२
१०.	हाथाजोड़ी-कल्प	३०५
११.	श्वेत लक्ष्मणा-कल्प	३०६
१२.	गोरखमुण्डी-कल्प	३०८
१३.	विजया-कल्प	३०९
१४	गोरोचन-कल्प	३१०
१५	गीदड़सिंगी-कल्प	३१२
१६	काली हल्दी	३१३
१७	पवित्र तथा सौभाग्यवर्द्धक वस्तुएँ	३१५
१८	छुहारा, नागकेसर, कमल	३१५
१९	लौंग, कपूर	३१५
२०	सिन्दूर, नारियल	३१६
२१	नागदमन, पीपल	३१७
२२	बहेड़ा, नक्षत्र-कल्प	३१९
२३	नक्षत्राकुसार बाँदा कल्प	३२२
२४	रुद्राक्ष के औषधीय-प्रयोग	३२५
२५	षट्कर्म वर्णन	३२६
२६	अंगुलि निर्णय, औषध-बलाबल, मूल-ग्रहण विधि	३२८

क्रमाङ्क		पृष्ठाङ्क
२७.	अभिमन्त्रण, नमस्कार, खनन, वन्दा-ग्रहण विधि	३२६
२८.	सर्वजन-वशीकरण प्रयोग	३३०
२९.	राजा-वशीकरण प्रयोग	३३८
३०.	स्त्री-वशीकरण प्रयोग	३३९
३१.	पति-वशीकरण प्रयोग	३४५
३२.	आकर्षण प्रयोग	३४८
३३.	स्तम्भन प्रयोग	३५१
३४	शत्रु-मुख स्तम्भन, निद्रा-स्तम्भन, शस्त्र-स्तंभन प्रयोग	३५१
३५.	अग्नि-स्तम्भन	३५२
३६	मनुष्य-स्तंभन, शत्रु-बुद्धि स्तंभन, चौर-गति स्तंभन	३५२
३७	मुख स्तंभन प्रयोग	३५५
३८	मोहन प्रयोग	३५५
३९	मोहन-मन्त्र, शत्रु-मोहन	३५६
४०	सुख-प्रसव मन्त्र	३५६
४१	ग्रहादि-निवारण नृसिंह मन्त्र	३५७
४२	सर्वारिष्ट नाशन प्रयोग	३५८
४३	उच्चाटन प्रयोग	३५९
४४	मारण प्रयोग	३५९

बृहद् मन्त्र महार्णव (तृतीय खण्ड) की
रति विषयानुक्रमणिका समाप्त

अथ बृहद् नन्द महार्णव (तृतीय खण्ड) आरम्भ

अथ वस्तु- कल्प:

पृथ्वी पर पाई जाने वाली अनेक वस्तुएँ सौभाग्य वृद्धि एवं तान्त्रिक विधियों में उपयोगी मानी गई हैं। तान्त्रिक प्रयोगों में काम आने वाली वनस्पतियों का उल्लेख पिछले प्रकरण में किया जा चुका है। इस प्रकरण में उन वस्तुओं का उल्लेख किया जा रहा है, जिन्हें तान्त्रिक - दृष्टि से धन - धान्य एवं सौभाग्य वर्द्धक माना जाता है।

अथ दक्षिणावर्त - शंख कल्प

सामान्य - शंख बाँई ओर को खुलते हुए (घुमाव वाले) होते हैं, परन्तु यदा-कदा ऐसे दुर्लभ शंख भी मिलते हैं, जिनका घुमाव दाँई ओर को होता है अर्थात् वे दाँई ओर को खुले रहते हैं। ऐसे शंखों को ही 'दक्षिणावर्त' कहा जाता है।

पौराणिक मान्यता है कि एक बार 'शंखचूड़' नामक दैत्य के साथ भगवान् शङ्कर ने युद्ध किया तथा त्रिशूल द्वारा उसे मार डाला तथा उसके अस्थि - पञ्जर को समुद्र में डाल दिया, वही अस्थि - पञ्जर आगे शंख के रूप में उत्पन्न हुआ तथा अपने वंश का विस्तार करने लगा। एक अन्य पौराणिक कथा के अनुसार शंखचूड़ नामक राक्षस वेदों का अपहरण करके ले गया था, तब श्री विष्णु ने मत्स्यावतार लेकर उसका वध किया, तत्पश्चात् उसे मुख - भाग से ही 'पाञ्चजन्य' नामक शंख की समुद्र में उत्पत्ति

हुई, जिसे समुद्र-मंथन के समय चौदह रत्नों के साथ निकाला गया था। समुद्र से निकले हुए उस पाञ्चजन्य नामक दक्षिणावर्त शंख को श्रीविष्णु ने स्थायी रूप से अपनी एक भुजा में स्थान दिया, तभी से श्रीविष्णु शंख, चक्र तथा गदा-पद्म धारीकहे जाते हैं।

जीव-विज्ञान की दृष्टि से शंख जलाशयों में उत्पन्न होने वाला एक कठोर-शरीर वाला जीव है, जो घुंघची से लेकर ४०० वर्ग इंच आकार तक का पाया जाता है। यह नहर, पोखरा, तालाब, बालुकी नदी एवं पानी से गड्ढों के सहारे भी पाया जाता है। इन स्थानों पर पाये जाने वाले शंख छोटे, पतले तथा प्रायः प्रवालवर्ण के होते हैं। बड़ी नदियों के तट पर पाये जाने वाले समुद्र मध्यम आकार के तथा समुद्र में पाये जाने वाले शंख बड़े, मध्यम तथा बहुत बड़े आकार के तथा रूप-रंग में विभिन्न प्रकारों के होते हैं। हमारे देश के दक्षिणी तटवर्ती समुद्र के, रामेश्वरम् तथा कन्याकुमारी क्षेत्र में समुद्री-शंख बहुतायत से पाये जाते हैं। दक्षिणावर्त शंख भी यहीं पर उपलब्ध होते हैं।

शंख घोंघा के समानहीपेट के बल रेंगने वाला एक समुद्री-जीव है, जो पेट के बल रेंगता हुआ चलता है। यह सदैव पानी के भीतर ही रहता है। शंख के रूप में पायी जाने वाली वस्तु उस जीव के शरीर की हड्डी का ऊपरी खोल है। जब शंख नामक जीवित जीव का भीतरी प्राणी मर जाता है तथा उसका मांस सड़ गल कर पानी में घुल जाता है, तब उसके शरीर का रंगीला खोल पानी की लहरों के साथ बह कर जलाशय के तट पर आजाता है, उसी को लोग शंख कहते हैं। स्मरणीय है कि शंख का शरीर खोल रूपी एक ही हड्डी से बना होता है, मनुष्य उसी को पानी से बाहर निकाल कर तथा साफ करके शंख के नाम से बेचते हैं।

गाँठ ओर को घुमाने वाले छोटे शंख माला आदि बनाने, सजावट वाले सामान के रूप में निर्मित होते तथा बड़े शंख देवालयों में पूजा तथा वाद्ययंत्र के काम आते हैं। छोटे शंखों द्वारा विभिन्न प्रकार के खिलौने आदि तथा कोने का उद्योग भी विकसित हुआ है। अस्तु,

देखने, बजाने तथा रूप-रंग में सभी शंख प्रायः एक दूसरे से भिन्न होते हैं। कुछ शंख बजते ही नहीं हैं तो कुछ की ध्वनि बड़ी तीव्र अथवा मधुर होती है। शंख के जिस ऊपरी भाग से फूंक बजाया जाता है, वह मुखाग्र कहा जाता है। उसे देख कर जब छिद्र निकाला जाता है, तभी वह बजने योग्य होता है।

दक्षिणावर्ती शंख की पूजा में अत्यधिक प्रशस्त-वाहक मानी गई है। कहावत है कि जहाँ शंख का निवास होता है, वहीं लक्ष्मी भी निवास करती हैं। शंख तथा लक्ष्मी दोनों ही समुद्र से उत्पन्न हुए हैं अतः के पालक भाई-बहिन हैं और चूंकि विष्णुजी का एक शिष्य आयुध भी है, अतः उस रूप में भी लक्ष्मी जी अत्यन्त स्नेह करती हैं और वह जहाँ भी रहता है, वहाँ सुख पूर्वक निवास करती हैं। अतः प्रत्येक गृहस्थ को अपने घर की पूजा-स्थल में शंख अवश्य रखना चाहिए। यदि वह शंख दक्षिणावर्ती हो, तब तो कहने ही क्या हैं?

पूजा स्थल में रखने वाले शंख ऐसे होने चाहिए, जो कहीं से टूटे-फूटे, चटखे, दरारयुक्त छिद्र अथवा दाग-धब्बे से दूषित एवं पपड़ीदार न हों। उनका सिरा अथवा मुख भी कहीं से भग्न (टूटा हुआ) नहीं होना चाहिए। शंख कई रंगों के होते हैं। श्वेतवर्ण के शंख अधिक पाये जाते हैं। कुछ शंख श्वेतवर्ण लालिमायुक्त अथवा लालधारियों से युक्त, कुछ पीताभ तथा कुछ गुलाबी आभा वाले भी होते हैं। काले रंग के शंख भी पाये जाते हैं, परन्तु उन्हें सज्जनों के लिए त्याज्य तथा शूद्रों एवं तामसी लोगों के लिए ग्राह्य माना गया है।

सभी दक्षिणावर्त शंखों का मुँह (ऊपरी भाग) भी अन्य शंखों की भाँति बन्द रहता है। बन्द मुख वाले शंख गंगाजल आदि भरकर पूजा-कृत्य में प्रयुक्त होते हैं तथा जिन शंखों का मुँह खोल दिया जाता है, वे बजाने के उपयोग में भी आते हैं। परन्तु, दक्षिणावर्ती शंख का मुँह खुला हुआ होने पर भी उसे बजाया नहीं जाता और यदि बजाया जाता है तो उसे पूजा-गृह में केवल बजाने के उद्देश्य से ही रखा जाता है, तथा उसकी पूजा नहीं की जाती। परन्तु जिस दक्षिणावर्ती शंख को बजाया नहीं जाता, उसकी पूजा की जाती है।

दक्षिणावर्ती शंख को फ़र्श के ऊपर (पृथ्वी पर नहीं) रखना चाहिए। इसे लकड़ी की चौकी के ऊपर कपड़ा बिछाकर रखना ही उचित है। वर्तमान समय में मोल लेने के लिए तीन रंगों वाले, लकड़ी के 'फोल्डिंग स्टैण्ड' भी आते हैं। (इनका उपयोग सर्वोत्तम रहता है।) शंख को किसी धातु पात्र (मुख्यतः स्वर्ण, रौप्य अथवा ताम्र द्वारा निर्मित) में रखकर भी देव-प्रतिमाओं के समीप स्थापित किया जा सकता है। यदि घर में देवालय न हो तो इस प्रकार के शंख को आलमारी, तिजोरी आदि के भीतर भी रखा जा सकता है। परन्तु ऐसे शंख किसी भी स्थान पर क्यों न हों, उन्हें प्रतिदिन धूप-दीप, तथा चन्दन-पुष्प चढ़ाना आवश्यक होता है।

दक्षिणावर्ती शंख की प्रशंसा में निम्नानुसार कहा गया है —

शंखस्य चन्द्रार्कदैवत्यं मध्ये वरुणदैवतम्। पृष्ठे प्रजापतिं विद्याद्देवीं गङ्गा सरस्वतीम् ॥१॥ त्रैलोक्ये यानि तीर्थानि वासुदेवस्य चाज्ञया। शंखे तिष्ठन्ति विप्रेन्द्र तस्मात् शंखं प्रपूजयेत् ॥२॥ दर्शनं स्पर्शनं शंखस्य किं पुनः स्थापनेन तु। विलयं यान्ति पापानि हिमवद् भास्करोदये ॥३॥ दक्षिणावर्ते शंखोऽयं

यस्य सद्मनि तिष्ठति। मङ्गलानि प्रवर्तन्ते तस्य लक्ष्मी स्थिरा गृहे॥३॥ काञ्चनीं मेखलां कृत्वा शुचिस्थाने निधापयेत्। शुचिस्तां पूजयेन्नित्यं कुङ्कुमेश्चन्दनैस्तथा॥५॥ दुग्धेन स्थापनीयोऽयं नैवेद्यं स्तोषयेत् सदा। दक्षिणावर्त शंखेऽयं सर्वलक्ष्मी फलप्रद:॥६॥ चन्दनागुरुकर्पूरैः शंखं यो पूजयेद् गृहम्। स सौभाग्यो कुबेरश्च धनदो धन्य:॥७॥

टीका - शङ्ख चन्द्र तथा सूर्य की भाँति देव-स्वरूप है। इसके मध्य भाग में वरुण, पृष्ठभाग में ब्रह्मा तथा अग्रभाग में गंगादेवी का निवास रहता है। विष्णु की आज्ञा से तीनों लोकों के तीर्थ शंख में उपस्थित रहते हैं। अतः हे विष्णु! शंख पूजनीय है। जिस प्रकार सूर्योदय होने पर हिम (बर्फ) पिघल जाती है, उसी प्रकार शंख के दर्शन मात्र से ही सभी पाप नष्ट हो जाते हैं। दक्षिणावर्त शंख जिस घर में रहता है, वहाँ सदैव मंगल बने रहते हैं तथा लक्ष्मी स्थिर बनी रहती है। दक्षिणावर्त शंख को सोने (स्वर्ण) की मेखला बना कर किसी पवित्र स्थान में रखना चाहिए तथा अक्षत, कुंकुम, चन्दन आदि से उसकी पूजा करनी चाहिए। इसमें नित्य दूध भर कर रखना चाहिए तथा नैवेद्य चढ़ाकर प्रसन्न करना चाहिए। दक्षिणावर्त शंख सब प्रकार की सम्पत्तियाँ देने वाला है। जो व्यक्ति चन्दन, अगुरु तथा कपूर आदि से इस शंख की पूजा करता है, वह कृष्ण के समान सौभाग्यशाली तथा कुबेर के समान धनी होता है॥१-७॥

पूजा-मन्त्र - दक्षिणावर्त शंख के पूजा-मन्त्र निम्न लिखित हैं—

(१) "ॐ ह्रीं क्लीं ब्लूं सुदक्षिणावर्त शंखाय नमः।"

विधि - यह मन्त्र अधिक से अधिक जपना चाहिए तथा जप करने के

पूर्व चन्दन, अगुरु तथा कपूर से शंख की पूजा करनी चाहिए।

फल - उक्त मन्त्र जाप दिन के प्रथम पहर में दक्षिणावर्ती शंख की पूजा करने से राज-सम्मान प्राप्त होता है। दूसरे पहर में पूजा करने से श्री-वृद्धि होती है। तीसरे पहर में जप-पूजन करने से यश तथा कीर्ति की वृद्धि होती है। चौथे पहर में करने से सन्तान-वृद्धि होती है। इस शंख की चन्दन आदि पूजा करने के उपरान्त यदि एक ऐसी काली कपिला गाय के दूध से शंख को स्नान कराया जाय तथा वह शंख-स्नान वाला दूध किसी बाँझ-स्त्री को पिलाया जाय तो उसे पुत्र की प्राप्ति होती है।

(१) "ॐ श्रीं श्रीधरकरस्थाय पयोनिधये जाताय लक्ष्मीसहोदराय चिन्तितार्थप्रदाय श्रीदक्षिणावर्तशंखाय ह्रीं श्रीं श्रीकराय पूज्याय नमः।"

(२) "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्लूं दक्षिणमुखाय शङ्खनिधिये समुद्भवाय नमः।"

टिप्पणी - उक्त दोनों मन्त्रों का एक मास तक जप (नित्य १०८ बार) करते रहने से अभीष्ट-सिद्धि प्राप्त होती है।

दक्षिणावर्ती शंख के साथ जप के अन्य मन्त्र निम्नानुसार हैं—

(१) "ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्लूं श्रीदक्षिणावर्तशंखाय भगवते त्रिभुवनाय सर्वयोगीश्वराय त्रैलोक्यनाथाय सर्वकाम प्रदाय सर्व ऋद्धि सिद्धि समृद्धि वाञ्छितार्थ सिद्धि प्रदाय नमः।

(२) ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं क्लूं वं महालक्ष्मी मम वाञ्छितार्थसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा।"

उक्त मन्त्रों का उच्चारण करते हुए गंध, कर्पूर, पुष्प आदि द्रव्यों से शंख का पूजन करे।

स्तुति मन्त्र - दक्षिणावर्ती शंख की स्तुति (प्रार्थना) करने का मन्त्र निम्नलिखित है -

"नमामि सकलार्थ कृतिसिद्धिदं च सुश्वेत वर्ण कमला सहोदरम् । श्रीरोदपुत्र मनसोऽधिवासकं राज्यार्थ सन्तान फलप्रदं भजे ॥ १ ॥ कल्याणकारी दुरितापहारी मनोऽभिचारी धनलिप्तनारी । श्री दक्षिणार्क सुखसम्पनाथ मनोरथं पूरय मे समग्रम् ॥ २ ॥"

ध्यान मन्त्र - "ॐ सर्वभीष्ट भूमिनाथ प्रसाद्यांगोपांग संयुताय कल्पवृक्षाधः स्थिताय कामधेनु चिन्तामणि नवनिधिदेवाय चतुर्दशरत्न परिवृत्ताय महासिद्धि सहिताय लक्ष्मी देवनाथ सहिताय कृष्ण देवताकर लालिताय श्री शंखे महाशंखाय नमः ।"

प्रतिष्ठा मन्त्र - "ॐ सर्वलोकवशाय सर्वाभिष्ट फलप्रदाय सर्वारिष्ट दुष्ट कष्ट निवारणाय कामितार्थप्रदाय शंखेश्वराधिष्ठायकाय मां कुरु श्रीं क्लीं श्रीं ब्लूं क्रौं नमः स्वाहा ।"

जप मन्त्र - "ॐ ह्रीं श्रीं ब्लूं शीघ्र करस्थाय पद्मे तिष्ठि जलाय श्रीकाय जल पूजनाधि देवाधिष्ठिताय क्लीं श्रीं श्रीं नमः ॥"

पूजा मन्त्र - "ॐ आगतऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः तमीमहे गणपम् । त्वमुदा सागरोत्पन्नो विष्णुना विधृतः करे । निर्मितः सर्वदेवैश्च पाञ्चजन्य नमोऽस्तुते ।"

उक्त मन्त्रों से दक्षिणावर्ती शंख का पूजन, स्तुति, प्रतिष्ठा, जप, ध्यान आदि करने से साधक की समस्त कामनाएँ पूर्ण होती हैं । निर्धन को धन, रोगी को आरोग्य तथा दुःखी व्यक्ति को सुख प्राप्त होता है ॥ इति दक्षिणावर्ती शंख कल्प ॥

अथ तिलक तन्त्र

तन्त्रशास्त्रों में विभिन्न कामनाओं की पूर्ति हेतु विभिन्न वस्तुओं के तिलक लगाने का उल्लेख पाया जाता है। यहाँ पर उन्हीं का उल्लेख किया जाता है।

" श्वेतार्की मूले सिन्दूरं पेषयेत् कदली रसे। अनेनैव तु मन्त्रेण तिलकं लोक मोहनम् ॥१॥ पेषयेत्तुलसी बीजं सहदेव्या रसेन च। रवौ या तिलकं कुर्यात् मोहयेत् सकलं जगत् ॥२॥ सिन्दूरं च श्वेत वचः ताम्बूल रस पेषितम्। अनेनैव तु मन्त्रेण तिलकं लोक मोहनम् ॥३॥ बिल्वपत्रं गृहीत्वा तु छायाशुष्कन्तु कारयेत्। कपिला पयसा युक्तं वर्ती कृत्वा तु गोलकम्। एभिस्तु तिलकं कृत्वा मोहयेत् सर्वतो जगत् ॥४॥ श्वेतार्कचन्दन संयुक्तं वचाकुष्ठ समन्वितम्। धूपं दत्वा तथा वस्त्रे सुरवे दत्वात् विशोधनः ॥५॥ पशुपक्षि मनुष्याणां च राज्ञां मोहनकारकम्। ताम्बूलमूल तिलकं लोकमोहन कारकम् ॥६॥ श्वेतगुञ्जा दले: पेष्यं श्वेतदण्डस्य च मूलकम्। लेपमात्रं बाहौ तु मोहयेत् सर्वतो जगत् ॥७॥ सिन्दूरं च श्वेतवचां ताम्बूलरस पेषितम्। अनेनैव तु मन्त्रेण तिलकं लोक मोहनम् ॥८॥ श्वेतदूर्वां गृहीत्वा तु हरितालं च पेषयेत्। कृते तु तिलके भाले दर्शनात् मोहकारकम् ॥९॥ अपामार्गो भृंगराजो लाजा च सहदेविका। एभिस्तु तिलकं कृत्वा त्रैलोक्यं मोहयेन्नरः ॥१०॥ सहदेव्या रसेनैव तुलसी बीज चूर्णकम्। रवौ यस्तिलकं कुर्यात् मोहयेत् सकलं जगत् ॥११॥ हरितालं चाश्वमर्गं च पेषयेत् कदली रसे। गोरोचन समायुक्तं तिलकं लोक मोहनम् ॥१२॥ मनः शिलां च कर्पूरं पेषयेत् कदली रसे। तिलकं मोहनं नृणां नान्यथा भाषितं मया ॥१३॥

टीका- (१) सफेद आक की जड़ तथा सिन्दूर को केले के रस में पीस का तिलक लगाने वाला व्यक्ति सब लोगों को मोहित कर लेता है।

(२) सहदेवी के रस में तुलसी के बीजों को पीस कर, रविवार के दिन तिलक करने वाला व्यक्ति सम्पूर्ण संसार को मोहित कर लेता है।

(३) सिन्दूर तथा सफेद बच को पान के रस में पीस का तिलक लगाने वाला व्यक्ति लोगों को मोहित कर लेता है।

(४) बेल के पत्तों (बिल्वपत्र) को लेकर छाया में सुखाए। फिर उन्हें काली गाय के दूध में पीस कर गोली बनाले। जो मनुष्य इस गोली को घिस कर अपने मस्तक पर तिलक करता है, वह सब लोगों को मोहित कर लेता है।

(५) श्रृंगी (काकड़ा सिंगी), चन्दन, वच और सूठ - इनको मिलाकर धूप जलाए और उस धूप को अपने शरीर, मुख तथा वस्त्रों पर दे। साथ ही इन्हीं वस्तुओं को पान के रस में पीस कर अपने मस्तक पर तिलक भी लगाले तो पशु-पक्षी, राजा-प्रजा आदि सभी मोहित हो जाते हैं।

(६) सफेद घुंघची के रस में ब्रह्मदण्डी की जड़ को पीस कर, उनका शरीर पर लेप करने से तीनों लोक मोहित हो जाते हैं।

(७) सिन्दूर तथा सफेद वच - इन दोनों को पान के रस में पीस कर

तिलक करने से संसार मोहित हो जाता है।

(८) सफेद दूर्वा को हीताल के साथ पीस कर मस्तक पर तिलक लगाये तो उसे देखते ही लोग मोहित हो जाते हैं।

(९) अपामार्ग, भाँगरा, लाजवन्ती और सहदेई - इन सबको पीस कर तिलक लगाने वाला मनुष्य तीनों लोकों को मोहित कर लेता है।

(१०) सहदेई के रस में तुलसी के बीजों का चूर्ण पीस कर रविवार के दिन तिलक लगाने वाला व्यक्ति सम्पूर्ण संसार को मोहित कर लेता है।

(११) हीताल और असगंध को केले के रस में पीस कर, गोरोचन भी मिलाये। फिर उसका तिलक करने से सब लोग मोहित हो जाते हैं।

(१२) मैनसिल तथा कपूर को केले के रस में पीस कर तिलक करने से लोग मोहित होते हैं - इसमें सन्देह नहीं है।

उक्त तिलक प्रयोगों को निम्नलिखित मन्त्र से अभिमन्त्रित करना आवश्यक है। मन्त्र इस प्रकार है —

मन्त्र "ॐ नमो भगवते उड्डामरेश्वराय मोहय मोहय मिलि मिलि ठः ठः।"

विधि - यह मन्त्र १०,००० की संख्या में जपने से सिद्ध होता है। मन्त्र-जप पूरा हो जाने पर जप का दशांश होम, होम का दशांश तर्पण, तर्पण का दशांश मार्जन तथा उसका दशांश ब्राह्मण-भोजन करना चाहिए॥

अर्क श्वेतार्क कल्प

'अर्क' को बोलचाल की भाषा में आक, अकौआ तथा मदार कहते हैं। यह ऐसा पौधा है, जो छोटे जिस स्थान पर स्वतः ही उग आता है। ऊसर-बंजर ज़मीन में भी आक के पौधे हरे-भरे खड़े रहते हैं। इन्हें नियमित जल-सिंचन आदि की कोई आवश्यकता नहीं होती। आक का पौधा सामान्यतः २ से ४ फीट की ऊँचाई वाला होता है, परन्तु पुराने पौधे इससे भी अधिक ऊँचाई के पाये जाते हैं। इसके पत्ते बरगद के पत्तों से मिलते-जुलते हैं। जड़ मोटी होती है तथा तना, शाखा एवं पत्ते किसी को भी तोड़ने पर उसमें से दूध जैसा पतला तथा विषैला पदार्थ निकलता है। पत्तों का रंग हल्का हरा होता है। फूलने अथवा पकने पर ये पीले हो जाते हैं।

आक के पौधे दो प्रकार के होते हैं। पहले वे—जिन पर बैंगनी रंग के फूल लगते हैं और दूसरे वे जिनमें सफेद रंग वाले फूलों के गुच्छे लगते हैं। आक के फूल छोटे-छोटे तथा गुच्छों में लगने वाले होते हैं। बैंगनी रंग के फूलों वाले आक के पौधे सर्वत्र पाये जाते हैं, परन्तु श्वेत रंग के फूलों वाले कम ही देखने को मिलते हैं। किसी उद्देश्य विशेष से नहीं कहा जा सकता। कोटा तथा राजस्थान के अन्य क्षेत्रों में श्वेत रंग के फूलों वाले आक के पौधे, जिन्हें 'श्वेतार्क' कहा जाता है, प्रचुर मात्रा में पाये जाते हैं।

बैंगनी रंग के फूलों वाले आक का कोई तान्त्रिक उपयोग नहीं है। केवल चिकित्सा कार्य में ही उनके फूल-पत्ते-पंचांग आदि का उपयोग किया जाता है। परन्तु श्वेतार्क का उपयोग तान्त्रिक कार्यों में होता है।

श्वेतार्क के पुराने पौधों की जड़ें काफी मोटी होजाती हैं और उनमें से कोई कोई श्रीगणेशजी की सूँड़ नुमा मुँह जैसा आकार ग्रहण कर लेती हैं। ऐसी जड़ों को खोद कर बाहर निकाल लिया जाता है तथा उन्हें साफ करके पूजा में रखा जाता है। ऐसी प्राकृतिक जड़ों को 'श्वेतार्क गणपति' कहा जाता है। परन्तु यदि श्वेतार्क की कोई जड़ मूलरूप में गणेशजी के आकार की न हो तो ऐसे श्वेतार्क की मोटी जड़ को खोद कर बाहर निकालने के बाद छील-छाल कर गणेशजी के मुख का स्वरूप देदिया जाता है, ऐसे मनुष्य द्वारा श्वेतार्क की जड़ से निर्मित गणेश की मूर्ति भी तान्त्रिक-प्रयोगों के काम आती है

ऐसी मान्यता है कि श्वेतार्क की जड़ में गणेशजी निवास करते हैं, इसी कारण श्वेतार्क-गणपति की उपासना का तन्त्र-शास्त्र में विशेष महत्व है। श्वेतार्क गणपति की उपलब्धि हेतु किसी शुभमुहूर्त में, विशेषतः पुष्य नक्षत्र वाले रविवार के दिन 'पुष्यार्क' योग में श्वेतार्क की जड़ को प्रातः काल खोद कर लाना चाहिए। यदि उसकी जड़ प्राकृतिक रूप से ही गणेशजी सूँड़ के आकार वाली हो, तब तो कोई बात ही नहीं, परन्तु यदि ऐसी न हो तो उस पुष्ट जड़ के मध्यभाग वाले मोटे हिस्से को साफ करके, उसे चाकू द्वारा छील कर गणेश-मुख का आकार देदेना चाहिए। जब मूर्ति तय्यार होजाय, तब उसे शुद्ध-जल से धोकर किसी नवीनवस्त्र बिछी चौकी पर स्थापित करदेना चाहिए। वस्त्र लाल रंग का होना चाहिए। चौथे की जड़ को उखाड़ते, धो लेते, स्वच्छ करते, गणेश का रूप देते तथा उसे चौकी पर स्थापित करते समय निरन्तर गणेशजी के मन्त्र "ॐ गणानां त्वा ०" अथवा किसी अन्य मन्त्र का उच्चारण करते रहना चाहिए। यदि मन्त्रोच्चारण करना सम्भव न हो तो केवल 'श्रीगणेशाय नमः' ही करते रहें।

श्वेतार्कगणपतिमूल:- प्रतिमा को चौकी पर स्थापित करने के बाद जल, लालचन्दन, सिन्दूर, लाल रंग के पुष्प, अक्षत, धूप, दीप, नैवेद्य, फल तथा दक्षिणा आदि से पूजन करें। स्मरणीय है कि गणेश-पूजा में तुलसी का प्रयोग वर्जित है। श्वेतार्क गणपति की पूजा में लाल कनेर-पुष्पों का प्रयोग प्रशस्त माना गया है। गणपति पूजा के मन्त्र निम्न लिखित हैं —

(१) ॐ गणेशाय नमः।
(२) ॐ गं गणपतये नमः।
(३) ॐ अन्तरिक्षाय स्वाहा।
(४) ॐ गं गणपतये नमः।

उक्तमन्त्र क्रमशः एक-एक लाख की संख्या में जपने से सिद्ध हो जाते हैं। मन्त्र-जप पूर्ण होने पर "ॐ ह्रीं पूर्वदिशां ॐ ह्रीं फट् स्वाहा" — इस मन्त्र से १२५०० की संख्या में लाल कनेर के पुष्पों से हवन करना चाहिए। इस प्रकार मन्त्र-सिद्धि की पूर्णता प्राप्त हो जाती है। मन्त्र-जप तथा होम के समय हविष्यान्न भोजन करते हुए, ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। इस प्रकार मन्त्र सिद्ध कर लेने वाला साधक श्रीगणपति की कृपा से सभी मानसिक, आर्थिक, शारीरिक तथा आत्मिक कामनाएँ पूर्ण होती हैं।

अथ श्वेतार्क मूल कल्प

'श्वेतार्क गणपति' की साधना से संबंधित प्रयोगों (साधना-विधि) का वर्णन किया जा चुका है, अब श्वेतार्क-मूल (सफेद आक की जड़) से संबंधित प्रयोगों के विषय में बताते हैं —

(१) श्वेतार्क फूल का पूजन करके उसे छाया में रखकर सुखा लें। सूखने पर उसे फूटकर चूर्ण बनालें तथा कपड़छन करके रखलें। तत्पश्चात इस चूर्ण का ३ माशे की मात्रा में प्रतिदिन प्रातःकाल एक पाव गाय के ताजा दूध के साथ सेवन करें। इस प्रयोग को किसी रविवार के दिन से प्रारम्भ करना चाहिए। केवल एक सप्ताह तक ही इसका सेवन करना उचित है, अधिक नहीं। इस चूर्ण के सेवन से बल-वीर्य तथा शक्ति की वृद्धि होती है।

(२) श्वेतार्क फूल को गोरोचन तथा घृत के साथ पत्थर पर पीस कर, उसे गणेश-मंत्र से अभिमन्त्रित कर ललाट पर तिलक लगाने से साधक सब लोगों को मोहित कर लेता है।

(३) श्वेतार्क-फूल के टुकड़े को किसी नपुंसक के टुकड़े के लपेट कर, अपनी कमर में बाँधने तत्पश्चात सहवास में प्रवृत्त होने से वह तत्काल स्तम्भन होता है।

(४) श्वेतार्क-फूल के टुकड़े को दाँई भुजा अथवा कण्ठ में धारण करने से शरीर सुरक्षित बना रहता है।

(५) श्वेतार्क-फूल की जड़ को कमर में बाँधने से वन्ध्या-स्त्री को पुत्र प्राप्त होता है।

नं. ८२८ म.

सहदेवी-कल्प

'सहदेवी' अथवा 'सहदेई' नामक पौधा छोटे आकार का होता है। यह औषधियों में तो प्रयुक्त होता ही है, परन्तु इसका तान्त्रिक महत्व भी है। यह पौधा अभीष्ट-सिद्धि दायक माना जाता है।

विधि- जिस स्थान पर सहदेई का पौधा हो, वहाँ शनिवार को संध्या में जाएँ और उस पौधे का तथा एक सुपारी रख कर लौट आएँ और यह कहें कि हे देवी! अपनी अभीष्ट-सिद्धि हेतु कल प्रातः काल में पुनः यहाँ आकर आपको अपने घर ले जाऊँगा।' यह कह कर अपने घर लौट आएँ। दूसरे दिन अर्थात् रविवार को प्रातःकाल पुनः उस स्थान पर जाकर, पौधे को एक फल समर्पित करें तथा निम्नलिखित मन्त्र का २१ बार उच्चारण करें—

मन्त्र- "ॐ नमो भगवती सहदेवी सहबल दायिनी सहदेवन् कुरु कुरु स्वाहा।"

उक्त मन्त्र से पौधे को अभिमन्त्रित करने के बाद उखाड़ कर अपने घर ले आएँ तथा एक चौकी पर स्थापित करके धूप, दीप, गंध, अक्षत, पुष्प आदि षोडशोपचारों से पूजा करें। फिर, प्रणाम तथा इच्छित-कामना पूर्णकरने की प्रार्थना के बाद उसका रस निकाल लें। उस रस में केसर, चन्दन तथा कोई ठण्डा पदार्थ मिला कर छोटे तथा गाढ़े लेप होने पर उसकी गोली बना, दीपक में सुखा कर रख लें। फिर जब कभी आवश्यकता हो, उस समय उस गोली को घिस कर अपने मस्तक पर तिलक लगाएँ तथा साधक व्यक्ति के पास पहुँच कर वार्तालाप करें तो वह आकर्षित होता है तथा उसके माध्यम से सम्पन्न होने वाला कार्य अवश्य पूरा होता है। सहदेवी के अन्य प्रयोग निम्नानुसार हैं—

(१) प्रसव के समय अधिक कष्ट होने पर सहदेई की जड़ को गर्भिणी की कमर में बाँध देने से प्रसव सुख पूर्वक हो जाता है।

(२) सहदेई की जड़ को चूस कर का हाथ में बाँधने से विविध रोग दूर होते हैं।

(३) सहदेई के चूर्ण को गाय के घी में मिलाकर सेवन करने से बन्ध्या-स्त्री को भी पुत्र की प्राप्ति होती है।

(४) सहदेई की जड़ को हाथ में बाँध कर न्यायालय में जाने से मुकद्दमे में विजय मिलती है।

(५) सहदेई की जड़ को लाल रंग के कपड़े में लपेट कर तिजोरी अथवा अन्नभण्डार आदि में रखने से धन तथा अन्न आदि की वृद्धि होती है।

(६) बालकों के कण्ठ में सहदेई की जड़ को किसी ताबीज में भर कर बाँध देने से उनका कण्ठमाला रोग दूर हो जाता है।

(७) सहदेई के पञ्चाङ्ग को पीस कर उसका मस्तक पर तिलक लगाने से मान-सम्मान, यश तथा प्रभाव की वृद्धि होती है।

(८) सहदेई के पञ्चाङ्ग का चूर्ण पान में रख कर जिस अभीष्ट-व्यक्ति को खिलाया जाय, वह वशीभूत हो जाता है।

(९) सहदेई की जड़ को गंगाजल में घिस कर, अंजन की भाँति आँखों में लगाने से सम्मोहन शक्ति प्राप्त होती है।

अथ रुद्राक्ष-कल्प

'रुद्राक्ष' का अर्थ है - 'शिव की आँख' अर्थात रुद्राक्ष को शिवजी की आँख का प्रतीक माना जाता है। रुद्राक्ष एक वृक्ष का फल है, जो आकार में गोल तथा कड़े गूदेवाला होता है। इसका गूदा बीज पर इस प्रकार चिपका रहता है कि उसे अलग नहीं किया जासकता। सूखने पर रुद्राक्ष के फल स्वतः ही वृक्ष की टहनियों से गिर जाते हैं। उन्हें इकट्ठा करने के बाद कई दिनों तक पानी में भिंगोकर रखा जाता है। फलतः गूदा फूल कर अलग होजाता है, तत्पश्चात बीजों को 'रुद्राक्ष' नाम से प्रयोग में लाया जाता है। रुद्राक्ष के वृक्ष नेपाल तथा भारत के पर्वतीय क्षेत्र में अधिक पाये जाते हैं।

रुद्राक्ष के फल छोटे, बड़े कई आकार के होते हैं। रुद्राक्ष के बड़े फल सस्ते मूल्य में मिलते हैं तथा छोटे फल, जितने छोटे दाने होते हैं, उतने ही अधिक मूल्यवान होते हैं। रुद्राक्ष का प्रयोग तान्त्रिक साधनों में तो होता ही है, अनेक प्रकार के रोगों में भी यह लाभदायक है। सब प्रकार की मालाओं में रुद्राक्ष के दानों की माला सबसे पवित्र तथा श्रेष्ठ मानी जाती है। रुद्राक्ष की माला पर किसी भी मन्त्र का जप किया जासकता है और वह सर्वश्रेष्ठ फलदायक होता है। तान्त्रिक-प्रयोगों में जहाँ अन्य कोई माला उपलब्ध न हो, वहाँ रुद्राक्ष की माला प्रयोग में लाने का ही उपदेश किया गया है। रुद्राक्ष के छोटे दाने अंजीरी के बीज के समान तथा बड़े दाने जामुन के आकार वाले पाये जाते हैं। अन्य फलों की भाँति रुद्राक्ष के विभिन्न आकार वाले दानों के वृक्ष भी अलग-अलग होते हैं। छोटे, मध्यम, बड़े तथा इनके बीच के आकार वाले फल अपनी-अपनी किस्म वाले वृक्षों पर ही लगते हैं। एक ही वृक्ष पर कई आकार के फल नहीं लगते

रुद्राक्ष के फलों पर अनेक धारियाँ होती हैं, जो उन्हें विभिन्न वर्गों में बाँटती हैं। इन धारियों को 'मुख' की संज्ञा दी जाती है (यथा – एकधारी वाला रुद्राक्ष – एकमुखी, चार धारियों वाला चतुर्मुखी आदि)। रुद्राक्ष एक से चौदह धारियों तक के अर्थात् एकमुखी से लेकर चतुर्दशमुखी तक होते हैं। एकमुखी तथा दोमुखी रुद्राक्ष बहुत कम पाये जाते हैं। एकमुखी रुद्राक्ष को तो दुर्लभ ही माना जाता है। (पट करोड़ों रुद्राक्षों के कहीं एक मिलता है, अतः इसका मूल्य भी अधिक होता है। एकमुखी रुद्राक्ष को साक्षात् शिवरूप तथा परमकल्याणकारी, धनवर्धक तथा अभीष्ट-फलदायक माना जाता है। इसको हजारों रुपयों में बेचा जाता है। एकमुखी रुद्राक्ष दुर्लभ होने के कारण 'नकली एकमुखी' रुद्राक्ष भी बाजार में मिलते हैं, परन्तु वे यथार्थ में अनुपयोगी ही होते हैं। ऐसे रुद्राक्ष में, जो असली हो, केवल एक रेखा खड़ी रहती है। दोमुखी रुद्राक्ष भी कम ही मिलते हैं। तीन से लेकर छः-सात मुखी रुद्राक्ष बहुतायत से प्राप्त होते हैं, तदुपरान्त आठ मुखी से चौदहमुखी रुद्राक्ष भी क्रमशः एक दूसरे के कम संख्या में उपलब्ध होते हैं अतः उनका मूल्य भी अधिक होता है। वैसे २१ मुखी रुद्राक्ष तक का उल्लेख भी पाया जाता है।

रुद्राक्ष के जो फल पूरी तरह पके हुए होते हैं, वे ही शिव माने जाते हैं। कच्चे फलों में कीड़ा शीघ्र लगजाता है और वे जल्दी ही खराब होजाते हैं। उनका प्रयोग भी निष्फल रहता है। रुद्राक्ष के शेष दानों की परीक्षा पानी में डालकर की जाती है। एक बड़े बर्तन में पानी भरकर, उसमें रुद्राक्ष के दानों को डालदे। अच्छे तथा पके हुए रुद्राक्ष पानी के तल में बैठ जाते हैं तथा हल्के तथा कच्चे, घुने रुद्राक्ष के दाने पानी के ऊपर तैरने लगते हैं। घुने, कटे, टूटे, आधा-तीन, पूरी तरह चिकने

तथा सहित रुद्राक्ष अग्राह्य होते हैं। ताँबे के दो टुकड़ों के बीच में रखने से असली रुद्राक्ष का दाना घूमने लगता है। यह भी असली-नकली रुद्राक्ष की पहिचान करने का एक तरीका है। रुद्राक्ष हमेशा नया ही खरीदना चाहिए, परन्तु यदि कभी कोई दुर्लभ जाति का (एकमुखी, छिमुखी, चतुर्दशमुखी आदि) रुद्राक्ष किसी अन्य व्यक्ति से खरीदना या लेना पड़े तो उसकी शुद्धता की परीक्षा कर लेनी चाहिए। अन्य व्यक्ति से लिए गए हुए रुद्राक्ष को, यदि वह शुद्ध हो तो, २४ घण्टे तक गंगाजल में डाल कर रखना चाहिए, तदुपरान्त भली भाँति धो-पोंछ कर तथा धूप आदि देने के बाद ही प्रयोग में लाना चाहिए।

पके हुए फलों के बीज को 'रुद्राक्ष' तथा कच्चे फलों के बीज को 'भद्राक्ष' कहा जाता है। रूपाकार में रुद्राक्ष के समान होता हुआ भी भद्राक्ष प्रयोजनीय नहीं होता। पूजा-सामग्री बेचने वाले लोग 'गौरी शंकर' नामक एक ऐसा दाना भी बेचते हैं, जिसके दो दाने परस्पर जुड़े हुए दिखाई देते हैं तथा 'एकमुखी इलाहाबादी रुद्राक्ष' नाम से भी एक किस्म का रुद्राक्ष बेचा जाता है, परन्तु ये दोनों ही किस्म के दाने अनुपयोगी होते हैं, अतः इन्हें प्रयोग में नहीं लाना चाहिए।

रुद्राक्ष के विभिन्न मुखों वाले दानों के नाम, उनके देवता तथा मन्त्र निम्नानुसार हैं—

(१) एकमुखी रुद्राक्ष— इसे शिवस्वरूप माना जाता है। इसके देवता भगवान 'शिव' हैं। यह अत्यन्त सौभाग्य दायक होता है। इसकी तुलना संसार के किसी भी सौभाग्यप्रद अन्य वस्तु से नहीं की जा सकती। इसके धारण करने से प्रसन्नता जैसे पास ही नष्ट हो जाते हैं, अन्यों का तो कहना ही क्या है? इसे धारण करने

म.

वाले को कोई कष्ट नहीं होता तथा सर्वत्र विजय उसको होती है। उसे शत्रु हानि नहीं पहुँचा सकते तथा धन-धान्य आदि की वृद्धि होती रहती है। इसका मन्त्र यह है — "ॐ रं हं ओं ऐं ॐ।" एक मुखी रुद्राक्ष धारण करने समय इस मन्त्र का १०८ बार जप करना चाहिए। तत्पश्चात् जब भी समय मिले, इस मन्त्र का १०८ बार जप कर लेना चाहिए। यह रुद्राक्ष सोमवार के दिन प्रातः काल धारण करना चाहिए। इस रुद्राक्ष के संबंध में अन्य कोई विधि-निषेध नहीं है। यह समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करता है। इसे स्वर्ण अथवा चाँदी के पत्र में मढ़वा कर अथवा काले मार्जार के ऊन में पिरोकर कण्ठ अथवा दाँई भुजा में धारण करना चाहिए।

(२) द्विमुखी रुद्राक्ष - इस रुद्राक्ष को 'देवदेव' भी कहा जाता है। इसके देवता श्री गौरी-शंकर अथवा 'अर्द्धनारीश्वर' माने गये हैं। यह गोहत्या जैसे पापों को नष्ट करने वाला, धन-धान्य की वृद्धि करने वाला तथा स्वर्ग-प्राप्ति में सहायक होता है। यह धारण करने वाले को चिन्ता-मुक्त करता है। इसे सोमवार, शिवरात्रि अथवा महादेव शक्ति के अनुसार प्रातः काल धारण करना चाहिए। धारण करने से पूर्व इसके मन्त्र का १०८ बार जप करना आवश्यक है तथा इसे फलप्रद बनाये रखने के लिए नित्य प्रति कितनी भी समय १०८ बार मन्त्र जप करते रहना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है — "ॐ ह्रीं क्षौं व्रीं ॐ।"

(३) त्रिमुखी रुद्राक्ष - यह रुद्राक्ष साक्षात् अग्नि रूप होता है। इसके देवता 'अग्नि' हैं। यह स्त्रीहत्या जैसे सब प्रकार के पापों को नष्ट करता है। यह धन-सम्मान की बाधाओं का शमन करता है। विद्या तथा ऐश्वर्य देता है। यह शत्रु-नाशक तथा अशुभ दूर करने वाला है। इसके धारण करने से विद्या का लाभ होता है। इसे भी सोमवार को प्रातः काल के समय धारण करना चाहिए। धारण करने

से पूर्व इसके मन्त्र का १०८ बार उच्चारण करना चाहिए तथा बाद में भी निम्नवत् किसी भी समय १०८ बार मंत्र जप करना उचित है। मन्त्र इस प्रकार है— "ॐ रं ह्रैं ह्रीं ह्रूं औं।"

(४) चतुर्मुखी रुद्राक्ष— यह साक्षात ब्रह्मा का स्वरूप है। इसके देवता ब्रह्मा हैं। इसे धारण करने वाला व्यक्ति सबका स्नेही, सबका हितैषी, बहुश्रुत, वेद शास्त्रों का ज्ञाता, धन-सम्पन्न तथा लोकप्रिय होता है। इसे धारण करने से मनुष्य-हत्या का पाप दूर होता है। यह आँखों में तेज तथा वाणी में मिठास लाता है। ऐसे लोग अन्य व्यक्तियों को आकर्षित करने में विशेष सफल होते हैं। इसे भी लोगों को प्रातःकाल १०८ बार मन्त्र जप करने के बाद कण्ठ अथवा दाँई भुजा में धारण करना चाहिए तथा बाद में भी नित्य किसी भी समय १०८ बार मन्त्र-जप करते रहना चाहिए। इस का मन्त्र है— 'ॐ वां क्रां लां हां ईं।"

(५) पंचमुखी रुद्राक्ष— इस रुद्राक्ष को 'कालाग्नि' नाम से पुकारा जाता है। इसके देवता 'कालाग्नि रुद्र' हैं। इसे अत्यन्त शुभ तथा पुण्यदायी माना जाता है। इसे धारण करने से ऐश्वर्य, प्रज्ञा, सुख तथा शान्ति का लाभ होता है। अभक्ष्य अथवा दूषित भोजन करने तथा अशुभ दृष्टि के कारण होने वाले सभी विघ्न इसे धारण करने वाले से दूर रहते हैं। इसे किसी भी सोमवार को प्रातःकाल १०८ बार मन्त्र-जप करने के बाद कण्ठ अथवा दाँई भुजा में धारण करना चाहिए, तदुपरान्त यदि प्रतिदिन नहीं तो कम-से-कम प्रत्येक सोमवार को किसी भी समय मन्त्र का १०८ बार जप करते रहना चाहिए, अन्य कोई बंधन नहीं है। इसका मन्त्र इस प्रकार है— "ह्रां क्रां वाँ हौं।"

(६) छहमुखी रुद्राक्ष - इस रुद्राक्ष की 'कार्तिकेय' संज्ञा है। इसके स्वामी - देवता 'स्वामि कार्तिकेय' हैं। इसे धारण करने वाले को सर्वत्र विजय प्राप्त होती है। यह सभा, विवाद, न्यायालय, राजदरबार तथा समाज में सर्वत्र विजय दिलाता है। इससे वक्तृत्व - शक्ति का लाभ होता है तथा सद्गुण, सुलक्षण तथा धैर्य की प्राप्ति होती है। इसे धारण करने वालों को भगवती पार्वती की विशेष कृपा प्राप्त होती है। इसे सभी वर्णों के लोग धारण कर सकते हैं तथा सभी को एकसमान फल प्राप्त होता है। इसे सोमवार को प्रातःकाल के समय १० बार मन्त्रोच्चारण करने के बाद धारण करना चाहिए। बाद में प्रतिदिन अथवा केवल सोमवार को ही १० बार मन्त्र-जप करते रहना चाहिए। इसे कंठ अथवा भुजा में धारण करना चाहिए। काले डोरे अथवा सोने - चाँदी के ताबीज में भरकर धारण करना अत्यन्त शुभ रहता है। इसका मन्त्र है - 'ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं सों ऐं।"

(७) सप्तमुखी रुद्राक्ष - इस रुद्राक्ष के स्वामी 'अनन्त' हैं (मतान्तर से - सप्त मातृकाएँ हैं)। इसे धारण करने वाले को किसी विष - बाधा का शिकार नहीं बनना पड़ता। यह समस्त पापों को नष्ट करने वाला, सृष्टि - दायक, स्त्री - वशीकरण - कारक, गुप्त - धन उपलब्ध कराने वाला तथा शत्रु - नाशक होता है। इसे धारण करने वाला मनुष्य यशस्वी तथा उच्चोच्च उन्नति करने वाला होता है। इसे सोमवार के दिन प्रातःकाल काले धागे में पिरोकर धारण करना चाहिए। धारण करने से पूर्व इसके मन्त्र का १० बार जप करना चाहिए तथा बादमें भी प्रतिदिन स्नानोपरान्त १० बार मन्त्रोच्चारण करते रहना चाहिए। इसका मन्त्र है - "ॐ ह्रूं क्रीं ह्रीं सौं।"

(८) अष्टमुखी रुद्राक्ष - इस रुद्राक्ष को भगवान् गणेश जी का स्वरूप माना गया है। मतान्तर से - इसके देवता 'वटुक भैरव' हैं। इसे धारण करने वाले व्यक्ति को निपुणता तथा नेतृत्व का लाभ होता है। उसे कभी भी अपयश नहीं मिलता। इसके प्रभाव से विद्या का विशेष लाभ होता है। इसे सोमवार के दिन प्रातःकाल काले डोरे में पिरोकर कण्ठ अथवा भुजा में धारण करना चाहिए। धारण करने से पूर्व इसे जल, गंध, पुष्प, धूप-दीप आदि से पूजन कर इसके मन्त्र का १० बार जप करना चाहिए तथा बाद में भी प्रतिदिन अथवा केवल सोमवार के दिन ही १० बार मन्त्र जप करते रहना चाहिए। इसका मन्त्र है - "ॐ ह्रां ग्रीं लं ॐ श्रीं।"

(९) नवमुखी रुद्राक्ष - इस रुद्राक्ष के स्वामी 'भैरव' हैं (मतान्तर से - इसकी अधिष्ठात्रदेवी दुर्गा हैं)। इसे प्रत्यक्ष शिव रूप माना जाता है। स्वर्ग में इस रुद्राक्ष की इन्द्र की भाँति पूजा होती है। यह धन, ऐश्वर्य तथा सम्मान प्रदायक है। इसे भी विधिपूर्वक पूजन तथा १० बार मन्त्र-जप के बाद सोमवार के दिन प्रातःकाल धारण करना चाहिए। काले डोरे में पिरोकर कंठ अथवा भुजा में धारण करें। बाद में प्रतिदिन १० बार मन्त्र-जप करते रहें, परन्तु अशक्त हों तो यह बन्धन भी आवश्यक नहीं है। इसका मन्त्र है - "ॐ ह्रीं वं यं रं लं।"

(१०) दशमुखी रुद्राक्ष - इस रुद्राक्ष के स्वामी श्री विष्णु हैं। इसे धारण करने वाले को सर्प आदि का भय नहीं रहता। उसे पिशाच, भूत, राक्षस, भूत-प्रेत आदि की बाधाएँ नहीं लगतीं। यह एक ग्रहों की शान्ति को प्रबल करता तथा अनिष्ट ग्रहों की पीड़ा को समाप्त करता है। इसे भी सोमवार के दिन प्रातःकाल

काले रंग के धागे में पिरोकर, १० बार मन्त्र-जप करने के पश्चात् दाँई भुजा अथवा कण्ठ में धारण करना चाहिए। इसे धारण करने में कोई बन्धन नहीं है। इसका मन्त्र है — "ॐ ह्रीं क्लीं श्रीं ॐ।"

(११) एकादशमुखी रुद्राक्ष — इसके देवता साक्षात् रुद्र तथा इन्द्र माने गए हैं। इसे धारण करने वाले को हजारों अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त होता है। राजसूय यज्ञ तथा चन्द्र-ग्रहण के समय किए गए दान के पुण्य से भी हजारों गुना अधिक पुण्य-फल मिलता है। इसे धारण करने वाले का पुनर्जन्म नहीं होता (यह यश, वैभव, कीर्ति को देने वाला तथा समस्त मनोकामनाओं की पूर्ति करने वाला है। इसे भी पूर्ववत् धारण करना चाहिए तथा इसे धारण करने की विशेष विधि निम्नानुसार है —

सोमवार को प्रातः काल स्नान करने के बाद चौकी रखकर, उसके ऊपर लाल रंग अथवा पीले रंग का रेशमी-वस्त्र बिछाएं। उसके ऊपर रुद्राक्ष को प्रतिष्ठित करें, तदुपरान्त १० बार मन्त्रोच्चारण करते हुए गंध, पुष्प, धूप, दीप आदि से रुद्राक्ष का पूजन करें, फिर उसे काले धागे में पिरोकर, कंठ अथवा भुजा में धारण करें। बाद में प्रतिदिन १० बार मन्त्र-जप अवश्य करते रहें। मन्त्रोच्चारण के समय शुद्ध रहना आवश्यक है। अन्य कोई बन्धन नहीं है। मन्त्र इस प्रकार है — 'ॐ रुं रुं रूं ॐ'।

(१२) द्वादशमुखी रुद्राक्ष — इसे द्वादशादित्य रूपी 'सूर्य' का प्रतीक माना जाता है। यह सूर्य के समान ही तेजस्वी तथा प्रभावशाली है। इसे सोमवार के दिन प्रातः काल धूप-दीप, गंध-पुष्प आदि से पूजकर, काले धागे में पिरोएं, तदुपरान्त १० बार मन्त्र-जप करके केवल कंठ में धारण करें। इसे भुजा में नहीं बाँधा जाता। धारण करने के बाद भी प्रतिदिन स्नान आदि करके इसके मंत्र का

१०८ बार जप करते रहना चाहिए। मन्त्र यह है — "ॐ ह्रीं ह्रौं घृणिः सूं।" इस रुद्राक्ष को धारण करने से अग्नि का भय नहीं रहता। चोर का भय भी नष्ट हो जाता है। यह व्याधि, दरिद्रता तथा संकटों को दूर करने वाला तथा अल्प-समय में ही धन-पुत्रादि की वृद्धि करने वाला है। यह सब प्रकार के दुःख, कष्ट, निराशा तथा विघ्न-भय को दूर करने वाला है। यह जंगली पशुओं से भी रक्षा करता है।

(१३) त्रयोदशमुखी रुद्राक्ष- इसके स्वामी 'इन्द्र' देवता हैं। इसे धारण करने वाला सब देवताओं की कृपा प्राप्त कर लेता है। उसके सभी मनोरथ पूर्ण होते हैं तथा महान् ऐश्वर्य अनायास ही प्राप्त हो जाता है। इस रुद्राक्ष का धारक कभी पराजित नहीं होता। इसे धारण करने से वृद्धि-सिद्धि का लाभ होता है। इसके प्रभाव से लोग वशीभूत होते हैं। मोदों से मुक्ति मिलती है तथा धारक इच्छा-मृत्यु पाने में भी समर्थ हो जाता है। इस रुद्राक्ष को भी धारण करने से पूर्व एक चौकी पर कपड़ा बिछा कर स्थापित करें, तदुपरान्त गंध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप आदि से पूजन करने के बाद १०८ बार मन्त्र-जप करें, तदुपरान्त काले धागे में मूंग के बराबर में धारण करें। अन्य कोई बन्धन नहीं है। रुद्राक्ष धारण करने के बाद प्रतिदिन स्नानोपरान्त १०८ बार मन्त्र का जप करते रहना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है — "ॐ ई यं नमः ॐ।"

(१४) चतुर्दशमुखी रुद्राक्ष- इसके देवता हनुमान् हैं। यह भूत, प्रेत, पिशाच, डाकिनी, शाकिनी आदि को दूर भगाता तथा संकटों से रक्षा करता है। यह बल तथा हिम्मत को बढ़ाने वाला एवं भय को दूर भगाने वाला है। इसे भी सोमवार के दिन प्रातः काल स्नान करके चौकी पर स्थापित करें, गंध, अक्षत, पुष्प, धूप, दीप आदि से पूजित करें, १०८ बार मन्त्र-जप पूर्वक, काले धागे में बीच में भुजा अथवा

कण्ठ में धारण करें। कंठ में धारण करना विशेष शुभ माना गया है। रुद्राक्ष धारण करने की विधि जिस दिन सम्पन्न हो, उसके बाद प्रतिदिन स्नानोपरान्त अथवा प्रति सोमवार को स्नानोपरान्त 108 बार मंत्र का जप करते रहना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार है— "ॐ ऐं ह्रीं हुं रुद्राक्षेभ्यो हुं ह्रीं ऐं नमः।"

रुद्राक्ष के अन्य प्रयोग निम्न लिखित हैं—

(1) रुद्राक्ष के दाने को काले रंग के डोरे में पिरोकर कंठ में धारण करें। डोरा इतना बड़ा हो कि रुद्राक्ष दानों के मध्यभाग का स्पर्श करता रहे। इसके प्रभाव से उच्चरक्तचाप (हाई ब्लड प्रैशर) में लाभ होता है। यह रक्तचाप को नियमित बनाये रखता है।

(2) तांबे के किसी पात्र में रात के समय पानी भर कर, उसमें रुद्राक्ष के 2 दाने डाल दें तथा प्रातःकाल दानों को अलग करके, उस पानी को पीलें। इस जल के प्रभाव से उदर-रोग नहीं होते तथा शारीरिक-स्वास्थ्य में वृद्धि होती है।

(3) बालकों के गले में रुद्राक्ष पहना देने से उन्हें भूत-प्रेत तथा नजर-बुरी का भय नहीं रहता। रुद्राक्ष के प्रभाव से बच्चों का रात के समय सोते-सोते चौंक पड़ना, रोना, चिल्लाना तथा डरना आदि दूर हो जाते हैं।

(4) बालक को सर्दी लग गई हो तो रुद्राक्ष को पानी में घिस कर, घोड़ा का पानी बालक को पिलायें तथा रुद्राक्ष को पानी में घिस कर तथा किए गए गाढ़े लेप को उसकी छाती पर मलने से सर्दी का प्रभाव दूर हो जाता है तथा पसली चलना आदि विकार दूर हो जाते हैं॥ इति रुद्राक्ष कल्प॥

अथ मधूरशिला कल्प

मधूरशिला नामक वनस्पति को कृष्ण पक्ष की अष्टमी या चतुर्दशी तिथि को, अथवा दीपावली के दिन या हस्तनक्षत्र में, वस्त्रहीन (नग्न) होकर मौन आके। निमन्त्रण करने की विधि यह है कि जिस जगह मधूरशिला हो, वहाँ निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए चावल तथा तिल छोड़े तदुपरान्त दूसरे दिन प्रातःकाल पुनः उस स्थान पर जाकर, किसी काष्ठ के माध्यम से मधूरशिला की जड़ को उखाड़ कर ले आये। मन्त्र इस प्रकार है — "ॐ ह्रीं मधूरशिला ममास्तु सर्व कार्य साधय साधय स्वाहा।" फिर लाई हुई मधूरशिला को किसी ऊँची जगह पर लाल कपड़े, कपूर, कस्तूरी आदि से सात दिन तक नित्य पूजना रहे तथा निम्नलिखित मन्त्र की एक माला केसर रेट अर्थात् १०८ बार निम्नलिखित मन्त्र का जप करे —

मन्त्र :- "ॐ नमो महासेनाय शाक्ते हस्ताय महेश्वराय वरदाय उल्कादाय ज्वल-ज्वल प्रज्वल औषध सर्व दुष्ट नाशिनी मम भवतु स्वाहा।"

इस मन्त्र का सात दिनों तक नित्य १०८ बार जप करने से जड़ी सिद्ध होजाती है, तदुपरान्त चैत्र शुक्ला अष्टमी अथवा आश्विन शुक्ला अष्टमी एवं नवमी की रात्रि को उसका पूजन करे, इसको इस अवसर पर निम्नलिखित मन्त्र का जप करना चाहिए —

मन्त्र — "ॐ ऐं क्लीं हसौं राजलक्ष्मी इहागच्छ आगच्छ देहि देहि महालक्ष्म्यै नमः।"

उक्त मन्त्र का यदि अनिवार्य की किसी एक नवरात्रि में १,२५००० की संख्या में जप कर लिया जाय तो अत्युत्तम रहता है। इससे मन्त्र सिद्ध होजाता है। मधूरशिला के उपयोग निम्नलिखित हैं —

(१) मधूक शिला की जड़ को हाथ में बाँध कर जिस व्यक्ति के पास पहुँचा जाय और उससे किसी वस्तु की माँग की जाय, वह उसे दे देता है।

(२) मधूक शिला की जड़ को हाथ में बाँध कर न्यायालय में जाने से मुकद्दमे में विजय होती है।

(३) मधूक शिला की जड़ को तिजोरी में रखने से धन तथा आभूषणों की वृद्धि होती है।

(४) मधूक शिला की जड़ को मस्तक पर रखने से सर्प, चोर आदि का भय नहीं रहता।

(५) मधूक शिला की जड़ को धूप देकर हाथ में बाँधने से हर प्रकार का ज्वर दूर होता है।

अथ बहेड़ा कल्प

बहेड़े के वृक्ष काफी बड़े होते हैं तथा प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं। बहेड़े का मुख्य-फल उपयोग लाया जाता है। तान्त्रिक-प्रयोग के लिए विधि निम्नानुसार है—

शनिवार की सन्ध्या को बहेड़े के वृक्ष के समीप जाकर "मम कार्यं सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा"— यह कह कर उसका गंध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, धूप, दीप आदि चढ़ा कर पूजन करे। यह शनिवार का दिन ऐसा होना चाहिए, जिसके दूसरे दिन पुष्य नक्षत्र युक्त रविवार हो। ऐसे योग को 'पुष्यार्क' योग कहा जाता है। पुष्यार्क योग किस तिथि को पड़ेगा—इसकी जानकारी पञ्चाङ्ग द्वारा प्राप्त की जा सकती है। अस्तु दूसरे दिन पुष्य नक्षत्र वाले रविवार को प्रातःकाल पुनः सूर्योदय से पहले ही, निम्न लिखित मन्त्र पढ़ कर बहेड़े के वृक्ष की जड़ तथा थोड़े से पत्तों को ले आये। मन्त्र आगे लिखे अनुसार है—

मन्त्र:— "ॐ नमः सर्वभूताधिपतये ग्रस ग्रस शोषय शोषय भैरवी-चाङ्गा पयति स्वाहा"

किसी बड़े की जड़ तथा पत्तों को पंचामृत से धोकर शुद्ध जल से धोये, तदुपरान्त एकदें एक चौकी पर स्थापित कर, उक्त मन्त्र का १०८ बार जप करते हुए अभिमंत्रित करें। तदुपरान्त उपयोग के लिये। इसे उपयोग में लाने की विधि तथा फल निम्नानुसार है—

(१) अभिमंत्रित बहेड़े की जड़ तथा पत्तों को तिजोरी आदि में रखने से धन-धान्य की वृद्धि होती है।

(२) इसें भोजन करते समय अपनी दाईं जाँघ के नीचे रखने से भूख खूब लगती है।

अथ निर्गुण्डी कल्प

निर्गुण्डी का पौधा अरहर के पौधे जैसा, परन्तु उससे अधिक लम्बी शाखाओं वाला होता है। यह पौधा नदी-तटवर्ती क्षेत्रों तथा वनों आदि में पाया जाता है। इसे 'सम्हालू' भी कहते हैं।

रात्रि के समय अकेला ही निर्गुण्डी के पौधे के पास जाकर निम्नलिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए उसकी सात रात्रि पर्यन्त, नित्य २१ प्रदक्षिणा करें। मन्त्र इस प्रकार है—

मन्त्र:- "ॐ नमो गणपतये कुबेरये कपिले फट् स्वाहा।"

सातवें दिन वृक्ष का पंचाङ्ग; — जड़, तना, फल, फूल और पत्तों — का लाकर, उसे स्वच्छ जल से धो-पोंछने के बाद किसी चौकी पर स्थापित कर गंध, पुष्प, अक्षत, धूप, दीप आदि से उसका पूजन करें।

किसी पुरुष को सन्तान का १०८ बार जप करके उसके निर्गुण्डी को अभिमन्त्रित करे तत्पश्चात् निम्नानुसार उपयोग में लाये –

(१) इस वृक्ष की छाल का चूर्ण तथा जीरे का चूर्ण – दोनों को समभाग लेकर ३० दिनतक सेवन करने से हर प्रकार के ज्वर दूर होते हैं।

(२) इसके चूर्ण का चालीस दिनों तक सेवन करते रहने से आयु की वृद्धि होती है।

(३) इसके चूर्ण का पचास दिनों तक सेवन करते रहने से शारीरिक-बल एवं आरोग्य की वृद्धि होती है। सेवन-काल में हल्का सुपाच्य भोजन करना चाहिए।

(४) इसके चूर्ण का एक मास तक सेवन करते रहने से मुखमण्डल चमक दिखाई देता है।

(५) पुष्य नक्षत्र में इसके पञ्चाङ्ग तथा सफेद मिर्च – दोनों को मिलाकर दूकान के द्वार पर रखने से क्रय-विक्रय में अच्छी वृद्धि होती है अर्थात् व्यापार खूब चलता है।

(६) इसकी जड़ के चूर्ण ३ माशे की मात्रा में शहद मिलाकर, प्रातः सायंकाल तथा सायं – दिन में तीन बार सेवन करते रहने से रक्त-शुद्धि होती है तथा रक्त-विकार जैसे दाद, खाज, दाद, आदि चर्म-रोग दूर होते हैं। औषध सेवन करने के बाद एक गिलास ताजा पानी भी पी लेना चाहिए।

(७) शुभमुहूर्त में लाई गई निर्गुण्डी की जड़ को ॐ ह्रीं फट् मन्त्र से अभिमन्त्रित कर, कण्ठ अथवा भुजा में, नाभि या कमर में बाँधकर, धारण करने से शान्ति एवं सुरक्षा प्राप्त होती है तथा सब प्रकार के विघ्न, बाधा, उपद्रव, हानि आदि दूर होते हैं।

हाथा जोड़ी/कल्प

'हाथाजोड़ी' एक वनस्पति की जड़ का नाम है। यह वनस्पति भारत की लाल अन्य भारती देशों में भी पाई जाती है। लैटिन भाषा में इसे 'साइक्लेमेन पर्सिकम' तथा फारसी में 'बरबूरे मरियम' कहा जाता है। ईरान में इसे 'चुबक उश्शान' के नाम से पुकारा जाता है। भारत में राजस्थान तथा मध्यप्रदेश के कुछ भागों में यह सहजता से मिल जाती है। कंजड़, नट, सपेरे आदि जातियों के लोग इसे पहिचान-लेते तथा जंगलों से लाकर बाजार में बेचते हैं।

इस वनस्पति के पौधे की जड़ में दो शाखाएँ नीचे आपस में मिली हुई तथा एक दूसरी से अलग ऐसे आकार की होती है, जैसे दो हाथ एक दूसरे के आमने-सामने हों और वे अंजलिबद्ध (जुड़े हुए) मुद्रा में किए हों। जड़ के दोनों हाथों में अंगुलियाँ सी बनी होती हैं और वे मुड़ी हुई पंजे हाथों जैसी आपस में मिली हुई दिखाई देती हैं। यह आकार में छोटी-बड़ी पाई जाती है। इस वनस्पति के पौधे के पत्ते एक ओर हरे तथा दूसरी ओर सफेद होते हैं, जिनके ऊपर ये ऐसे उठे रहते हैं। इस पर गुलाबी रंग के (कहीं-कहीं नीले रंग के) फूल लगते हैं। यह पौधा नमीवाली जगह में अन्य झाड़ियों के बीच में उगता है। इसकी जड़ शंखाकार जैसी गोलाई लिए होती है, उसी में से कोई शाखा निकल कर 'हाथाजोड़ी' का चिह्न ग्रहण कर लेती है।

इस वनस्पति को किसी डिबिया के भीतर सिन्दूर में रखा जाता है। आश्चर्य की बात यह है कि डिबिया में रखे सिन्दूर को यह जड़ी थोड़े ही दिनों में उदासक कर फूल जाती है। यदि इसे सिन्दूर में न रखा जाए तो यह निर्जीव सी दिखाई देती है। चाँदी की डिबिया में सिन्दूर में रखा, उसके इसे रखना

विशेष फलप्रद माना जाता है।

विधि – रवि-पुष्य योग वाले दिन इसे लाकर, चौकी पर स्थापित करने के बाद धूप, दीप पुष्प चन्दन आदि देकर नमस्कार करें, तदुपरान्त निम्न लिखित मन्त्र का 1000 की संख्या में जप करें-

मन्त्र – "ॐ किलि किलि स्वाहा।"

जब मन्त्र सिद्ध हो जाय, तब हाथाजोड़ी को एक सिंदूर भरी डिब्बी में रखकर बन्द करें तथा इस डिब्बी को अपने पहनने के वस्त्रों की किसी जेब में रखें, इसका फल निम्नानुसार होगा-

(1) हाथाजोड़ी की डिब्बी जेब में रखी हो और किसी व्यक्ति से वार्तालाप किया जाय तो वह बात को मान लेगा।

(2) इसे सामने रखकर जिस किसी व्यक्ति का नाम लेकर मन्त्र-जप किया जाय तो वह वशीभूत हो जाता है।

(3) हाथाजोड़ी को पानी में घिस कर लगा देने के कुछ दूर होता है और यदि गर्भिणी की नाभि पर लगाया जाय तो प्रसव सरलता पूर्वक हो जाता है।

(4) हाथाजोड़ी का लेप पेडू पर करने के बाद पेशाब खुल जाता है।

(5) हाथाजोड़ी की डिब्बी तिजोरी आदि में रखने से धन-धान्य की वृद्धि होती है।

(6) हाथाजोड़ी को घिस कर मस्तक पर तिलक लगाने तथा साथ स्त्री-पुरुष के पास जाने पर वह वशीभूत हो जाता है।

अथ श्वेत लक्ष्मणा कल्प

'श्वेत लक्ष्मणा' को 'सफेद सरफोंका' या 'सरपंखा' भी कहते हैं / इसके तांत्रिक तथा औषधीय प्रयोग की विधियाँ निम्नानुसार हैं—

सर्वप्रथम किसी शनिवार को सबका के समक्ष लक्ष्मणा (श्वेत) के पौधे के पास जाकर "मम कार्य सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा" कहते हुए चन्दन, कुंकुम, धूप, दीप, नैवेद्य आदि से उसका पूजन करें, तदुपरान्त उसके कलावा बाँधकर यह कहें - "मैं कल आपको लेने के लिए आऊँगा" और वापिस लौट आयें / दूसरे दिन पाँच लोग मिलकर, प्रातः सूर्योदय से पहले ही पुनः उस वृक्ष के पास जायें / स्मरणीय है कि वृक्ष को अभिमंत्रित किये जाने वाला शनिवार का दिन ऐसा होना चाहिए, जिसके दूसरे दिन पुष्य नक्षत्र युक्त रविवार हो अर्थात् 'पुष्यार्क योग' हो / इस योग की जानकारी पंचांग (पत्रा) द्वारा जांच की जा सकती है / अस्तु, जो पाँच लोग दूसरे दिन पहुँचें, उनमें से जो व्यक्ति पौधे को उखाड़े, उसे एकदम निर्वस्त्र (नंगा) होकर ही पौधा उखाड़ना चाहिए / अन्य लोगों में से दो व्यक्ति अपने हाथ में तलवार लेकर खड़े रहें तथा एक अन्य व्यक्ति दीपक लेकर खड़ा रहे / चौथा व्यक्ति तीर-कमान हाथ में लिए खड़ा हो / इसके बाद पौधा उखाड़ने वाला व्यक्ति पौधे के समक्ष "मम कार्य सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा, तुरु तुरु" — इसी समय धनुर्धारी चौथा एक तीर छोड़े / जैसे ही वह तीर पृथ्वी पर गिरे, वैसे ही नग्न व्यक्ति किसी लकड़ी के अग्र भाग की सहायता से खोदकर उस पौधे को जड़ सहित उखाड़ ले तथा पञ्चांग (जड़, तना, फल, फूल तथा पत्ते — इन सबको वृक्ष का 'पञ्चांग' कहा जाता है) को हाथ में लेकर निम्नलिखित

मन्त्र का उच्चारण करें—

"ॐ नमो भगवते रुद्राय सर्व वदनी त्रैलोक्य कारणी ह्रूँ फट् स्वाहा।"

इस मन्त्र का उच्चारण करके श्वेतलक्ष्मणा के पंचाङ्ग को चन्द्रमा का पहले पंचामृत तथा बादमें शुद्ध जल से स्नान कराने के बाद, चन्दन की लीली से अभिषेक करें तथा धूप, दीप, पुष्प, अक्षत, नैवेद्य आदि से पूजन करें। निम्नानुसार प्रयोग में लायें—

21 दिनों तक (१) श्वेतलक्ष्मणा की जड़ का चूर्ण बना कर पुष्यार्क मुहूर्त में जो स्त्री ६ माशे की मात्रा में फाँक कर, उसके ऊपर गाय का दूध पीती है; वह यदि बाँझ हो तो भी सन्तान को जन्म देती है।

(२) श्वे. लक्ष्मणा के पञ्चाङ्ग को सोने अथवा चाँदी के ताबीज में भर कर अपने पास रखने से शस्त्रादि के आघात का भय दूर हो जाता है।

(३) पंचाङ्ग की गोली बना कर मूर्खों को मन्त्र से अभिमन्त्रित (२१ बार) कर, जिसे खिलाई जाती है, वह वशीभूत हो जाता है।

(४) पंचाङ्ग को सिन्दूर में मिला कर, किसी डिब्बी में रखले। कि उस डिब्बी को हाथ में लेकर अथवा जेब आदि में रखकर न्यायालय अथवा किसी अन्य राजकीय कार्यालय में जाये तो वहाँ विजय अथवा मनोकामना की पूर्ति प्राप्त होती है।

(५) श्वेत लक्ष्मणा मूल का तिलक करने से डाकिनी-शाकिनी की बाधा दूर होती है।

(६) सूर्य ग्रहण के दिन श्वेत-लक्ष्मणा को घर में लाने से संघर्ष आदि में विजय मिलती है।

अथ गोरखमुण्डी कल्प

इस वनस्पति को खेतों, छोटे-मोटे जलाशयों के समीप तथा तप्त प्रदेशों में बहुतायत से पाया जाता है। इसे 'मुण्डी' भी कहते हैं।

अमावास्या तिथि को गोरखमुण्डी के पौधे के पास पहुँचे तथा उसके सामने पूर्व दिशा की ओर मुँह करके खड़ा हो, हाथ जोड़ कर यह मन्त्र बोले — "मम कार्यसिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा"। तत्पश्चात् उसे जड़ सहित उखाड़ कर घर ले आये। फिर उसे पंचामृत, तदुपरान्त शुद्ध जल से धोने के बाद छाया में सुखाले। फिर उसे चूर्ण-दीप देकर चूर्ण करले, तदुपरान्त निम्न लिखित रूपों में प्रयोग करें —

(१) गोरखमुण्डी के चूर्ण को दूध के साथ ४० दिन तक सेवन करते रहने से शरीर स्वस्थ होता है। यदि एक वर्ष तक गाय के दूध के साथ सेवन करे तो मनुष्य महाबली बन जाता है।

(२) एक तोला चूर्ण को पानी में भिगोकर उस पानी को धान का थोड़ा सा आँवल में डाले तो नेत्र-विकार दूर हो तथा सिर के बालों के सफेद हों।

(३) चूर्ण को गाय के दूध की दाढ़ के साथ जौ के आटे में मिला कर रोटी बनाये और उसे गाय के घी के साथ ही खाये तो कायाकल्प होकर, शरीर का रंग सोने जैसा चमकता है।

(४) मुंडी का रस निकाल कर शरीर में मलने से शरीर-पीड़ा दूर होती है।

(५) मुंडी के पंचाङ्ग का चूर्ण शहद में मिलाकर कुछ दिनों तक नित्य सेवन करते रहने से स्मरण शक्ति तीव्र होती है तथा योगी मनुष्य कवि भी बन सकता है।

अथ विजया कल्प

विजया का लोक प्रचलित नाम 'भांग' है। यह सरकारी ठेकों पर उपलब्ध होती है। यह एक नशीली वस्तु है, जो गुणकारी होने के साथ ही नशा भी करती है। अधिकांश लोग इसका नशे के लिए ही सेवन करते हैं, परन्तु नशे के लिए इसका अधिक मात्रा में सेवन शारीरिक स्वास्थ्य के लिए हानिकारक सिद्ध होता है। यदि इसे अल्पमात्रा में यथाविधि घी और दूध का सेवन किया जाय तो यह मस्तिष्क को बढ़ाती तथा शक्ति को पुष्ट भी बनाती है। विभिन्न महीनों में विभिन्न वस्तुओं के साथ विजया के सेवन से निम्नानुसार लाभ होते हैं—

(१) चैत्रमास में पान के साथ विजया सेवन करने वाला मनुष्य पण्डित बनता है।
(२) वैशाख मास में अकाकए के साथ सेवन करने से विष नहीं चढ़ता।
(३) ज्येष्ठ मास में नारियल के रस के साथ सेवन करने से शक्ति का तेज तथा वर्ण का होजाता है।
(४) आषाढ़ मास में चिरौंजी के साथ सेवन करने से रोगों का कायाकल्प होता है।
(५) श्रावण मास में शिवलिङ्गी के साथ सेवन करने से शक्ति बढ़ती है।
(६) भाद्रपद मास में रुद्रवंती के साथ सेवन करने से सबका प्रेम प्राप्त होता है।
(७) आश्विन मास में मालकांगनी के साथ सेवन करने से शरीर स्वस्थ रहता है।
(८) कार्तिक मास में बकरी के दूध के साथ सेवन करने से मैथुन-शक्ति बढ़ती है।
(९) मार्गशीर्ष मास में गाय के घृत के साथ सेवन करने से दृष्टि-दोष दूर होते हैं।

(१०) पौष माह में तिलों के साथ सेवन करने से पानी के भीतर की वस्तु दिखाई देती है।
(११) माघ माह में मोथा की जड़ के साथ सेवन करने से शक्ति बढ़ती है।
(१२) फाल्गुन माह में आँवले के साथ सेवन करने से पैदल चलने की क्षमता बढ़ती है।

अथ गोरोचन कल्प

तान्त्रिक-कार्यों में अष्टगंध तथा यन्त्र आदि के लेखन में 'गोरोचन' का प्रयोग होता है। यह गाय का पित्त है, जो गाय के मस्तक में पाया जाता है, परन्तु प्रत्येक गाय के सिर में यह पित्त नहीं मिलता। यह पीले-कत्थई मिश्रित रंग का टुकड़े के रूप में होता है, जो गोल, चपटा, लम्बा, तिकोना, चौकोर डोरा-जड़ आदि किसी भी आकार का हो सकता है। मृत- गाय के मस्तक को चीरने पर यह उसमें उपलब्ध हो सकता है। जिन स्थानों पर गोवध होता है, वहाँ इसे मुख्य रूप से प्राप्त करते हैं। वर्तमान समय में, हमारे देश में जो हत्या अधिकांश क्षेत्रों में प्रतिबंधित है, अतः इसकी उपलब्धि भी कम मात्रा में ही हो पाती है। तथापि यह मँहगा बिकता है और मँहगा बिकने के कारण ही नकली- गोरोचन भी तथार किया जाने लगा है, जो तान्त्रिक-दृष्टि से अनुपयोगी होता है। अतः गोरोचन खरीदते समय उसके असली-नकली होने की परीक्षा कर लेनी चाहिए।

गोरोचन को लेने के बाद उसे — "ॐ ह्रीं हन हन ॐ ह्रीं हन ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्रः वः

स्वाहा" — इस मन्त्र से २१ बार अभिमंत्रित करके किसी शुद्ध एवं पवित्र स्थान पर रख देना चाहिए। तदुपरान्त आवश्यकतानुसार प्रयोग के समय भी इस मन्त्र का २१ बार उच्चारण करना चाहिए। साथ ही गूगुल की धूप भी देनी चाहिए। गोरोचन के प्रयोग निम्नलिखित हैं —

(१) इसका तिलक ललाट पर लगाने से राज्य-सभा में सम्मान, न्यायालय तथा विवाद के मामलों में विजय तथा अभिलाषा-पूर्ति में सफलता मिलती है।

(२) इसका तिलक लगा कर जाने से मार्ग में शत्रु, व्याघ्र तथा चोर आदि का भय नहीं रहता तथा सभी स्त्री-पुरुष सम्मोहित होते हैं।

(३) अपनी दाढ़ी पर इसका लेप लगा कर साधक-स्त्री के पास जाने से वह वशीभूत होती है।

(४) गोरोचन की डली को धूप-दीप देकर किसी सोने, चाँदी अथवा ताँबे के यन्त्र (ताबीज) में भर कर दाँई भुजा अथवा कण्ठ में धारण करने से विपत्तियों से रक्षा होती है, मनोकामनाएँ पूर्ण होती हैं तथा भूत-प्रेत, पिशाच, डाकिनी-शाकिनी आदि का भय भी नहीं रहता। इसे बालक के कण्ठ में बाँध देने से बद नज़र आदि दोषों तथा हर प्रकार की ऊपरी बाधा-ग्रहण आदि से बचा रहता है।

(५) धूप, दीप देने के बाद गोरोचन को किसी कोरे कपड़े के टुकड़े में पोटली की तरह बाँध कर अथवा किसी ताबीज या डिब्बी आदि में भर कर सन्दूक, तिजोरी, अन्नभण्डार अथवा अंगूठा-घर में रख देने से धन-धान्य आदि की वृद्धि होती है।

नं. 382

गोदड़सिंगी या सिपाह सिंगी

किसी-किसी जंगली सिपाह के सिर पर एक छोटा सा सींग होता है, जिसे 'सिपाह सिंगी' अथवा गोदड़ सिंगी' आदि नामों से पुकारा जाता है। यथार्थ में सिपाह के सिर पर कोई सींग जैसी वस्तु नहीं होती, अपितु उस स्थान पर एक हड्डी का उभार सा अलग दिखाई देता है। ऐसा उभार नर सफेद डिलडौलवाले सिपाह के सिर अथवा दोनों कानों के मध्यभाग में दोनों आँखों के बीच होता है। शिकारी लोग ऐसे सिपाहों तथा उनके सिर के उभार को पहिंचानते हैं, अतः वे उनका शिकार करके, उस उभार को चाकू से काट कर निकाल लेते हैं, फिर उसे सुनारों के बाजार में बेचते हैं। चूँकि यह चीज कम मिलती है, अतः इसका मूल्य भी अधिक है और इसकी नकलें भी बहुप्रचलित हैं। अस्तु, सिपाह सिंगी किसी विश्वसनीय व्यक्ति से ही खरीदनी चाहिए।

सिपाह सिंगी का विभिन्न तान्त्रिक कार्यों में प्रयोग किया जाता है। सामान्यतः इसे धूप-दीप देकर पूजा में रखने से धन-धान्य की वृद्धि होती है — ऐसी मान्यता है।

सिपाह सिंगी को किसी ताबीज आदि में भरकर अथवा कपड़े में सीकर कंठ अथवा भुजा में बांधने से न्यायालय, राजसभा, वाद-विवाद अथवा शास्त्रार्थ आदि में विजय मिलती है तथा समस्त कामनाओं की पूर्ति में सहायता मिलती है।

सिपाह सिंगी को बालक के कंठ में बाँधने से उसे नजर तथा बलादि का अनिष्ट होता

काली हल्दी

सामान्यतः हल्दी पीले रंग की होती है, जो घरों में मसाले के रूप में अधिक प्रयुक्त होती है तथा उबटन आदि कार्यों, मांगलिक कार्यों एवं औषधीय उपयोग में भी आती है। इसी हल्दी की एक विशेष किस्म काले रंग की भी होती है, जो हल्दी के खेतों में ही कहीं-कहीं प्राकृतिक रूप से उग आती है, उसे बोया नहीं जाता। इसी को 'काली हल्दी' अथवा 'कृष्ण हरिद्रा' कहते हैं। तान्त्रिक-साधना में दोनों प्रकार की हल्दी उपयोग में लाई जाती है। पीली हल्दी की गाँठों को अत्यन्त शुभ माना जाता है तथा उसके दाने जप-माला भी तय्यार की जाती है। काली हल्दी बंजारिनों के यहाँ 'कच्चूर' अथवा 'नरकचूर' के नाम से भी बेची जाती है। इसका प्रयोग हवन की वस्तुओं में तथा अन्य तान्त्रिक कार्यों में किया जाता है। दोनों प्रकार की हल्दी के तान्त्रिक प्रयोग मुख्यतः निम्नलिखित हैं—

(१) पीली हल्दी को साबुत धनिया व चाकमलगट्टे के साथ, गाँठ के रूप में पीली पोथी आदि में रखने से धन-धान्य की वृद्धि होती है।

(२) काली हल्दी को 'गुरु-पुष्य' योग में धूप-देकर, लाल रंग के वस्त्र में लपेट कर तिजोरी आदि में रखने से धन-धान्य की वृद्धि होती है।

(३) पीली हल्दी की गाँठों से निर्मित माला पर गणेश-मन्त्रों का जप किया जाता है।

(४) काली हल्दी का मस्तक पर तिलक लगाने से सम्मोहन होता है।

पवित्र तथा सौभाग्यवर्द्धक अन्य वस्तुएँ

बहुत सी अन्य वस्तुएँ, जिन्हें सौभाग्यवर्द्धक माना जाता है तथा पूजा-पाठ एवं तान्त्रिक कार्यों में प्रयुक्त किया जाता है, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नानुसार है —

(1) कुश — इसे अत्यन्त पवित्र माना जाता है। यह एक प्रकार की लंबी तथा नोकदार पत्तियों वाली घास है। इसके बने आसन बनाये जाते हैं, जिन पर बैठकर सभी धार्मिक तथा तान्त्रिक क्रियाएँ सम्पन्न की जाती हैं। मन्त्रों को लपेटने समय इसकी गाँठ (ग्रन्थि) बना कर अँगुली से चालन की जाती है। ग्रहण के समय इसे भोज्य तथा पानीय वस्तुओं में डालने से उनकी पवित्रता सुरक्षित बनी रहती है। देव-पूजा से लेकर पितृ-पूजन तक में इसका प्रयोग किया जाता है। विवाह-कार्य, हवन, पूजा-पाठ आदि में पवित्री-करण के लिए कुश का प्रयोग अनिवार्य माना जाता है।

(2) नागकेसर — इसे भी पूजा-पाठ तथा औषधीय-प्रयोगों में प्रयुक्त किया जाता है। यह सुगन्धित वस्तुओं में से एक है तथा अनेक रोगों में भी लाभ करती है।

(3) कमल — यह पूजा-कार्य में प्रयुक्त होने वाला एक विशिष्ट पुष्प है। कमला का जन्म इसी से हुआ माना जाता है। श्रीविष्णु इसे अपने हाथ में धारण किये रहते हैं। लक्ष्मी इसमें निवास करती हैं

तथा इसे सदैव अपने हाथ से ही चुनकर किये हुए हैं / शिव तथा विष्णु की पूजा के अतिरिक्त लक्ष्मी तथा अन्य देवियों की पूजा में भी इसका प्रयोग किया जाता है। इसकी मालाएँ भी बनाई जाती हैं। कमल को समृद्धि दायक माना जाता है तथा इसके फूलों से हवन भी किया जाता है।

(४) लौंग - यह भी सुगंधित तथा आयुर्वेदिक वस्तु है / मसाले के रूप में इसका खाने में उपयोग होता है। अनेक औषधियों इसके द्वारा की जाती हैं तथा देवी-देवताओं के पूजन तथा होम में भी इसका प्रयोग किया जाता है / देवी की पूजा में घृत-सिक्त लौंग का जोड़ा चढ़ाये जाने की प्रथा हमारे देश में प्राचीन काल से प्रचलित है / तान्त्रिक-प्रयोगों में भी इसका व्यवहार किया जाता है। इसे भूत-प्रेत-निवारक भी माना जाता है / यह स्वर भंग, खांसी, जुकाम तथा ज्वर आदि में विशेष लाभकारी है / इसका तेल भी निकाला जाता है, जो अनेक कार्यों में प्रयुक्त होता है / इसका तेल सुगंधित, कीटाणु-नाशक तथा उड़नशील होता है।

(५) कपूर - इसे पूजा, कर्मकाण्ड, तान्त्रिक-कार्य तथा औषधियों में प्रयुक्त किया जाता है देव-मन्दिरों में तथा अन्यत्र भी 'आरती' इसी के द्वारा की जाती है / यह उड़नशील है, अतः इसे खुला हुआ नहीं रखना चाहिए / लौंग के साथ रखने से यह कम उड़ता है / यह छूतरोधक एवं कृमि-नाशक है / हवन-सामग्री, अष्टगंध-निर्माण तथा काजल तथा कोने में इसका अधिक प्रयोग किया जाता है।

(६) सिन्दूर - हमारे देश में सौभाग्यवती हिन्दू-स्त्रियाँ इसे अपने सिर के केशों के बीच की मांग भरती हैं, अतः इसे सौभाग्य-चिह्न माना जाता है। इसके अतिरिक्त पूजा-कार्यों में इसका विशेष प्रयोग होता है। दीपावली के दिन घरों अथवा दूकानों / गद्दियों / कार्यालयों आदि स्थानों में इसी की सियाही से 'शुभ-लाभ', 'श्रीगणेशाय नमः' आदि वाक्य लिखे जाते हैं तथा 'स्वास्तिक' चिह्नादि बनाये जाते हैं। अनेक देवी-देवताओं, यथा- हनुमान, दुर्गा आदि की पूजा तो इसके बिना हो ही नहीं सकती। यह त्वचा-रोग नाशक है, अतः मलहम आदि अनेक प्रकार की औषधियों में इसका प्रयोग होता है। इसे धन-धान्य तथा समृद्धि दायक भी माना जाता है।

(७) नारियल - 'श्रीफल' नारियल के संबंध में पहले विस्तार पूर्वक लिखा जा चुका है। सामान्य नारियल को भी परम पवित्र तथा कल्याणकारी माना गया है। मंगलकारी होने के कारण ही इसे 'श्रीफल' भी कहा जाता है। यह धन-धान्य तथा सौभाग्य-सन्तानों की वृद्धि करता है। पूजा आदि कार्यों में इसका प्रयोग तो होता ही है, मांगलिक अवसरों पर इसे कलश पर स्थापित करने तथा भेंट देने के उपयोग में भी लाया जाता है। नारियल का उपयोग धार्मिक तथा तान्त्रिक कार्यों में जटाओं का ही होता है। कच्चे नारियल को 'डाभ' कहते हैं। डाभ का पानी शीतल, हल्का तथा स्वास्थ्य-वर्द्धक होता है। नारियल के भीतर निकलने वाले गरी के गोले की गणना मेवाओं में की जाती है। उसका तेल भी निकाला जाता है। नारियल की जटाओं से विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ तथा होती हैं। इस प्रकार यह बहुउपयोगी तथा मांगलिक-वस्तु है।

(८) नागदमन - इसे नागदुध्नी, सर्पदमन आदि नामों से भी पुकारा जाता है। इसके पत्ते छोटे व सामान्य लम्बाई लिए गोल होते हैं। इसे झुरमुटों की बाड़ के रूप में तथा गमलों में भी लगाया जाता है। यह पौधा जहाँ होता है, वहाँ सर्प नहीं आता - ऐसी मान्यता भी है। इसकी जड़ को तान्त्रिक प्रयोगों में काम में लाया जाता है। नागदमन की जड़ को धूप-दीप देकर, किसी नक्षत्र आदि में मन्त्र क०० अथवा भुजा में धारण करने से सर्पों का सम्मान मिलता है तथा घर में धन-धान्य की वृद्धि होती है। इसे धारण करने वाला मनुष्य सर्प-भय से मुक्त रहता है।

(९) पीपल - यह वृक्ष सर्वत्र पाया जाता है तथा सबसे अधिक आयुवाला होता है, अतः वर्तमान वैज्ञानिक भी इसे सर्वाधिक उपयोगी वृक्ष मानते हैं। हिन्दू परम्परा में इस वृक्ष को अत्यन्त पवित्र माना जाता है तथा इस पर भूत-प्रेत-ब्रह्मराक्षस आदि का निवास भी माना जाता है। इसे काटना भी महापाप मानते हैं। पीपल के वृक्ष की पूजा भी की जाती है। इसकी आयु हजारों वर्ष की होती है।

यह वृक्ष बहु उपयोगी है। इसकी छाल, पत्ते, फल आदि का औषधीय उपयोग होता है। इसकी लकड़ी होम करने तथा अन्त्य जलाने के रूप में प्रयुक्त होती है। इस वृक्ष की छाया में किए गए धार्मिक-कृत्य श्रेष्ठ माने जाते हैं। हिन्दू-परम्परा में पितरों की शान्ति हेतु इस वृक्ष पर जल-घट बाँधने तथा सायंकाल दीपक जलाने का भी नियम है। मान्यता है कि यदि इस वृक्ष पर नित्य नियमित रूप से जल चढ़ाया जाय तो वृक्ष पर निवास करने वाली पितरात्मा प्रसन्न होकर जल चढ़ाने वाले की सहायता करती रहती है।

नं. ३१८ म.

(१०) बरगद - 'बरगद' को 'वट' कहते हैं। इसे भी पवित्र वृक्षों में गिना जाता है। यह आकार में अत्यन्त विशाल होता है। इससे निकलने वाली जटाएँ नीचे का रूप धारण करती चली जाती हैं। फलतः इसका विस्तार भी बढ़ता चला जाता है। यह वृक्ष हजारों वर्षों तक जीवित बना रहता है। कलकत्ता के 'बोटानिकल गार्डन' में बरगद का हजारों वर्ष पुराना एक ऐसा वृक्ष है, जो कई मीलों के व्यास का है तथा उसके नीचे होकर अनेक मार्ग निकाले गए हैं।

बरगद के वृक्ष को 'शिव' का प्रतिरूप माना गया है। इसी वृक्ष के पत्ते पर लेटे हुए बालकृष्ण महाप्रलय के समय अपने पाँव का अँगूठा चूसा करते हैं — ऐसी पौराणिक मान्यता भी है। इस वृक्ष की छाल, जटा तथा फलों के अनेक औषधीय उपयोग हैं। तान्त्रिक-प्रयोग भी इसके किए जाते हैं।

(११) गूलर - इसे 'उदुम्बर' भी कहते हैं। यह भी बरगद जैसा ही एक बड़ा वृक्ष होता है, परन्तु उतना बड़ा नहीं। इसे भी पवित्र वृक्षों की श्रेणी में रखा गया है। इसकी लकड़ियाँ हवन-कर्म में प्रयुक्त होती हैं। इसकी आयु भी बहुत लम्बी होती है। इसके पके हुए फल मीठे होते हैं, जिन्हें खाया भी जाता है, परन्तु इसके फलों के भीतर छोटे-छोटे कीड़े तथा सुनगे घुस जाते हैं, जिनमें से अनेक तो फल को खोलते ही जीवित अवस्था में निकल कर उड़ भी जाते हैं, अतः इसके फलों को खाते समय सावधानी रखनी चाहिए।

गूलर की जड़ को चूर्ण-दीप देकर घर में रखने से धन-धान्य की वृद्धि होती है। इसकी छाल तथा फल का प्रयोग अनेक प्रकार की औषधियों में किया जाता है। तान्त्रिक-कर्मों में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

(१२) बहेड़ा - इस का वृक्ष भी आमके वृक्ष जैसा होता है। इसके फलों को बहेड़े कहा जाता है, जो पकने पर सूख जाते हैं और वृक्ष के नीचे स्वतः ही गिरते रहते हैं। बहेड़े के बीज के बीच से निकलने वाली गिरी बादाम जैसी स्वादिष्ट होती है। बहेड़े का उपयोग चिकित्सा कार्य में विशेष रूप से किया जाता है। 'हरड़, बहेड़ा तथा आँवला' - इन तीनों से निर्मित 'त्रिफला चूर्ण' आयुर्वेद में विशेष प्रसिद्ध है। यह चूर्ण कब्ज, ज्वर, अनेक प्रकार के नेत्र-रोग तथा उदर-व्याधियों में लाभ करता है।

बहेड़े के अनेक तान्त्रिक-प्रयोग हैं। इसके फलों की माला पर मन्त्र-जप किया जाता है तथा उन्हें होम कुण्ड में भी उपयोग में लाया जाता है। बहेड़े के पत्ते भी तान्त्रिक-प्रयोगों में काम आते हैं। इस सम्बन्ध में पहले 'बहेड़ा कल्प' के अन्तर्गत जो लिखा जा चुका है, उसे भी पढ़लें। बहेड़े के वृक्ष भारत में प्रायः सर्वत्र पाये जाते हैं।

अथ नक्षत्र-कल्प

विभिन्न नक्षत्रों में विभिन्न वस्तुओं के तान्त्रिक-प्रयोगों से प्राप्त होने वाले फल का उल्लेख नीचे किया जा रहा है। स्मरण रहे कि नक्षत्रों की कुल संख्या २७ है। किस दिन कौन सा नक्षत्र विद्यमान होगा इस का ज्ञान पञ्चाङ्ग (पत्रा) द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। सभी नक्षत्र फलदायी नहीं होते।

(१) अश्विनी - इस नक्षत्र वाले दिन एक रंग वाली गाय के दूध के साथ एक बिल्व-पत्र (बेल का पत्ता) पीस कर पीने से वन्ध्या-स्त्री भी पुत्र को जन्म देती है।

(२) भरणी- जिस व्यक्ति के घर में चोरी हुई हो, इस नक्षत्र वाले दिन उसके घर में पान लगा कर डालने से चोरी गई वस्तु मिल जाती है।

(३) कृत्तिका- इस नक्षत्र वाले दिन पलाश के एक पत्ते को एक रंग वाली गाय के दूध के साथ पीने से सब रोग शान्त होते हैं।

(४) रोहिणी- इस नक्षत्र वाले दिन केले का पत्ता हाथ में बाँधने से सभी लोग आकर्षित होते हैं।

(५) मृगशिरा- इस नक्षत्र वाले दिन केले का पत्ता हाथ में बाँधने से सभी लोग प्रसन्न होते हैं।

(६) आर्द्रा- इस नक्षत्र में 'मंजुडा' के अन्तिम पत्ते को खेत में डालने से उपज में दोगुनी वृद्धि होती है।

(७) पुष्य- इस नक्षत्र में 'झाड़ी' के पत्ते को अपनी टोपी, टोप, पगड़ी, साफा आदि जाने से सब लोग वशीभूत होते हैं।

(८) आश्लेषा- इस नक्षत्र में बगद के पत्ते को अन्न-भण्डार में डालने से अन्न के विनोलक्ष में रखने से व्यापारी को व्यवसाय में लाभ होता है।

(९) मघा- इस नक्षत्र में भरभेरी (छोटे गोल बेर) की झाड़ी के पत्ते को हाथ से बाँधने से मन्त्र-जप सफल होता है।

(११) पूर्वा फाल्गुनी - इस नक्षत्र में बहेड़े का पत्ता जिसके पास रख दिया जाता है, उसके पास में भूत नहीं चल पाती।

(१२) हस्त - इस नक्षत्र वाले दिन पलाश (ढाक) का पत्ता हाथ में बाँध कर कहीं जाने से सब लोग वश में हो जाते हैं।

(१३) चित्रा - इस नक्षत्र वाले दिन जिस व्यक्ति को 'धावड़ी' वृक्ष का पत्ता खिला दिया जाय, उसके साथ प्रेम की अभिवृद्धि होती है।

(१४) स्वाति - इस नक्षत्र वाले दिन बेलपत्र को पीलेंगे वाली गाय के दूध में पीसकर, अपने ललाट पर तिलक करने से सब लोग वशीभूत हो जाते हैं।

(१५) मूल - इस नक्षत्र में सरफोंका, विषखपरा, इन्द्रवारुणी तथा ईश्वरलिंगी के पंचांगों को मिला कर रखलें। तदुपरान्त आवश्यकतानुसार इसे पीस कर उदर-रोगी के पेट पर लेपकरने से उदर-रोग दूर हो जाता है।

(१६) श्रवण - इस नक्षत्र में बेंत की लकड़ी का टुकड़ा हाथ या बाँह का युद्ध करने से विजय प्राप्त होती है।

(१७) धनिष्ठा - इस नक्षत्र में आक (मदार) के पुष्प को दाँये हाथ में बाँधने से देखने वाला व्यक्ति वशीभूत हो जाता है।

(१८) शतभिषा - इस नक्षत्र में लालरंग की चिरमिठी (गुंजा या घुंघची) जड़ हाथ में बाँधने से सभी कार्य सफल होते हैं।

(१९) पूर्वाभाद्रपदा- इस नक्षत्र में वट-वृक्ष की जटा आठ अंगुल ले। फिर उसे चीर कर जिस व्यक्ति के पैर से डाला जाता है, उसके कार्य में विघ्न उपस्थित होता है।

(२०) रेवती- इस नक्षत्र में झाड़ी के पत्ते को दाँये हाथ में बाँधने से जुए, सट्टे आदि में जीत होती है।

अन्य नक्षत्रानुसार बाँदा कल्प

विभिन्न वृक्षों के बांदा के प्रयोग का उल्लेख पहले किया जा चुका है। यहाँ विभिन्न नक्षत्रों में विभिन्न वृक्षों के बाँदे के प्रयोग तथा उनसे प्राप्त होने वाले लाभों का उल्लेख किया जाता है। इन प्रयोगों को मन्त्र-सिद्ध कर लेने के बाद ही करना चाहिए। मन्त्र-विधि का उल्लेख आगे किया गया है।

(१) अश्विनी- इस नक्षत्र में 'बेल' का बन्दा हाथ में धारण करने वाला मनुष्य अदृश्य हो जाता है।

(२) भरणी- इस नक्षत्र में 'कपास' का बन्दा हाथ में धारण करने वाला मनुष्य अदृश्य हो जाता है।

(३) कृत्तिका- इस नक्षत्र में 'धूल' का बन्दा हाथ में धारण करने वाले मनुष्य की वाक्-सिद्धि प्राप्त होती है अर्थात् वह जो कुछ कहता है, वह सत्य सिद्ध होता है। ऐसे लोगों के विषय में सामान्यतः सरस्वती-सिद्ध होने की बात कही जाती है।

(४) रोहिणी- इस नक्षत्र वाले दिन 'बरगद' के वृक्ष का बाँदा हाथ में चाणा करने से सबलोग वशीभूत होते हैं।

(५) मृगशिरा- इस नक्षत्र वाले दिन 'शिशोट' के वृक्ष का बाँदा पान में रख कर, मुँह में चाणा करने वाला मनुष्य अदृश्य हो जाता है।

(६) चित्रा- इस नक्षत्र वाले दिन 'चावड़ी' के वृक्ष का बाँदा जिस व्यक्ति को खिला दिया जाता है, वह प्रेम करने लगता है।

(७) स्वाति- इस नक्षत्र वाले दिन 'हरड़' के वृक्ष का बाँदा लाकर अपने पास रखने से राज-सम्मान मिलता है।

(८) इस नक्षत्र वाले दिन 'बेर' के वृक्ष का बाँदा लाकर हाथ में चाणा करने पर जिस व्यक्ति से जो वस्तु माँगी जाती है, वह उसे देने से मना नहीं करता।

(९) इस नक्षत्र वाले दिन 'नीम' के वृक्ष का बाँदा हाथ में चाणा करने वाला मनुष्य अदृश्य हो जाता है।

(१०) विशाखा- इस नक्षत्र वाले दिन 'महुवे' के वृक्ष का बाँदा खिला चाणा करने वाले मनुष्य को शक्ति प्राप्त होती है।

(११) अनुराधा- इस नक्षत्र वाले दिन 'कनेर' के वृक्ष का बाँदा दाँये हाथ में बाँधने से शत्रु शत्रुता को त्याग देता है। इसी नक्षत्र में 'रोहितक' का बाँदा मुँह में रखने वाला अदृश्य हो जाता है।

(२०) मूल - इस नक्षत्र वाले दिन 'खजूर' के वृक्ष का बाँदा दाँये हाथ में बाँधने से शत्रु पर विजय प्राप्त होती है।

(२१) पूर्वाषाढ़ा - इस नक्षत्र वाले दिन 'धूवी' के वृक्ष का बाँदा दाँये हाथ पर बाँधने से व्यापार में लाभ होता है।

(२२) उत्तराषाढ़ा - इस नक्षत्र वाले दिन अशोक के वृक्ष का बाँदा हाथ में बाँधने या मुँह में चाणा करने से मनुष्य उत्साहित हो जाता है।

(२३) शतभिषा - इस नक्षत्र वाले दिन सुपारी के वृक्ष का बाँदा एक ऐसी वाली गाय के दूध में घिस कर पीने से वृद्धावस्था दूर बनी रहती है।

(२४) आश्लेषा - इस नक्षत्र वाले दिन 'अर्जुन' के वृक्ष का बाँदा लाकर बकरी के मूत्र में घिस कर जिस व्यक्ति के सिर पर डाल दिया जाता है, वह आकर्षित होता है। यदि सोमवार को यह नक्षत्र हो तो उस दिन बहेड़े का पत्ता लाकर सिंदूरी में रखने से मनुष्य अक्षम बना रहता है।

(२५) पूर्वा फाल्गुनी - इस नक्षत्र वाले दिन 'बहेड़ा' के वृक्ष का बाँदा लाकर चूर्ण करें। उस चूर्ण को खाने से खून-पेल की बाधा दूर हो जाती है।

(२६) उत्तरा फाल्गुनी - इस नक्षत्र वाले दिन 'आम' के वृक्ष का बाँदा दाँये हाथ में बाँधने से पानी-पानी में पेल होता है तथा सब लोग वशीभूत होते हैं।

टिप्पणी - उक्त प्रयोगों को सिद्ध करने से पूर्व निम्नलिखित विधि का पालन करें —

म.

विधि - किसी शुभ मुहूर्त में स्नानादि से निवृत्त हो, श्वेत वस्त्र धारण कर पूर्व दिशा की ओर मुँह करके प्रातः काल, श्वेत स्फटिक की माला पर निम्न लिखित मन्त्र का १० हजार की संख्या में जप का सिद्ध करले। जब मन्त्र सिद्ध हो जाय तो पूर्वोक्त नक्षत्रों में वृक्ष का बाँदा लाकर, उसे इस सिद्ध-मन्त्र से अभिमन्त्रित करे, तदुपरान्त प्रयोग में लाये तो मनोकामना सिद्ध होती है। मन्त्र निम्नानुसार है—

मन्त्र : "ॐ नमो भगवते रुद्राय मृत्यार्के संजिवनाय मम शरीरं अमृतं कुरु कुरु स्वाहा।" यह मन्त्र १०,००० की संख्या में जपने से सिद्ध होता है।

रुद्राक्ष के औषधीय-प्रयोग

'रुद्राक्ष-कल्प' में रुद्राक्ष के सम्बन्ध में बहुत कुछ लिखा जा चुका है। यहाँ रुद्राक्ष के कतिपय औषधीय प्रयोगों तथा अन्य विषयों का उल्लेख किया जा रहा है -

(१) रक्तचाप (हाईब्लड प्रेशर) में सुरक्षा के लिए रुद्राक्ष के बड़े दानों की माला हृदय तक लटकती हुई धारण करें। माला का एक अथवा अधिक दाने हृदय-स्पर्श करते रहें, यह आवश्यक है।

(२) चेचक निकलने पर, तीन दिनों तक बासी-जल के साथ, रुद्राक्ष एवं कालीमिर्च को समभाग पीस कर, एक से तीन माशे तक की मात्रा में रोगी को सेवन कराने से रोग शीघ्र ही शान्त मिलता है।

(३) रुद्राक्ष के गूदे का सेवन 'अपस्मार रोग' में लाभकारी माना जाता है।

(४) दशमुखी रुद्राक्ष को दूध के साथ सिल पर दवाँती के रोगी को दिन में

तीन बार चटाया जाय तो पुरानी खाँसी भी दूर हो जाती है।

(५) छः मुखी रुद्राक्ष धारण करने से स्मरण-शक्ति, मूर्च्छा तथा ज्वर आदि रोगों में लाभ होता है।

(६) चतुर्दशी रुद्राक्ष को दूध में मिला कर 20 दिनों तक पीने से मन-मस्तिष्क संबंधी सभी विकार दूर होते हैं तथा स्मरण-शक्ति की वृद्धि होती है।

अथ षट्-कर्म वर्णन

(१) शान्ति करण, (२) वशीकरण, (३) स्तम्भन, (४) विद्वेषण, (५) उच्चाटन और (६) मारण— ये छः कर्म कहे गए हैं। इन्हें सिद्ध करने हेतु विभिन्न तान्त्रिक-प्रयोग किये जाते हैं। इन कर्मों को करने के पूर्व प्रारंभिक विषयों को जान लेना आवश्यक है, वे निम्नानुसार हैं—

काल तथा ऋतु निर्णय— 'वशीकरण' के लिए तथा 'आकर्षण' कर्म के लिए वसन्त ऋतु, 'विद्वेषण' के लिए ग्रीष्म ऋतु, 'स्तंभन' के लिए वर्षा ऋतु, 'मारण' के लिए शिशिर ऋतु तथा 'शान्ति-कर्म' के लिए हेमन्त ऋतु प्रशस्त मानी गई है। तान्त्रिक-कर्मों के लिए ये ऋतुएँ सामान्य ऋतुओं (वर्ष में दो-दो महीने की एक-एक ऋतु) के अनुसार न होकर प्रत्येक दिन में निम्नानुसार विद्यमान रहती हैं—

दोपहर से पहले वसन्त, मध्याह्न के समय, तीसरे पहर वर्षा, उदय के समय शरद, आधी रात में शरद तथा उषःकाल में हेमन्त ऋतु होती है। इसी ऋतु क्रम के अनुसार सभी तान्त्रिक-कर्मों को करना चाहिए। समयानुसार अर्थात् ऋतु के अनुसार न किये जाने वाले मन्त्र सिद्धि को प्राप्त नहीं होते।

तिथि-निर्णय- सप्तमी तिथि को वश्यीकरण, तृतीया तथा त्रयोदशी को आकर्षण, द्वितीया और दशमी को उच्चाटन, चतुर्थी एवं चतुर्दशी को स्तम्भन कर्म करे। स्तम्भन कर्म प्रतिपदा को भी किया जा सकता है। नवमी तथा अष्टमी को मोहन-कर्म एवं एकादशी, द्वादशी, पंचमी तथा द्वादशी को मारण-कर्म करना चाहिए।

वार-निर्णय- शुक्रवार में लक्ष्मी (धन-प्राप्ति के प्रयोग), शनिवार को वशीकरण, रविवार को मारण, बुधवार को उच्चाटन तथा मंगलवार को विद्वेषण-कर्म शुभ होता है।

नक्ष-निर्णय- स्तम्भन, मोहन तथा वशीकरण माहेन्द्र एवं वारुण मण्डल में करने के सिद्ध होते हैं। विद्वेषण तथा उच्चाटन अग्नि एवं वायु-तत्त्वों के उदय में करने चाहिए। ज्येष्ठा, उत्तराषाढा, अनुराधा तथा रोहिणी- ये सब 'माहेन्द्र-मण्डल' के नक्षत्र हैं। उत्तराभाद्रपदा, मूल, शतभिषा, पूर्वभाद्रपदा, और आश्लेषा- ये सब 'वारुण-मण्डल' के नक्षत्र हैं। पूर्वाषाढा नक्षत्र को भी उक्त कर्म के लिए सिद्धिदायक कहा गया है। स्वाती, हस्त, मृगशिरा, चित्रा, उत्तराफाल्गुनी, पुष्य तथा पुनर्वसु- ये 'वायु-मण्डल' के नक्षत्र हैं। अश्विनी,

भरणी, आर्द्रा, धनिष्ठा, श्रवण, मघा, विशाखा, कृत्तिका, पूर्वाफाल्गुनी तथा रेवती- ये सब 'वायुमण्डल' के नक्षत्र हैं।

अङ्गुलि निर्णय- शान्ति, पुष्टि तथा अभिचार कर्म क्रमशः तर्जनी आदि अंगुलियों से करने चाहिए। अँगूठे द्वारा सभी शुभ कर्म करने चाहिए अर्थात् अँगूठे और तर्जनी द्वारा शान्ति कर्म, मध्यमा अँगुली तथा अँगूठे द्वारा पौष्टिक-कर्म एवं अनामिका अँगुली तथा अँगूठे द्वारा अभिचार-कर्म करने चाहिए।

औषधि-बलाबल निर्णय- विधि-पूर्वक मन्त्र द्वारा लाई गई औषध सफल होती तथा विधि एवं मन्त्र के बिना लाई गई औषध सामान्य-लकड़ी की भाँति निष्फल होती है। एकान्त तथा अच्छे वन में स्थित औषध (वनस्पति) बलवान् तथा कार्य-सिद्धि कारक होती है। बाँबी, कूप, मार्ग के वृक्ष के नीचे उत्पन्न तथा देवालय एवं श्मशान में उत्पन्न औषध (जड़ी-बूटी आदि) को यदि विधि पूर्वक लाया जाय तो भी वह सिद्धि दायक नहीं होती। पानी से गली हुई, असमय में उत्पन्न, कीड़ों से खाई गई, अत्यधिक कम या अधिक औषध भी सिद्धि-प्रद नहीं होती।

मूल-ग्रहण विधि- किसी भी औषध (वनस्पति) की जड़ आदि को ग्रहण करने की विधि यह है कि प्रातःकाल उठ कर, स्नानादि सहित शिव-पूजन कर, शुद्ध-व्रती होकर ही सभी औषधियों को ग्रहण करना चाहिए। इस हेतु सर्वप्रथम वनौषध के पास पहुँच कर आगे लिखे मन्त्रों का उच्चारण करते हुए

अभिमन्त्रण, नमस्कार तथा खनन कार्य करने चाहिए। वृक्ष को अभिमंत्रित करने का मन्त्र इस प्रकार है—

अथ अभिमन्त्रण-मन्त्र— "ॐ वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपाः।
अपसर्पन्तु ते सर्वे वृक्षादस्मात्ममाज्ञया॥"

इसके पश्चात निम्न लिखित मन्त्र का उच्चारण करते हुए वनस्पति को नमस्कार करे—

अथ नमस्कार-मन्त्र— "ॐ नमस्तेऽमृत सम्भूते बलवीर्यविवर्द्धिनि।
बलमायुश्च मे देहि पापान्मे आहि दूरतः॥"

इसके पश्चात निम्न लिखित श्लोकों तथा मन्त्रों का उच्चारण करते हुए खनन करे (खोदे)—

अथ खनन-मन्त्र— "येन त्वां खनते ब्रह्मा येन त्वां खनते भृगुः।
येन हीन्द्रोऽप्य वहणो येन त्वामपचक्रमे॥
तेनाहं खनिष्यामि मन्त्रपूतेन पाणिना।
मां पापे मानि पापिते मा ते तेजोन्यथा भवेत्॥
अत्रैव तिष्ठ कल्याणि मम कार्यकरी भव।
मम कार्ये कृते सिद्धे ततः स्वर्गं गमिष्यसि॥

उक्त श्लोकों का उच्चारण करने के बाद रविवार को जब पुष्य-नक्षत्र हो अथवा पुष्यार्क योग हो, तब— "ॐ ह्रीं चण्डे हूं फट् स्वाहा"— इस मन्त्र को पढ़ते हुए औषध को उखाड़े, फिर— "ॐ ह्रीं क्रौं फट् स्वाहा"— इस मन्त्र का उच्चारण करते हुए मूलिका-छेदन (जड़ को काट कर अलग करना) करे।

अथ वटी-ग्रहण विधि— वटी ग्रहण करने से पूर्व आगे लिखे मन्त्र को सात बार जपना चाहिए—

अथ वन्ध-ग्रहण मन्त्र- "ॐ वनदण्डे महादण्डाय स्वाहा। ॐ मुद्गी (मुद्गरी) कपाल मालिनी स्वाहा।"
उक्त दोनों मंत्रों को सात-सात बार जपकर बन्ध ग्रहण करने से कार्य-सिद्धि होती है।
इस प्रकार सब क्रियाओं की सिद्धि में ऋतु-काल आदि का विचार करना आवश्यक है।

अथ सर्वजना वशीकरण प्रयोग

अब वशीकरण सम्बन्धी प्रयोगों को कहते हैं। सर्वप्रथम सब लोगों को वश में करने वाले मन्त्रों तथा उनकी प्रयोग-विधियों को बताते हैं।

(१) सर्वजन-वशीकरण मन्त्र- "ॐ क्रों जों व्रों"— कहीं-कहीं इस मन्त्र का पाठ-भेद "म्रौं ज्रौं व्रों"— भी मिलता है। इस मन्त्र को ५०० बार जपने से साधक- राजा, पुत्र, मित्र, बान्धव तथा सगोत्री एवं जो आप: वशीभूत हो, ऐसे मनुष्य भी वशीभूत हो जाते हैं। मन्त्र-जपने से पहले साधक- व्यक्ति को देख लेना चाहिए तथा उसका नाम भी जान लेना चाहिए।

(२) सर्वजन वशीकरण मन्त्र- "ॐ ह्रीं क्लीं कलिकुण्ड स्वामिनी अमृत वक्र अमुकं जृम्भय मोहय स्वाहा।"— इस मन्त्र में जहाँ 'अमुकं' शब्द आया है, वहाँ साधक-व्यक्ति के नाम का अनुस्वार सहित उच्चारण करना चाहिए। यह मन्त्र केवल २१ बार जपने से ही सिद्ध हो जाता है। जब मन्त्र सिद्ध हो जाए, तब विभिन्न कार्यों के लिए इसका निम्नानुसार प्रयोग करें। स्मरणीय है कि प्रयोग करने से पूर्व भी हर बार इस मन्त्र को २१ बार जपना चाहिए। प्रयोग-विधियाँ आगे लिखे अनुसार हैं—

१- उड़द, शंखपत्र, मंजीठ, कुंकुम और तगर- इन सब वस्तुओं को मन्त्र से अभिमंत्रित कर, खान-पान की वस्तु में मिला कर साध्य-व्यक्ति को पिला देने अथवा उसके शरीर से स्पर्श कर देने से ही वह वशीभूत हो जाता है।

२- पुष्य नक्षत्र में सिंही की जड़ लाकर, उसे अभिमंत्रित करो, फिर उसे अपनी कमर में बाँध ले तो साध्य-व्यक्ति तथा अन्य लोग भी, देखने मात्र से ही वशीभूत हो जाते हैं।

३- कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी तिथि को रात्रि के समय श्मशान से महानील को उखाड़ कर ले आये, फिर नर-तैल से उसका अंजन करो तो लोग वशीभूत होते हैं। इसी की मूल में अपने वीर्य को मिला कर अंजन करने से भी यही फल होता है। इसकी जड़ को हाथ में बाँधने से सर्वसिद्धि होती है।

४- सोमवार को जब पुष्य नक्षत्र हो, उस दिन अलर्कदण्डी की जड़ लाकर उसे स्त्री को मन्त्र से अभिमंत्रित कर, आँख में आँजे तो सभी जीव वश में होते हैं।

५- उल्लू की आँख, चीबवार (एक पक्षी) तथा वंशलोचन इन्हें आँख में आँजने से सब लोग वशीभूत होते हैं।

टिप्पणी - उक्त सभी योगों की औषधियों [तथा वस्तुओं] को पूर्व कथित सिद्ध मन्त्र से अभिमंत्रित करने के बाद ही उपयोग में लाना चाहिए। स्मरणीय है कि सभी मन्त्रों को भक्ति-पूर्वक गुरु से ग्रहण करना चाहिए, तभी कार्य-सिद्धि होती है, अन्यथा नहीं होती। वशीकरण सम्बन्धी अन्य मन्त्र आगे मिलेंगे। इन मन्त्रों को भी गुरु से ग्रहण करके ही सिद्ध करना चाहिए तथा सिद्ध हो जाने पर उपयोग में आने वाली वस्तुओं को सिद्ध-मन्त्र द्वारा

अभिमंत्रित कर लेना चाहिए अन्यथा वांछित-फल आपको नहीं होगा। अब मन्त्र निम्न लिखित हैं—

(३) सर्वजन वशीकृता मन्त्र - "ॐ नमो महायक्षिणी अमुकं वश मानय स्वाहा।"

उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकं' शब्द आया है, वहाँ साध्य-व्यक्ति के नाम का उच्चारण करना चाहिए। यह मन्त्र १०,००० की संख्या में जपने से सिद्ध होता है। इस मन्त्र का उपयोग पूर्वमन्त्र की भाँति करें।

(४) सर्वजन वशीकरण मन्त्र - "ॐ नमः कटविकटचोर रूपिणी स्वाहा।"

उक्त मन्त्र १०,००० की संख्या में जपने से सिद्ध होता है। मन्त्र-सिद्ध होजाने पर आवश्यकता के समय इसी मन्त्र द्वारा ७ बार भोजन को अभिमंत्रित करके, ऐसे जिसके नाम से रक्खा जाय, वह अवश्य वश में हो जाता है। भोजन-पिण्ड को लगभग ७ मिनो तक अभिमंत्रित करके खाना चाहिए।

(५) सर्वजन वशीकरण मन्त्र - "ॐ वशमुखी राजमुखी स्वाहा।"

इस मन्त्र को पहले १०,००० जप का सिद्ध कालें। फिर आवश्यकता के समय इस मंत्र को पढ़ कर सात बार अपना मुँह धोने से साध्य-व्यक्ति देखते ही वशीभूत हो जाता है।

(६) सर्वजन वशीकरण मन्त्र "ॐ राजमुखि वशमुखि स्वाहा।"

इस मन्त्र को १०,००० बार जप कर सिद्ध कालें। फिर आवश्यकता के समय मन्त्रोच्चारण पूर्वक बाँये हाथ में तेल लेकर, कनिष्ठा अँगुली से तीन बार अभिमंत्रित करे। फिर मूल-मंत्र को तीन बार पढ़ कर, प्रातःकाल शय्या में स्थित रहते हुए ही उसे मुख तथा केश आदि से लगाये तो सब मनुष्य वश में होते हैं तथा व्याघ्र आदि भी उसे हानि नहीं पहुँचाते।

म.

(७) सर्वजन वशीकरण मन्त्र – "ॐ चामुण्डे जय जय स्तंभय स्तंभय जंभय जंभय मोहय मोहय सर्वसत्त्वानां मः स्वाहा।"

उक्त मन्त्र को ३०,००० जप का सिद्ध करलें। सिद्ध-मन्त्र द्वारा पुष्प को अभिमंत्रित करके जिसे दिया जाताहै, वह वशीभूत हो जाता है। इतना ही नहीं, उसे देखते ही लोग वश में होजाते हैं।

(८) सर्वजन वशीकरण मन्त्र – "ऐं सौं उं क्षोभय भगवति स्वाहा।"

यह मन्त्र २०,००० जपने से सिद्ध होता है, इस मन्त्र के सिद्ध होजाने पर, पुष्यनक्षत्र में पुनर्नवा की जड़ लाकर, उसे ७ बार सिद्ध-मन्त्र से अभिमंत्रित कर हाथ में बाँधने वाला सबको वश में करता है। (अथवा) अपामार्ग (ओंगा या चिरचिटा) की जड़ को गोरोचन से पीस कर, इस मन्त्र से अभिमंत्रित करे, फिर उसका तिलक लगा कर स्त्री-कन्या के सामने पहुँचने पर वह वशीभूत होताहै। अन्य लोग भी वश में होजाते हैं।

(९) सर्वजन वशीकरणमन्त्र – "ॐ नमः कन्दर्पशर विजालिनि मालिनि सर्वलोक वशंकरि स्वाहा।"

यह मन्त्र १००८ बार जपने से सिद्ध होता है। कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को तथा अष्टमी को व्रत रख कर, तथा बलि देकर ईख की जड़ को उखाड़ कर चूर्ण तथा करे। फिर उस चूर्ण को उक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर, पान में रख कर जिसे खिला दिया जायेगा, वह अवश्य वशीभूत हो जाएगा। इसी चूर्ण को स्नान के जल में मिला कर स्नान करने अथवा शरीर में लेप करने से वशीकरण की शक्ति ज्यादा होती है। गोरोचन तथा सहदेई को मिला कर पीसले, फिर उस चूर्ण को अभिमंत्रित करके तिलक करे अथवा मस्तक पर धारण करें तो लोग वश में होते हैं।

तं. 333

(१०) सर्वजन वशीकरण मन्त्र - 'ॐ नमो भगवति मातङ्गेश्वरी सर्वमुखरञ्जनि सर्वेषां महामाये मातङ्गि कुमारिके लट लट जिह्वे (मनाता से हल हल जिह्वे) सर्वलोक वशंकारि स्वाहा।"

यह मन्त्र १००८ बार जपने से सिद्ध हो जाता है। मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर प्रयोग में लाई जाने वाली वस्तुओं को इसी मन्त्र से ७ बार अभिमन्त्रित कर लेना चाहिए। इस मन्त्र से अभिमंत्रित सहदेई की जड़ को अन्य स्त्रियों के द्वारा जिस साधक-स्त्री के मुख में डलवा दे अथवा कमर में बँधवा दे, वह वशीभूत हो जाती है। २- श्वेत विष्णुक्रान्ता की जड़ को चन्दुगुहा में उखाड़ लाये, फिर उसे पीस कर, मन्त्र से अभिमन्त्रित कर आँखों में आँजने से त्रिलोकी वश में हो जाती है। ३- विष्णुक्रान्ता की जड़ को गोरोचन के साथ पीस कर अभिमंत्रित करे, फिर उससे मस्तक पर तिलक लगाये तो सकल वश में हो। ४- कृष्ण पक्ष की त्रयोदशी को सफेद घुंघची की जड़ लाकर, उसे अभिमंत्रित कर, पान में रख कर जिसे खिला दिया जाता है, वह वशीभूत हो जाता है।

(११) सर्वजन वशीकरण मन्त्र - "ॐ वज्र किरते त्रिभे रक्ष मनेममाध्य अमृतं कुरु कुरु स्वाहा।"

यह मन्त्र १,००० बार जप करने से सिद्ध हो जाता है। मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर मैनसिल और गोरोचन को पान के रस के साथ पिस कर तिलक लगाने के बाद जिससे वार्तालाप किया जाय, वह वश में हो जाता है। यदि उक्त तिलक में स्वर्ण भी मिला लिया जाय तो स्त्री-पुरुष देखते ही वश में हो जाते हैं। यह अवश्य ही वशीकरण काक प्रयोग है। इसकी अन्य प्रयोग-विधियाँ आगे लिखे अनुसार हैं —

(क) हृदय, चरण, नेत्र तथा नासिका – इनके मल (मैल) को सुपारी के साथ अभिमन्त्रित करके जिसे खिलाया जाय, वह जीवन भर वशीभूत बना रहता है।

(ख) नील-कमल की जड़ को पूर्वोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर, गोरोचन के साथ ताँबे के पात्र में पीस कर दोनों आँखों में आँजने से त्रिभुवन सबका प्रिय बनजाता है। देखने वाले वशमें होते हैं।

(ग) नील-कमल की जड़ को शहद के साथ पीस कर अभिमंत्रित करे। इस का तिलक लगाने से उत्तम वशीकरण होता है। इसी को पान में रख कर जिसे खिलाया जाता है वह वशीभूत हो जाता है।

(१२) सर्वजन वशीकरण मन्त्र – "ॐ पिङ्गलाये नमः।"

नील-कमल की जड़ तथा रञ्जन की जड़ को पीस कर उक्त मंत्र से अभिमंत्रित कर, जिसे भी पान में रख कर खिलादिया जाता है, वह वशीभूत हो जाता है।

टिप्पणी - उक्त मन्त्र को १०,००० की संख्या में जप कर सिद्ध कर लेना चाहिए। फिर निम्नलिखित योगों में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं को सिद्ध-मन्त्र से १०८ बार अभिमन्त्रित कर प्रयोग में लाने से वशीकरण होता है। योग निम्नानुसार हैं –

१- लाल गिद्ध के दोनों नेत्र तथा काले उल्लू का नेत्र लेकर, अथवा काले उल्लू को ही लेकर उसे तेल में भिगोये, फिर सावधानी रखते हुए, उसे शहद से लपेट, बत्ती बनाकर काजल पारे। उस काजल को सिद्ध-मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित कर, आँखों में लगाने से त्रिलोकी वश में होती है।

२- देवदाली (घघर बेल) तथा सरसों इन दोनों को पीस कर गोली बनाये, फिर उसे

मन्त्र से अभिमंत्रित कर, मुख में रखे तो ऐसा साधक सबको प्रिय होता है।

३- भांगरे की जड़ को अभिमंत्रित कर, मुँह में रखने वाला सबको प्रिय होता है।

४- रोहिणी नक्षत्र में बगद के बांदा को लाकर अभिमंत्रित करे तथा दाएं में धारण करे तो सब लोग वशीभूत होते हैं।

५- कश्मीरी के शर, नगर, कूठ तथा हरीताल - इन सबको समभाग लेकर अनामिका अँगुली के रक्त के साथ पीसे तथा अभिमंत्रित करने के बाद अपने ललाट पर तिलक लगाये तो देखने वाले सभी लोग वश में होजाते हैं।

६- श्वेतविष्णुक्रान्ता, भांगरा, गोरखमुंड की जड़ तथा गोरोचन - इन सबको पीस कर गोली बनाले, फिर उसे अभिमंत्रित कर, छिले और अपने मस्तक पर तिलक लगाये तो सब वशीभूत हों।

७- पुष्य नक्षत्र में श्वेत आक की जड़ लाकर उसे बकरी के मूत्र में पीस कर गोली बनाये। फिर मन्त्र से अभिमंत्रित कर, उसका ललाट पर तिलक लगाये तो लोग वशीभूत होते हैं।

८- भेड़ के रक्त के साथ सफेद आक की जड़ को पुष्य नक्षत्र में पीसे तथा उसमें काजल डालकर अभिमंत्रित करे। फिर उसे अपनी आँखों में आँजने वाला साधक सबको वश में करेगा।

९- श्रवण नक्षत्र में खुदकर मूल की जड़ को लाये, फिर उसे तगर के साथ अपनी भुजा अथवा कण्ठ में धारण करे तो देखने वाले सब लोग वश में हों।

१०- कृष्णक्रान्ता (कोयल) अर्थात् काली अपराजिता की जड़ को पुष्य नक्षत्र

में लाकर चूर्ण करे, फिर उसमें गाय का घी मिला कर काजल तय्यार करे। इस काजल को अभिमंत्रित करके आँख में आँजने वाले को सब लोगों को वश में करने की शक्ति प्राप्त हो जाती है।

११- जियापोता के वृक्ष के कोमल पत्तों को पीस कर, उसमें गोरोचन मिलाये। फिर उसका मस्तक पर तिलक लगाये तो देखने वाले लोग उसे प्रेम करने लगते हैं।

१२- सफेद विष्णुक्रान्ता की जड़ तथा सफेद गुड़- इन दोनों को पीस कर अभिमंत्रित करे, फिर उसका नासिका (नाक) के अग्रभाग में तिलक लगाये तो वशीकरण होता है।

१३- मंजीठ, मोथा, वच, अकरकरा की जड़ तथा अपने शरीर का रुधिर एवं इन सबके बराबर कूठ लेकर, सबको पीस के तथा अभिमंत्रित करने के बाद अपने ललाट पर तिलक लगाये तो देखने वाले सब लोग वशीभूत होते हैं।

१४- शुद्ध किया हुआ पारा, शाहद, लज्जावन्ती, हल्दी तथा अपने शरीर का मल- इनका लेपन, अञ्जन अथवा तिलक सभी युक्तियों को वश में करने वाला होता है।

१५- कुड़जटा, लगा, मेढासिंगी का पंचांग तथा अपने शरीर का मल- इन सब को एकत्र करके पीसले, फिर उसे अभिमंत्रित करे एवं मंगलवार के दिन उससे टेढ़ा तिलक लगाये तो तीनों लोक देखते ही वश में हो जाते हैं।

१६- गोरोचन, कमल के पत्ते, शिखंडु तथा लाल चन्दन- इन सबको एकत्र करके पीस ले, फिर अभिमंत्रित करके आँखों में आँजे तो देखने वाले वशीभूत होजाते हैं।

१७- तालीसपत्र, कूठ, लगर- इन सबको पीस का लेप तयार करें, फिर रेशमी कपड़े की दो बत्ती बनाकर उसमें इन्हें भरे तथा बत्ती को सरसों के तेल से युक्त पुरुष के कपाल की हड्डी में डालकर काजल पारें। फिर उसे आँखों में आँज कर जिसे देखें, वही वशीभूत हो।

१८- औंरे (आम) के दोनों पत्ते, तोते का मांस, अनामिका अंगुली का रक्त, कान का मैल तथा अपना थूक- इन सबको एकत्र कर अभिमंत्रित करें, फिर इसका लेप अथवा अंजन करने से तत्काल ही वशीकरण होता है।

अथ राजा वशीकरण प्रयोग

राजा अथवा राजाधिकारी को वश में करने वाले प्रयोग निम्नलिखित हैं-

मन्त्र- "ॐ ह्रीं स: अमुकं मे वशमानय स्वाहा।"

टिप्पणी- उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुक' शब्द आया है, वहाँ साध्य-व्यक्ति के नाम का उच्चारण करना चाहिए। यह मन्त्र १००८ बार जपने से सिद्ध होता है। जब मन्त्र सिद्ध हो जाए तब प्रयोज्य-वस्तुओं को सिद्ध-मन्त्र से ७ बार अभिमंत्रित करने के बाद प्रयोग में लायें-

१- कुंकुम, चन्दन तथा गोरोचन समभाग लें, फिर उसमें भीमसेनी कपूर मिला कर, गाय के दूध के साथ पीसें, तदुपरान्त लेप को सिद्ध-मन्त्र द्वारा ७ बार अभिमंत्रित करके अपने ललाट पर तिलक लगा कर साध्य-व्यक्ति के समीप पहुँचें तो वह देखते ही वशीभूत हो जाएगा।

2- मरणी अथवा युध्य नक्षत्र में चम्पा के बाँदा को लाकर 0 वासमेन्त से अभिमन्त्रित करे, फिर उसे हाथ में बाँधकर राजा अथवा राज्याधिकारी के समीप पहुँचकर, उसे संबंधित व्यक्ति को दिखाये तो देखने वाला राजा या राज्याधिकारी वशीभूत हो जाता है।

3- सुदर्शन की जड़ को पूर्वोक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर, हाथ में बाँधने से भी राजा का स्टेट आपा होता है।

अथ स्त्री-वशीकरण प्रयोग

अब स्त्री-वशीकरण सम्बन्धी मन्त्रों तथा प्रयोगों का उल्लेख किया जाता है -

(1) स्त्रीवशीकरण मन्त्र - "ॐ नमः कामाक्षी देवी 'अमुकी' मे वशं कुरु कुरु फट् स्वाहा।"

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकी' शब्द आया है, वहाँ साधक-स्त्री के नाम का उच्चारण करना चाहिए। यदि सर्व-सामान्य के लिए मन्त्र सिद्ध करना हो तो वहाँ मन्त्र-जप करते समय 'अमुकी' शब्द को हटा देना चाहिए।

विधि - उक्त मन्त्र यदि किसी विशेष-स्त्री के उद्देश से सिद्ध किया जाय, तो सवा लाख की संख्या में जपना चाहिए और यदि सर्व सामान्य (छोटे जो) के लिए सिद्ध किया जाय तो दस लाख की संख्या में जपना चाहिए। मन्त्र-जप शुक्रवार की रात से आरंभ करना चाहिए तथा जिस दिन जप पूर्ण हो जाय, उस दिन विकलांग तथा अपाहिज लोगों को अपनी सामर्थ्य के अनुसार अन्न आदि बाँट देना चाहिए। मन्त्र के सिद्ध

होजाने पर निम्नानुसार प्रयोग में लाएं। स्मरणीय है कि निम्न लिखित प्रयोग विशेष-स्त्री के उद्देश्य से जपे गये सम्मोहन मन्त्र के लिए हैं—

१- साधक-स्त्री के बाँये पाँव की मिट्टी शनिवार के दिन लेकर उसके द्वारा एक पुतली का निर्माण करें, फिर उस पुतली-स्त्री की भग से अपने शिश्न का तीन बार स्पर्श कराएं, तदुपरान्त पुतली के माथे पर सिन्दूर की बिन्दी लगाएं, फिर उसे काले रंग के कपड़े में लपेट कर एकसौ आठ बार मन्त्र पढ़ कर अभिमंत्रित करें। फिर उसे अपनी प्रेमिका के घर के द्वार पर अथवा उसके आने-जाने के मार्ग में गाड़ दें, ताकि आते-जाते समय प्रेमिका का पाँव उस स्थान पर पड़े। पुतली गाड़ने के दिन से एक सप्ताह तक प्रतिदिन रात्रि के समय १००८ की संख्या में मन्त्र जप करते रहें। इस प्रयोग से साधक-स्त्री आठवें दिन ही साधक के पास स्वयं चली आती है।

२- मंगलवार के दिन किसी खाद्य-वस्तु में अपना वीर्य मिला कर, उसे १०८ बार अभिमंत्रित कर साधक-स्त्री को खिलादें तो वह सदा के लिए वशीभूत हो जाती है।

(३) स्त्री वशीकरण मन्त्र- 'ॐ नमो भगवते रुद्राय चामुंडे अमुकी मे वशमानय स्वाहा"

टिप्पणी- उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकी' शब्द आया है, वहाँ साधक-स्त्री के नाम का उच्चारण करना चाहिए। यह मन्त्र १००८ बार जपने से सिद्ध हो जाता है। इसकी प्रयोग विधियां निम्नानुसार हैं। किसी भी प्रयोग को काम में लाने से पूर्व प्रयोज्य-वस्तुओं को मन्त्र द्वारा १०८ बार अभिमंत्रित कर लेना चाहिए।

२- पुष्य नक्षत्र में काले धतूरे के फूल, भरणी नक्षत्र में उसके फल, विशाखा नक्षत्र में उसकी शाखा, हस्त नक्षत्र में उसके पत्ते तथा मूल नक्षत्र में उसकी जड़ लाकर, सबको कपूर मिला कर पीसे, फिर उसमें कुंकुम तथा गोरोचन मिला कर, मन्त्र से अभिमन्त्रित कर मस्तक पर तिलक लगा कर साधक - स्त्री के सम्मुख पहुँचे तो वह देखते ही वशीभूत होजाती है, चाहे अप्सरा ही क्यों न हो।

२- काकजंघा, वन्ध्या तथा कुछ में अपना वीर्य तथा रुधिर मिला कर पीसे, फिर उसे पूर्ववत मन्त्र से अभिमंत्रित कर, जिस स्त्री को खिला दिया जाय, वह मृत्यु पर्यन्त साथ देती है।

(३) स्त्री-वशीकरण मन्त्र - "ॐ नमः क्षिप्रकामिनि अमुकीं मे वशमानय स्वाहा।"

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकी' शब्द आया है, वहाँ साधक-स्त्री के नाम का उच्चारण करना चाहिए।

विधि - उक्त मन्त्र १००८ बार जपने से सिद्ध होजाता है। मन्त्र के सिद्ध होजाने पर इस मन्त्र को ७ बार पढ़ कर, सात बार पानी से अपना मुँह धोकर, एक गिलास में पानी भरे। तत्पश्चात साधक-स्त्री का नाम लेकर उस जल को सात बार मन्त्र से अभिमंत्रित कर स्वयं पी जाय तो साधक-स्त्री अवश्य ही वश में होजाती है।

(४) स्त्री-वशीकरण मन्त्र - " ॐ हूं स्वाहा ।"

विधि - उक्त मन्त्र १०,००० बार जपने से सिद्ध हो जाता है। मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर विष्णुक्रान्ता की जड़ को अभिमंत्रित कर, पान में रखकर, साधक-स्त्री को खिला देने से, यदि वह 'अवश्या' हो तो भी वशीभूत हो जाती है। यह मन्त्र साधन करने से अवश्य फल देने वाला है, अतः इसको अवश्य सर्वदा सिद्ध करना चाहिए। इस के अन्य उपयोग निम्नानुसार हैं -

१- अपना तथा स्वाधक-स्त्री का नाम लेते हुए किसी फूल को उक्त मन्त्र से सात बार अभिमंत्रित करके जिस स्त्री के हाथ में दिया जाता है, वह साधक के वशीभूत हो जाती है।

२- विशाखा नक्षत्र में मंगलवार के दिन दारुहल्दी की जड़ लाकर, उसे उक्त मन्त्र से अभिमंत्रित कर, हाथ में बाँधने से श्रेष्ठ स्त्रियाँ भी वशीभूत हो जाती हैं।

(५) स्त्री-वशीकरण मन्त्र - "ऐं पिं स्यां क्लीं कामपिशाचिनी क्रीं अमुकीं ग्राह्य ग्राह्य कामेन मम रूपेण नरनैर्विदारय विदारय विद्रावय विद्रावय ब्रह्मण ब्रह्मण क्रीं स्वाहा।"

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकीं' शब्द आया है, वहाँ साधक-स्त्री के नाम का उच्चारण करना चाहिए। यह मन्त्र १०,००० की संख्या में जपने से सिद्ध हो जाता है।

विधि - उक्त मन्त्र को कामासक्त - चित्त के व्यक्ति के समक्ष कम से कम जप
से साधक - स्त्री ही क्यों, संसार भर को अपने वश में किया जा सकता है। ३। नागकुसुम, शिलाजतु, नख, पद्मकेसर
तथा जायफल - इनके समभाग चूर्ण लेकर, सबको उक्त मंत्र से अभिमंत्रित कर धूप देने से साध्या वशीभूत होती है।

(६) स्त्री-वशीकरण मन्त्र - "ॐ मूली मूली महामूली सर्व संक्षोभण संक्षोभण
सर्व उपद्रवेभ्यः स्वाहा।"

विधि - उक्त मन्त्र को पहले १०८ बार जप कर सिद्ध कर ले, तदुपरान्त इसी मन्त्र
से धूप को अभिमन्त्रित कर, उसकी धूप अपने शरीर पर दे, तत्पश्चात् साधक - स्त्री के सामने रखे तो
वह संदेश के लिए वश में हो जाती है। यदि इस मन्त्र को अंजलि में जल लेकर एक मास तक जपे तो अलंकार-
युक्त स्त्री जाया होती है।

(७) स्त्री-वशीकरण मन्त्र - "ॐ विश्वावसुर्नामि गन्धर्वः कन्यानामधिपतिस्त्वं रूपां
सालंकृतां कन्यां देहि नमस्तस्मै विश्वावसवे स्वाहा।"

विधि - उक्त मन्त्र १००८ की संख्या में जपने से सिद्ध होजाता है। मन्त्र के सिद्ध
होजाने पर ११ अंगुल लम्बी शाल की लकड़ी को पूर्वफाल्गुनी नक्षत्र में उक्त सिद्ध मन्त्र द्वारा ७ बार अभि-
-मन्त्रित करके जिस कन्या के पग में डाल दिया जाता है, वह कन्या साधक को अपने पति के रूप में स्वीकार लेती है।

(८) स्त्रीवशीकरण कारक अन्य प्रयोग - पूर्वोक्त किसी भी मन्त्र को सिद्ध कर लेने के बाद
निम्नानुसार योगों की वस्तुओं को अभिमंत्रित कर, प्रयोग में लाने से स्त्रियों का वशीकरण होता है —

(१) काले भौंरे के दोनों पंख (मतान्तर से - मोर पंख), काला कमल, घुण्का मूल, नाग (तथा) रोचना, पंचा इन सबको पूर्ण कर, अभिमंत्रित को। इसे जिस स्त्री के सिर पर डाल दिया जाता है, वह शीघ्र ही पति की दासी बन जाती है।

(२) जो मनुष्य रति क्रीड़ा की समाप्ति पर, अपने बाँये हाथ से अपना वीर्य स्त्री के बाँये पाँव के तलवे से लगा देता है, वह स्त्री सदैव के लिए उसके वश में हो जाती है।

(३) सेंधा नमक, शहद तथा कबूतर की बीट - इन तीनों को एकसाथ पीस कर अपने मदनांकुश (शिश्न) पर लेप कर के जिस तरुणी स्त्री के साथ सहवास किया जाता है, वह सदैव के लिए उस पुरुष की दासी बन जाती है।

(४) गोरोचन, कुमुद, मुलहठी, केसर, चन्दन और अड़ूसे का रस - इन सबको पीस कर लेप तय्यार करे। इस लेप को मदनांकुश (शिश्न) पर लेप कर रमण करने से स्त्री वशीभूत हो जाती है।

(५) पुष्य नक्षत्र में रुदन्ती को अभिमंत्रित कर, उसकी जड़ को मुख में धारण करे, फिर उसे निकाल कर, पान आदि में डाल कर जिस स्त्री को खिला दिया जाता है, वह वश में हो जाती है।

(६) पाटल की जड़ को अभिमंत्रित कर पान में देने से साधक स्त्री वश में होती है।

(७) मजीठ की जड़ को पीस कर, अभिमंत्रित करने के बाद जिस स्त्री के शरीर पर डाला जाता है, वह निश्चित रूप से वश में हो जाती है।

(८) कामदेव का स्मरण करके, अपने वीर्य को अभिमंत्रित कर, जिस युवती स्त्री के हृदय (छाती) पर दबा जाता है, वह तत्काल वशीभूत हो जाती है।

(९) शुद्ध किये हुए पारे को अभिमंत्रित कर अल्पमात्रा में सेवन करके स्त्री के साथ रमण किया जाय तो वह प्राणान्त तक उस पुरुष को नहीं छोड़ती।

अन्य पति-वशीकरण प्रयोग

अब स्त्री द्वारा पति को वश में किये जाने वाले मन्त्र तथा प्रयोगों का उल्लेख करते हैं।

मन्त्र - "ॐ काम कामसालिनि पतिं मे वशमानय स्वः स्वः।"

विधि - यह मन्त्र १०८ बार जपने से सिद्ध होता है। मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर,

निम्नलिखित प्रयोगों में प्रयुक्त होने वाली वस्तुओं को मन्त्र द्वारा ७ बार अभिमन्त्रित करके प्रयोग में लायें।

१- रवंजरीट के मांस को अदरक के साथ पीस कर अभिमन्त्रित करे तथा अपनी योनि में लेप कर, पति के साथ रमण करे तो वह दास की भाँति वशीभूत हो जाता है। म.

२- सफेद सरसों के साथ अनार के पंचाङ्ग को पीसकर अभिमन्त्रित करे। फिर उसे अपनी योनि में लगा कर पति के साथ रमण करे तो दुर्भागिनी-स्त्री भी पति को अपना दास बना लेती है।

३- कपूर, देवदारु तथा अदरक को पीस कर, अभिमंत्रित करे। फिर उसे अपनी योनि में लगा कर पति के साथ रमण करे तो वह सदा के लिए वश में हो जाता है।

४- गोरोचन को मछली के पित्ते के साथ पीस कर अभिमंत्रित करे, फिर अपने बाँये हाथ की कनिष्ठा अंगुली से उसका माथे पर तिलक लगाये तो पति वशीभूत हो जाता है।

५- अपने रक्त में गोरोचन मिला कर अभिमंत्रित करे, फिर उसका माथे पर तिलक लगाये तो पति वशीभूत होता है।

६- चीते के फल को शहद के साथ पीस कर अभिमंत्रित करे, फिर उसे पान अथवा अन्न के साथ पति को खिला देने से पति वश में हो जाता है।

७- शहद में भोजपत्र मिला कर अभिमंत्रित करे, फिर उसका योनि में लेप करके पति के साथ रमण करने से वह वशीभूत हो जाता है।

८- मुहपारा तथा शंख का चूर्ण जल-जीव को खिलाये, फिर उसका चूर्ण करके अभिमंत्रित करे और भोज्य-पदार्थ में मिलाकर पति को खिलाये तो वह वश में हो जाता है।

९- गोरोचन, रक्त तथा कुंकुम इनको पीस कर अभिमंत्रित करे, फिर अपने मस्तक पर तिलक लगाये तो पति वश में हो जाता है।

१०- संभोग के अन्त में जो स्त्री अपने पति के कामांकुश (रिझन) को अपने बाँये पाँव से दूती है, वह पति को सदैव के लिए अपना दास बना लेती है।

टिप्पणी- उक्त प्रयोगों द्वारा स्त्री अपने प्रेमी अथवा साधक-पुरुष को भी वश में कर लेती है।

म.

अब आकर्षण प्रयोग

अब उन आकर्षण प्रयोगों का वर्णन किया जाता है, जिनके द्वारा देवता, यक्ष, सर्प, राक्षस, मनुष्य तथा स्थावर-जंगम सभी आकर्षित होते हैं। उनके मन्त्र तथा प्रयोग निम्नानुसार हैं—

(१) आकर्षण मन्त्र— "ॐ ॐ ॐ हां हां हां हैं हैं॥"

विधि- यह मन्त्र ५०० बार जपने से सिद्ध हो जाता है। इसका प्रयोग करने से जड़-चेतन साधक की ओर आकर्षित होते हैं।

(२) आकर्षण मन्त्र— "हरय हरय"

विधि— यह मन्त्र ५०० बार जपने से सिद्ध हो जाता है। मन्त्र सिद्ध हो जाने पर किसी भोज्य-पदार्थ को अपने हाथ से बनाकर, उसे मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित करे। अभिमन्त्रित करते समय जिस व्यक्ति को आकर्षित करना हो, उसका ध्यान करे, तदुपरान्त वह भक्ष्य-पदार्थ जिस साधक-व्यक्ति के खिलाया जाय, वह साधक के पीछे-पीछे चला आता है।

(३) आकर्षण मन्त्र- ॐ ह्रीं रक्ष रक्ष चामुण्डे त्रुरु त्रुरु अमुकीमाकर्षय आकर्षय ह्रीं॥"

विधि - इस मन्त्र में जहां 'अमुकी' शब्द आया है, वहाँ साधक-स्त्री के नाम का उच्चारण

करना चाहिए / यह मन्त्र १०,००० की संख्या में जपने से सिद्ध होता है / इस मन्त्र के जप से दूती स्त्री आकर्षित होती है।

(४) आकर्षण मन्त्र - "चामुण्डे ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल स्वाहा।"

विधि - यह मन्त्र भी १०,००० जपने से सिद्ध होता है। सिद्ध होजाने के बाद जिस स्त्री को देखकर इस मन्त्र का जप किया जाय, वह साधक के पीछे-पीछे चली आती है।

(५) आकर्षण मन्त्र - "ॐ कृष्ण वर्णाय स्वाहा।"

विधि - यह मन्त्र १०,००० जपने से सिद्ध होता है।

प्रयोग - जिस समय औरा-औंदी रात को रटे हों उस समय उन्हें पकड़ कर अलग-अलग काले चिता-काष्ठ में जलादे, फिर उनकी भस्म की दो अलग-अलग पोटली बना कर रखले / तदुपरान्त उनमें से एक पोटली को किसी बकरी के सींग में मजबूती से बाँध कर उसे परीक्षार्थ छोड़ दे / वह बकरी जिस जिस स्त्री का स्पर्श करेगी, वह साधक के समीप आकर्षित होकर चली आवेगी, तदुपरान्त बकरी के सींग में बँधी हुई पोटली की भस्म को साधक-स्त्री के सिर पर डाल देने से वह सदैव के लिए आकर्षित बनी रहती है। दूसरी पोटली की भस्म को सुरक्षित रखना चाहिए / यदि दूसरी पोटली को सुरक्षित नहीं रखा जायगा तो फिर वह स्त्री दुबारा नहीं आवेगी / स्मरणीय है कि दूसरी पोटली वाली भस्म को किसी ऐसे स्थान पर रखना चाहिए, जिसे कोई अन्य व्यक्ति स्पर्श न कर सके।

(६) अन्य प्रयोग - आकर्षण के निम्न लिखित प्रयोगों को किसी भी मन्त्र को सिद्ध कर लेने के बाद प्रयोग में लाया जा सकता है -

१- आश्लेषा नक्षत्र में अर्जुन वृक्ष के बाँदा को लाकर, बकरी के मूत्र में पीस कर अभिमन्त्रित करो, फिर उसे जिस स्त्री, पुरुष अथवा पशु के सिर पर डाला जाय, वह तत्काल ही आकर्षित होकर साधक के पास चला आता है।

२- जिस स्त्री या लड़की का आकर्षण करना हो, उसके बाँये पाँव के नीचे वाली मिट्टी लाकर, गिरगिट के रक्त में सोल, फिर उस मिट्टी से पुतली तय्यार करो, उसके हृदय में, उसी स्याही से किसी कागज पर साधक-स्त्री का नाम लिखे तथा उस पुतली के मूत्र-स्थान में गाड़ दे। फिर उसी स्थान पर स्वयं भी मूत्र करके साधक का स्मरण करोगे तो वह स्त्री सौ योजन दूर रहने पर भी पास चली आती है।

३- दाँई ओर प्रदर्शित यन्त्र को गोरोचन द्वारा भोजपत्र पर लिखे। जिस जगह अमुकी शब्द लिखा है, वहाँ साधक-स्त्री का नाम लिखना चाहिए। इस यन्त्र को लिखकर घी में डाल कर रखदे तो साधक-स्त्री द्वारा ही आकर्षित होकर साधक के पास चली आती है।

ॐ ह्रीं अमुकीं आकर्षय स्वाहा

अथ स्तम्भन प्रयोग

अब 'स्तम्भन' सम्बन्धी विविध मन्त्रों तथा विधियों के विषय में बताते हैं -

मन्त्र :- "ॐ ह्रीं रक्तचामुण्डे रुद्ध रुद्ध अमुकं मे वशमानय स्वाहा।"

टिप्पणी - उक्त मन्त्र में जहाँ 'अमुकं' शब्द आया है, वहाँ साध्य-व्यक्ति के नाम का उच्चारण करना चाहिए। यह चामुण्डा का मन्त्र 1000 बार जपने से सिद्ध होता है। मन्त्र के सिद्ध होजाने पर निम्नलिखित प्रयोग करें। प्रयोजनीय-वस्तुओं को 6 बार मन्त्र से अभिमन्त्रित करना चाहिए।

शत्रुमुख स्तम्भन - नागरमोथा की जड़ को चांदी में लपेटकर, अभिमन्त्रित करके मुँह में रखने से शत्रु का मुख स्तम्भित होजाता है। (2) सफेद कुशघास को अभिमन्त्रित कर, मुँह में रखनेसे भी शत्रु का मुख बंद होजाता है और वह अपमानित होकर चला जाता है।

निद्रा-स्तम्भन - केतकी की जड़ तथा मुलहठी को पीसकर नस्य लेने से निद्रा दूर होती है।

शस्त्र स्तम्भन - सूर्य अथवा चन्द्रग्रहण के समय उत्तर दिशा की ओर जाकर शुद्ध होकर शरपोंका अथवा लाल लोध्र की जड़ ग्रहण करे। उसे अभिमंत्रित कर मुँह में रखने से, सब प्रकार के शस्त्र स्तम्भित होते हैं अर्थात् युद्ध क्षेत्र में उस व्यक्ति को किसी शस्त्र की चोट नहीं लगती।

(१) अग्नि-स्तम्भन मन्त्र - ॐ फ्राङ्ग् हरंहर अग्निं स्तम्भय स्तम्भय"

विधि - उक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए फूंक मारने से अग्नि थम जाती है।

(२) अग्नि स्तम्भन मन्त्र - "ॐ मत्कटिं तच्चक्र घनेश्वरी कटीम मनीष भी अलिप्य प्राग्मुद्रीपे वशातर कीर्ष मन्त्री क्रीं फट्।"

"ॐ क्रीं महिषवाहिनी जम्भय जम्भय मोहय मोहय भेदय भेदय अग्निस्तंभय स्तंभय ठः ठः"

"मत्कटीटक्र घने श्वेकटीम मूलीमसी आलिप्यागनाप मुद्रीपेश्वर कवीज्ये मन्दी क्रीं फट्।

"ॐ क्रीं महिषवाहिनी जम्भय जम्भय भेदय भेदय मोहय मोहय अग्नि स्तम्भय स्तंभय ठः ठः

"ॐ क्रीं महिषवाहिनी स्तंभय मोहय भेदय अग्नि स्तंभय ठः ठः"

विधि - उक्त सभी मन्त्र १०,००० की संख्या में जपने से सिद्ध होते हैं। इन मन्त्रों को सिद्ध कालेने के बाद आगे लिखे अनुसार अग्नि-स्तम्भन के प्रयोग करने से सफलता मिलती है

१- उक्त मन्त्रों से अभिमन्त्रित घीकवार (ग्वारपाठा) तथा जमीकंद को बीस बार हाथ में लपेट ले, फिर जलते हुए अंगारे अथवा लोहे को हाथ में उठाने से हाथ नहीं जलते।

२- पूर्वोक्त मन्त्रों में से किसी एक मन्त्र द्वारा अभिमन्त्रित सुदर्शना की जड़ को हाथ में बाँधने से अग्नि स्तम्भित होती है।

मनुष्य-स्तंभन मन्त्र — "काली कराली अमुकं स्तंभय स्वाहा।"

विधि - इस मन्त्र में जहाँ 'अमुक' शब्द आया है, वहाँ साध्य व्यक्ति के नाम का उच्चारण करना चाहिए। इस मन्त्र को सिद्ध कर लेने के बाद जिस व्यक्ति का नाम हृदय में रखकर, उसे धुआं पा देखा जायेगा, वह स्तंभित हो जायेगा।

धातु-बुद्धि-स्तम्भन मन्त्र — "ॐ नमो भगवते विश्वामित्राय नमः। सर्वमुखीभ्यां विश्वामित्राय विश्वामित्र आत्मापयति शब्दय आगच्छ आगच्छ स्वाहा।"

विधि - यह मन्त्र १०,००० की संख्या में जपने से सिद्ध होता है। मन्त्र के सिद्ध हो जाने पर इस प्रयोग को — भांगरा, अपामार्ग (चिचिड़ा), सरसों, सहदेई, वच और सफेद कटेली - इन सबको समभाग लेकर, लोटे के पात्र में डाल कर, रस निकाले। उस रस को प्रयोजित सिद्ध मन्त्र से अभिमंत्रित कर, तिलक लगाये, फिर साध्य-व्यक्ति के सामने जाकर खड़ा हो तो उसकी बुद्धि स्तंभित होती है।

चोर-गति स्तम्भन मन्त्र — "ॐ नमो ब्रह्मदेहिणी (वाग्भेदन - ब्रह्मवादिनी) शिवे रक्ष रक्ष ठः ठः।" — पहले इस मन्त्र को १००८ बार जप कर सिद्ध कर ले। फिर श्मशान में जाकर, इसी मन्त्र का उच्चारण करते हुए वहाँ से सात ककड़ियाँ उठाले। उन ककड़ियों को किसी कपड़े में लपेट कर कमर में धारण करे अथवा मुट्ठी में बाँध ले तो चोरों की गति स्तंभित हो जाती है अर्थात् उस जगह चोर नहीं आते।

शुक्र स्तम्भन प्रयोग - अब शुक्र अर्थात् वीर्य स्तम्भन के योगों का उल्लेख किया जाता है। इन योगों के लिए किसी प्रकार के मन्त्र-जप की आवश्यकता नहीं पड़ती। इनका प्रयोग सहवास के समय किया जाता है। इनसे वीर्य-स्तंभन की शक्ति बढ़ जाती है।

(१) पुष्य नक्षत्र में नग्न होकर, इन्द्रायण की जड़ उखाड़ कर ले आये। फिर उसको खोप, काली मिर्च तथा पीपल मिला कर पीसे तथा गाय के दूध में गोली बनाकर छाया में सुखा ले। सहवास के समय इस गोली को मुँह में रखने से वीर्य-स्तंभन होता है।

(२) श्मशान में उत्पन्न हुई नील की जड़ को कमर में बाँधकर मैथुन करने से स्तंभन होता है।

(३) अपामार्ग (ओगा या चिरचिटा) को सोमवार के दिन निमंत्रण दे आये तथा मंगलवार को प्रातः काल उखाड़ लाये। फिर उसे कमर में बाँधकर मैथुन करे तो वीर्य स्तंभित होता है।

(४) काले रंग के 'घुंघुची' नामक सर्प की हड्डी को कमर में बांधकर सहवास करने से वीर्य-स्तम्भन होता है तथा लोहा देखने पर स्खलन हो जाता है।

(५) श्वेत कोपल वृक्ष के फल को भैरवद के दूध के साथ पीसे, फिर उसमें कांजी के बीज का मध्यभाग डालकर मुँह में रखे तो वीर्य-स्तंभन होता है।

(६) सहदेई के बीज और जड़ तथा पक्के केला - इनमें घी और शहद मिलाकर लिंग पर लेप करके सहवास करने से वीर्य स्खलित नहीं होता।

(७) धतूरे में कमल गट्टा का बीज पीस कर लेप करने से वीर्य-स्तंभन होता है।

(८) सुदर्शना की जड़ को पान के साथ पीसकर, घृत के साथ मात्रपूर्वक सेवन करने से वीर्य स्तम्भित होता है।

(९) वाराही कन्द की जड़ को दूध के साथ पीसकर शिश्न पर लेप करने से वीर्य-स्तंभन होता है।

(१०) पुष्य नक्षत्र में श्वेत कनेर की जड़ को लाकर कमर से बांधने पर स्तंभन होता है।

(११) विदारीकन्द का चूर्ण कर, उसी के स्वरस में भावना देकर, धूप में सुखाले। फिर उसे २-२ माशे की मात्रा में प्रातः-सायं शहद तथा घृत मिलाकर सेवन करने से दस स्त्रियों को तृप्त कर सकता है।

(१२) कौंच के बीज, साठी चावल, मुलहठी और घोड़ा घृत तथा शहद - इनको मिलाकर चाटने से, जब तक न पचे, तब तक दुर्बल मनुष्य भी अनेक स्त्रियों के साथ रमण कर सकता है।

(१३) बकरी और भेड़ के दूध में लाजवन्ती की जड़ को पीस कर हृदय तथा पाँवों पर लेप करके रमण करने से पुरुष का वीर्य स्खलित नहीं होता।

अन्य मोहन प्रयोग

अन्य मोहित करने वाले प्रयोगों का वर्णन किया जाता है, जो निम्नानुसार हैं:—

(१) मोहन मन्त्र — "ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं ऌं ॡं फट्।"

विधि — यह मन्त्र १००८ बार जपने से सिद्ध होता है। इस मंत्र से तांबूल को अभिमन्त्रित कर, साध्य-व्यक्ति को खिलाने से वह मोहित हो जाता है।

(2) मोहन मन्त्र — " ॐ श्रीं क्लीं मोहय मोहय । ॐ नमो भगवती पादपंकज परागेभ्यः ।

विधि - उक्त मन्त्र 1000 बार जपने के लिए होता है । आवश्यकतानुसार इस मन्त्र का तीन बार उच्चारण (जप) करने से साधक - साधिका मोहित होता है।

2- शिरीष की जड़ तथा बीज, लालचन्दन और इलायची के बीज - इनको पीस कर चूर्ण करें। फिर लाल रंग के वस्त्र के टुकड़े से साधक - साधिका को वह चूर्ण मिलाये तो मोहित हो।

(3) शत्रु-मोहन - गोमी, कलहारी तथा श्वेत गिरिकर्णी को गोरोचन के साथ मिला कर तिलक करने से शत्रु देखते ही मोहित हो जाता है।

अथ सुख-प्रसव योग

सुख पूर्वक प्रसव के योग निम्न लिखित हैं। इनके लिए किसी मन्त्र-जप की आवश्यकता नहीं होती।

(1) सफेद पुनर्नवा की जड़ को स्त्री की योनि में प्रवेश कराने मात्र से ही सुख-प्रसव हो जाता है। स्मरणीय है कि जब प्रसव कालीन - दर्द उठ रहे हों, उसी समय यह प्रयोग करना चाहिए।

(2) उत्तर की ओर मुँह करके लाई गई सफेद घुँघची की जड़ को गर्भवती स्त्री की कमर में प्रसव के समय बाँधने से प्रसव सुख पूर्वक होता है।

(3) अड़ूसे की जड़ को उत्तर की ओर मुँह करके ले आये। फिर उसे सूत के साल डोरे से

स्त्री की कमर में बाँधे तो प्रसव सुख पूर्वक होता है।

(४) सहदेई अथवा दन्ती की जड़ को कमर में बाँधने से सुख पूर्वक प्रसव होता है।

(५) दशमूल का काढ़ा, घृत तथा सैंधानमक सहित पिलाने से, दर्द से व्याकुल गर्भवती को सुख पूर्वक प्रसव होता है।

ग्रहादि-निवारण नृसिंह मन्त्र

भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनी तथा ग्रह-पीड़ा निवारण हेतु नृसिंह मन्त्र अत्यन्त प्रभावकारी है। नीचे लिखे इस मन्त्र को पहले १००८ बार जप कर सिद्ध कर लेना चाहिए, तदुपरान्त आवश्यकता के समय इस मन्त्र को पढ़-पढ़ कर रोगी को सरसों के दाने मारते हुए ताली बजाये तो सभी भूत-प्रेत-ग्रह आदि इसकी आग जोत हैं, जिस प्रकार कि सूर्य के उदय होने पर अन्धकार भाग जाता है।

मन्त्र:- "ॐ नरसिंहाय दिव्यकसिपु वक्षःस्थल विदारणाय त्रिभुवन व्यापकाय भूत प्रेत पिशाच डाकिनी कुलोन्मूलनाय सकलोपद्रवाय समस्त दोषान् हर हर विसर विसर पच पच एन एन कम्पय कम्पय मथ मथ ह्रीं ह्रीं ह्रीं फट् फट् ठः ठः ठः एहि एहि रुद्र आज्ञापयति स्वाहा।

ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं ह्रूं ह्रूं ह्रूं फट् स्वाहा।"

विधि- इन मन्त्रों को पढ़ कर सरसों मारे तथा ताली बजाये तो सब ग्रह आदि भाग जाते हैं। जब तक रोगी पूर्ण स्वास्थ्य न हो तब तक झाड़ देते रहना चाहिए। अधिक तम ३ दिन में लाभ हो जाता है।

अथ सर्वारिष्ट-नाशन प्रयोग

(१) मन्त्र : "ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं ह्रीं स्त्रीं ह्रीं ॐ ह्रीं थ्रीं फ्रीं ह्रीं।"

विधि - यह मन्त्र ५० बार जपने से ही सिद्ध हो जाता है। यह सम्पूर्ण अनिष्टों को दूर करता है। स्वयं के अतिरिक्त यदि किसी अन्य व्यक्ति को लाभान्वित करना हो तो उसे यह मन्त्र पढ़ते हुए झाड़ दें।

(२) ॐ नृत्यीं ह्रीं ह्रीं ह्रीं थ्रीं फ्रीं ह्रीं।"

विधि - यह मन्त्र ५० बार जपने से ही सिद्ध हो जाता है। इसका श्रद्धापूर्वक उच्चारण करने मात्र से ही सब अनिष्ट दूर हो जाते हैं।

अथ उच्चाटन प्रयोग

अब उच्चाटन के मन्त्र तथा उसके प्रयोग का वर्णन करते हैं -

मन्त्र : - "ॐ लोहित मुखे स्वाहा।"

विधि - यह मन्त्र १००८ बार जपने से सिद्ध हो जाता है। मंगलवार के दिन रात्रि के समय कालेंग के वहन में श्मशान से अंगा (बुझे हुए) लाकर, उसे लाल सूत में लपेट कर जिस के घर में, मंत्र से अभिमंत्रित करके डाल दिया जाता है, उसका उच्चाटन होता है।

(२) पुनर्वसु नक्षत्र चित्रक की पाँच अंगुल काली कील लेकर, सात बार मंत्र से अभिमंत्रित करके, जिसके घर में डाल दे, उसका उच्चाटन होता है।

अन्य मारण प्रयोग

मारण-प्रयोग केवल उसी स्थिति में करना चाहिए, जब कोई अन्य उपाय शेष न रहा हो तथा शत्रु के द्वारा अपने प्राणों को अथवा धन-जन-सम्मान आदि को भारी आघात पहुँचाये जाने का निश्चित खतरा हो। सामान्य कारणों से किसी के प्रति मारण कर्म करना वर्जित है, अन्यथा कर्म-कर्ता को ही हानि उठानी पड़ती है।

मन्त्र - "ॐ ह्रीं क्षः अमुकं क्षाम्।"

विधि - इस मन्त्र में जहाँ 'अमुक' शब्द आया है, वहाँ साध्य-व्यक्ति के नाम का उच्चारण करना चाहिए। यह मन्त्र 1000 बार जपने से सिद्ध होजाता है। जब मन्त्र सिद्ध होजाय तब राई, नमक, श्वेत-निर्मल (सिरकी या चढ़ाये गये पुष्प-फल आदि) को कड़वे तेल में मिलाकर, उक्त मन्त्र का उच्चारण करते हुए 2000 आहुतियाँ देकर होम करने से शत्रु का नाश होता है।

[टिप्पणी - इस पुस्तक में केवल तान्त्रिक प्रयोग संकलित हैं। मन्त्र तथा यन्त्र सम्बन्धी विस्तृत जानकारी के लिए हमारे 'वृहद् मन्त्र महार्णव' तथा 'वृहद् यन्त्र महार्णव' नामक ग्रंथों का अध्ययन करना चाहिए।]

ॐ मङ्गलं भगवान् विष्णुः मङ्गलं गरुड ध्वजम्।
मङ्गलं पुण्डरीकाक्षः मङ्गलायतनो हरिः॥ ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः॥

॥ समाप्तोऽयं ग्रंथः ॥





ॐ

इतिश्री वृहद् तन्त्र महार्णव

(भाषा-टीका सहित)

तृतीय खण्डः समाप्तम्

समाप्तोऽयंग्रंथः





